PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 7.523

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha
AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFEREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 6.632

Gina Shodh
SANGAM
A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 5.843

SHODH SAMALOCHAN
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी (रजि.) के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2348:5639

SHODH SAMALOCHAN

Oct.-Nov.-Dec. : 2024

Dr. Versha Rani

Dr. Naresh Sihag, Adv.

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा भारत-नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 5-843

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Vol. : 11, Issue : 4

Oct.-Nov.-Dec. : 2024

Executive Editor :
Dr. Varsha Rani

Editor :
Dr. Naresh Sihag 'Bohal'
Advocate

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-11, अंक-4 अक्टूबर-दिसम्बर 2024 आईएसएसएन : 2348-5639

संपादक
- **डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल'** एडवोकेट

उप-संपादक
- **डॉ. सुमन रानी**

कार्यकारी संपादक
- **डॉ. वर्षा रानी**

सह-संपादक
- **डॉ. लता एस. पाटिल,**
- **डॉ. सुलक्षणा अहलावत**

प्रबंध संपादक
- **डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'**

अक्षर संयोजन
- **मो. सलीम**

कानूनी सलाहाकार
- **डॉ. रामफल दलाल,** एडवोकेट
- **अजीत सिहाग,** एडवोकेट

सलाहकार सम्पादक मंडल

- **डॉ. निशीथ गौड, आगरा**
- **डॉ. ऊषा रानी, शिमला**
- **डॉ. गोविन्द सोनी, श्रीगंगानगर**
- **डॉ. सुषमा रानी, जीन्द**
- **डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर**
- **डॉ. दीपशिखा, पटियाला**
- **डॉ. गौतम कुमार साहा, दरभंगा**
- **श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन**
- **डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा**
- **डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ**
- **डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद**
- **डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा**
- **डॉ. संजय कुमार, रांची**
- **डॉ. संतोष कुमार भगत, रांची**

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है–**बैंक :** PUNJAB NATIONAL BANK **Branch :** Yamuna Vihar, Delhi-110053 **IFSC :** PUNB0225600 **Account Holder :** SANIA PUBLICATION **Current Account No.** 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध -पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 600/- रु. एक प्रिंट प्रति वार्षिक 2000/- रु.

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
  Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
  Assistant Professor,
  Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
- **Dr. AMBILI V. S.**
  Assistant Professor, Department of Hindi,
  N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
  Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **Dr. Anju Bala**
  Assistant Professor Hindi,
  Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
  प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला-बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. माया गोला,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **डॉ. मोहित शर्मा**
  श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)-305815
- **रजनी प्रिया**
  राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वार्टर सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, लैण्डमार्क - नियर श्रमिक चौक, पोस्ट जिला-धनबाद, झारखंड-826001
- **डॉ. आँचल कुमारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
  राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ.,
  आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार,** असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. प्रमोद नाग**
  सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **पल्लवी आर्य**
  असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
  डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
  शोद्यार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **गोस्वामी सोनीबाला**

शोधार्थी - जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

- **डॉ. करुणेन्द्र सिंह**, असिस्टेंट प्रोफेसर
  रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, गोरखपुर, बापू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीपीगंज, गोरखपुर
- **डॉ. मीरा चौरसिया**
  चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **Dr. Vimal Parmar**
  Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
  उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग
  त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **डॉ. जगदीप दुबे**
  सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
  समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
  शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉंटिया वि.वि. श्रीगंगानगर

Request to Writersm

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

At the end of the composition, mention your complete postal address, mobile number and e-mail address.

- Editor

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फान्ट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :

सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094

मोबाइल : 9818128487, 8383042929

ISSN : 2348-5639

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

[भाग III—खण्ड 4] भारत का राजपत्र : असाधारण 105

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

सम्पादकीय

प्रिय पाठकगण,

नए विचार, नव दृष्टिकोण और सतत ज्ञान के आदान-प्रदान के इस मंच 'शोध समालोचन' के तिमाही अंक में आपका स्वागत है। यह वर्ष अपनी समाप्ति की ओर बढ़ रहा है, और यह समय बीते दिनों की समीक्षा करने और भविष्य की ओर नए संकल्प लेने का है।

पिछले कुछ महीनों में, समाज, विज्ञान, शिक्षा, और साहित्य के क्षेत्रों में कई परिवर्तनकारी घटनाएं हुई हैं। हमारा प्रयास हमेशा से यही रहा है कि हम आपको इन परिवर्तनों से न केवल अवगत कराएं, बल्कि उनके गहरे संदर्भ और प्रभावों को समझने में सहायक बनें। इस अंक में, हम आपकी रुचि और जिज्ञासा को प्रेरित करने वाले कई विचारोत्तेजक आलेख और शोध प्रस्तुत कर रहे हैं।

'अंक की मुख्य विशेषताएं'

इस बार का अंक कई विशेष लेखों और समीक्षाओं से सुसज्जित है। इसमें साहित्यिक विश्लेषण, वैज्ञानिक खोजों पर गहन चर्चा, और सामाजिक मुद्दों पर संतुलित दृष्टिकोण शामिल हैं। साहित्य जगत में उभरते रचनाकारों के योगदान को विशेष स्थान दिया गया है। साथ ही, पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास जैसे समसामयिक विषयों पर लेखकों ने अपने विचार साझा किए हैं।

'संदर्भ और संवाद की परंपरा'

शोध समालोचन का उद्देश्य सिर्फ ज्ञान का प्रसार नहीं, बल्कि एक संवादात्मक मंच तैयार करना है। हम अपने पाठकों को एक ऐसा मंच प्रदान करना चाहते हैं जहां वे शोध, समीक्षा और आलोचना के माध्यम से अपनी आवाज को प्रकट कर सकें। इस प्रक्रिया में, आप सभी के सुझाव, विचार और प्रतिक्रिया हमारे लिए अत्यंत मूल्यवान हैं।

इस तिमाही अंक के साथ, हम आपसे आग्रह करते हैं कि आने वाले वर्ष के लिए नई योजनाओं और उद्देश्यों को निर्धारित करें। ज्ञान और विचारों का यह प्रवाह तभी सार्थक होगा जब हम मिलकर इसे अधिक समृद्ध और प्रभावशाली बनाएंगे।

आपकी प्रतिक्रिया और सहयोग का हमेशा की तरह स्वागत है। आइए, इस यात्रा को और अधिक रोचक और शिक्षाप्रद बनाएं।

'नववर्ष की नई उम्मीदें और शोध की नई दिशा'

यह अंक हमारे लिए एक महत्त्वपूर्ण मोड़ है, जहां हम न केवल साल 2024 के सफर पर विचार करते हैं, बल्कि आने वाले साल की नई संभावनाओं और चुनौतियों पर भी ध्यान केंद्रित करते हैं। यह महीना हमें बीते समय की उपलब्धियों का लेखा-जोखा करने और भविष्य के लिए नए लक्ष्य निर्धारित करने का अवसर प्रदान करता है।

'शोध के बदलते आयाम'

इस साल शोध जगत में कई महत्वपूर्ण प्रगतियां हुई हैं। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सामाजिक विज्ञान और मानविकी में नए दृष्टिकोणों और तकनीकों ने शोधकर्ताओं को न केवल पारंपरिक समस्याओं के समाधान की ओर अग्रसर किया, बल्कि उन चुनौतियों का सामना करने का साहस भी दिया, जो आज की दुनिया में तेजी से बदल रहे परिदृश्य का हिस्सा हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डेटा विज्ञान जैसे क्षेत्रों में हुई प्रगति ने शोध प्रक्रिया को अधिक तेज, सटीक और प्रभावी बनाया है। इसके साथ ही, स्थायित्व, पर्यावरण संरक्षण, और सामाजिक समावेशन जैसे मुद्दे शोध की प्राथमिकताओं में शामिल हुए हैं। इन बदलावों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि शोध केवल ज्ञान का विस्तार नहीं, बल्कि समाज को बेहतर दिशा में ले जाने का साधन है।

'चुनौतियों पर विचार'

हालांकि, यह वर्ष शोध जगत के लिए केवल उपलब्धियों का नहीं, बल्कि चुनौतियों का भी रहा। वित्तीय संसाधनों की कमी, नैतिक मुद्दे, और डेटा की गोपनीयता जैसे विषय अभी भी शोध की प्रगति में बाधा बने हुए हैं। इन चुनौतियों से पार पाने के लिए शोधकर्ताओं, संस्थानों और नीति निर्माताओं के बीच सहयोग और संवाद की आवश्यकता है।

'आगे की राह'

अक्तूबर नवंबर दिसंबर 2024 का यह अंक शोध के विभिन्न आयामों और समसामयिक विषयों पर केंद्रित है। इसमें आपको नई शोध प्रवृत्तियों, महत्वपूर्ण खोजों, और शोधकर्ताओं की प्रेरक कहानियों का संग्रह मिलेगा। साथ ही, यह अंक शोध जगत के उन पहलुओं को भी उजागर करता है, जो भविष्य में हमारे काम करने और सोचने के तरीके को बदल सकते हैं।

आने वाले नववर्ष में हम सभी से अपेक्षा करते हैं कि शोध का यह सफर और अधिक प्रेरणादायक होगा। नवाचार, समावेशिता और सतत विकास को केंद्र में रखते हुए हम अपने प्रयासों को और मजबूत करेंगे।

इस उम्मीद के साथ कि यह अंक आपको नई प्रेरणा और दृष्टिकोण प्रदान करेगा, हम आपके सुझाव और प्रतिक्रिया के लिए सदैव तत्पर हैं।

शुभकामनाओं सहित,

- नरेश कुमार सिहाग

संपादक

शोध समालोचन

विषयानुक्रमणिका

सम्पादकीय 6

शोध प्रबंध लेखन की प्रविधि 10
दिलीप सिंह राजपूत

दोहरा अभिशाप : दलित स्त्री की त्रासदी 16
राकेश कुमार

हिंदी उपन्यास साहित्य में किन्नर गाथा 19
डॉ. संजय धोटे

महात्मा गांधी और उनके राजनीतिक विचार 23
शरद मधुकर चव्हाण

जलवायु परिवर्तन का संकट और आर्द्रभूमि की भूमिका 28
शिव गिरि

मध्यकालीन भारत में जाति एवं वर्ण व्यवस्था का अध्ययन 41
डॉ. कुलराज व्यास

स्त्री अस्मिता के प्रश्न और आदिवासी उपन्यास 46
स्नेहलता / डॉ. विष्णु प्रसाद शुक्ल

भारत में न्यायिक सक्रियता के उपकरण के रूप में लोकहितवाद : एक समीक्षा 51
अतुल कुमार सिंह

غبارخاطراورمولانا آزادکی انشاپردازی **57**
Dr. M. Nizamuddin

अखिलेश की कहानियों का मूल्यांकन 65
आकाश सिंह

जनजातीय जीवन-शैली का अभिन्न अंग है, गीत-नृत्य-संगीत (झारखण्ड के सन्दर्भ में) 69
सुखराम उराँव

73
Dr. Nelaturi Anita Margaret

తెలుగు భాష సాహిత్య వికాసానికి సి.పి. బ్రౌన్ సేవలు श्लेषण 79
शोभा मौर्या / डॉ. वंदना

ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा चुनौतियाँ, अवसर और सुधार के लिए रणनीतियाँ : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण 85
तबस्सुम

लोकमान्य तिलक : स्वराज्य के अवधारणा की विवेचना 90
सुजीत कुमार

Nutritional Status and Physical Fitness Among Tribal School Children: A Comparative Study 94
Darshan Vilasrao Zade, Dr. Jully Ojha

A Study Of The Challenges Faced By Women Working In The Service Sector In The Socio-emotional Development Of Adolescents 99
Apurva Singh , Dr. Krapal Singh

तुलसीराम की आत्मकथा में दलित चेतना : (मुर्दहिया और माणिकर्णिका के विशेष संदर्भ में) एक विश्लेषण 106
मिथुन लहेरी
Consumer Data Protection and Privacy Rights in India: A Comprehensive Analysis 109
Dr. Nidhi Sharma
भारतीय साहित्य में अनुवाद की भूमिका 115
डॉ. केशव क्षीरसागर
वैश्विकरण के दौर में साहित्य में वर्णित दलित चेतना 128
Dr. Salim Banadar
'मैं पायल' उपन्यास में वर्णित किन्नर जीवन का आत्मसंघर्ष 131
Rahul Mahato, Vikash Shaw
Musical Effects on Human Body and Mind 137
Anu Saxena, Dr. Kaumudi Kshirsagar Barde
महानगरों में नारी 141
R.D. NIRMALA
नमिता सिंह के कथा साहित्य में चित्रित धर्म का सांप्रदायिक स्वरूप 145
फूला देवी
चित्रकला के क्षेत्र में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका – एक परिचय 150
सरिता भांभू, डॉ. सोनिया रानी
The Use of Technology in Modern Criminal Investigations in India 154
Hema Shrivastava
'मुझे पहचानो' : नारी अस्तित्व की संघर्ष गाथा 160
डॉ. उमा मेहता
वैदिक काल में भौगोलिक चिंतन 164
डॉ. सुरेन्द्र चौधरी / डॉ. राजेन्द्र प्रसाद खीचड़ 176
ENVIRONMENTAL POLLUTION 176
Dr. Monika Rathore
मीरांबाई की स्त्री-चेतना : एक दृष्टि 180
डॉ. माया गोला
समकालीन हिन्दी उपन्यास और आदिवासी जीवन के विविध परिप्रेक्ष्य 185
रिया श्रीवास्तव
'बकरी' नाटक में भ्रष्ट राजनीति का यथार्थ मूल्यांकन 188
राजु पासवान

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

शोध प्रबंध लेखन की प्रविधि

दिलीप सिंह राजपूत
शोधार्थी पीएच.डी., कला एवं मानविकी मानविकी अध्ययनशाला
मैट्स वि.वि., रायपुर (छ. ग.)
मो. : 9098771548

1. प्रस्तावना

शोध को प्रस्तुत करने की अपनी एक वैज्ञानिक विधि है, जिसे सभी शिक्षण-संस्थानों एवं सार्वजनिक शोध संस्थानों के द्वारा न्यूनाधिक रूप से स्वीकृत किया गया है। सभी शोध प्रबंध में एक निश्चित मानदण्ड के प्रयोग से उसके स्वरूप, प्रदत्तों के प्रस्तुतिकरण, शोध अभिकल्पों को पढ़ने, विश्लेषण करने तथा समझने में एकरूपता बनी रहती है। इन्हीं एकरूपता के कारण शोध प्रबंध का अध्ययन और अधिक आसान तथा ग्राह्य व सम्प्रेष्य हो जाता हैं इसके साथ-साथ सामग्री को उद्धृत करने तथा आदान-प्रदान में भी सुगमता बनी रहती है।

शोध प्रबंध लेखक के मन में विषय से सम्बद्ध अनेक जिज्ञासा रहती है इस जिज्ञासा को शांत करने हेतु वह सामग्री एकत्र कर उसे एक निश्चित रूपरेखा के अनुसार व्यवस्थित कर प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करता है। यह प्रस्तुतिकरण अंततः शोध प्रबंध का रूप लेता है, जिसमें नये-नये बातों एवं विचारों का समावेश, स्पष्टीकरण, आलोचना आदि होती है। सामान्यतः सभी शोध प्रबंध आलोचनात्मक ढंग से ही लिखे जाते है।

2. शोध प्रबंध लेखन क्या है?

शोध प्रबंध का लेखन चाहे शोध संस्थान से शोध-उपाधि या अकादमिक उपलब्धियों की प्राप्ति हेतु किया जाए अथवा किसी सार्वजनिक शोध संस्थान द्वारा सामाजिक हित के लिए किया जाए, प्रत्येक स्थिति में उस शोध से लाभान्वित व्यक्ति उसकी प्रभावोत्पादकता एवं प्रस्तुत्य गुणों की प्रशंसा करते हैं।

शोधप्रबंध लेखन एक ऐसी कला है, जो शोध विषय से संबद्ध समस्त अवयवों को प्रशंसनीय ढंग से एकत्र करने, संकलन एवं सुसंगठन हेतु प्रेरित करती है। साथ ही साथ यह मौलिक कृति होती है, जो संकलित तथ्यों एवं संदर्भों पर आधारित होती है।

इस प्रकार, दस्तावेजों का एक ऐसा संकलन जो शोधार्थी द्वारा किए गए शोध को विधिवत् तरीके से प्रस्तुत करता है, शोधप्रबंध कहलाता है तथा एक निश्चित रूपरेखा के आधार पर शोधार्थी द्वारा इसका लेखन 'शोध प्रबंध लेखन' कहलाता है।

3. शोध प्रबंध का प्रारंभिक भाग

इसके अंतर्गत शोध प्रबंध का पूर्व भाग आता है। जिसमें मुखपृष्ठ, अनुमोदन पत्र, संस्थागत/पर्यवेक्षक प्रमाण पत्र, विषय वस्तु सारणी, ग्राफ-चित्र, तालिका आदि सम्मिलित है। इसे शोध प्रबंध लेखक निम्नांकित रूप में प्रस्तुत करता है-

(अ) मुखपृष्ठ :-

किसी भी शोध प्रबंध का मुखपृष्ठ उसके सम्पूर्ण स्वरूप का चित्र व्यक्त करता है। अतः इसकी स्वच्छता, स्पष्टता, सुन्दरता, वैज्ञानिकता आदि पर विशेश ध्यान देना अत्यावश्यक हो जाता है। इसके साथ ही साथ शोध प्रबंध का मुखपृष्ठ आकर्शक तथा आकार-प्रकार, बनावट जैसे सौंदर्यबोध के गुणों से युक्त होना चाहिए। एक आदर्श शोध प्रबंध का मुखपृष्ठ निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है–

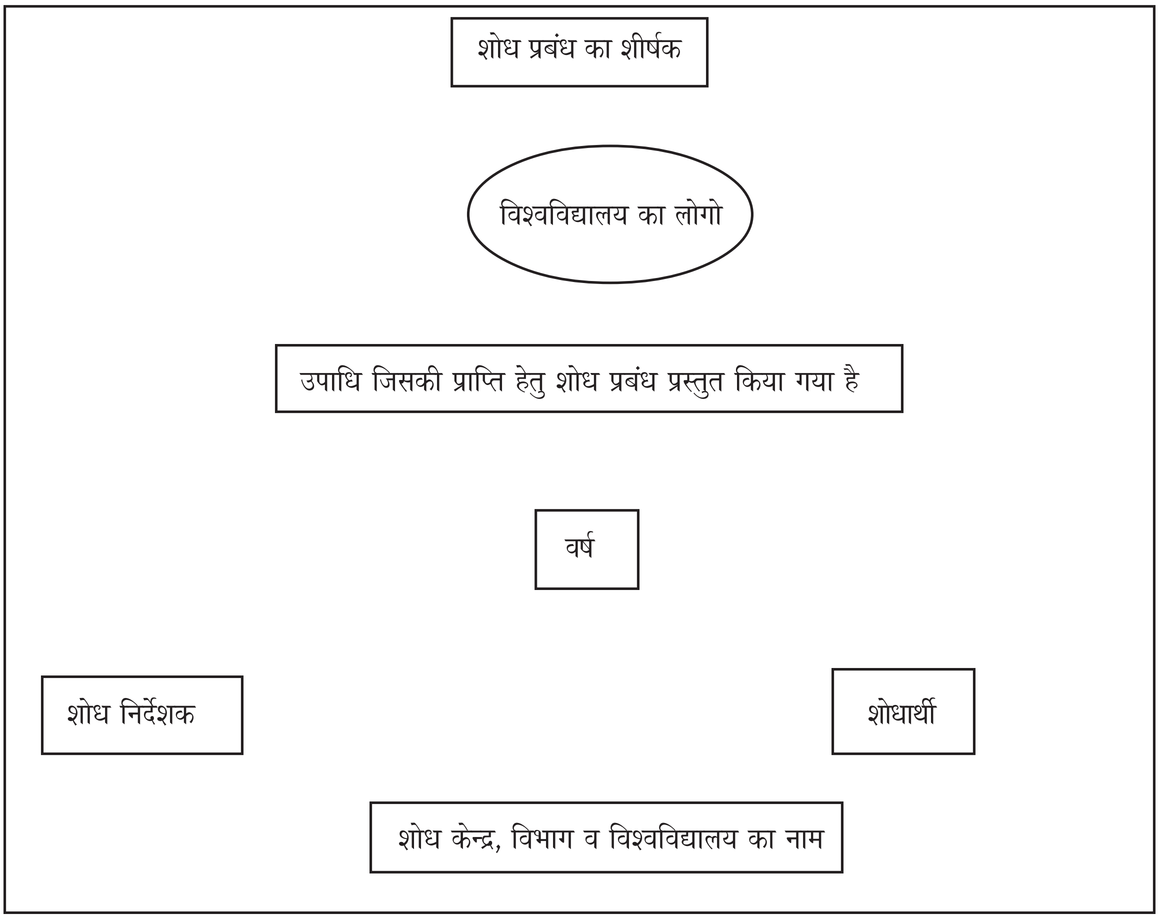

(ब) घोषणा पत्र :-

इस पत्र के अंतर्गत शोधार्थी इस बात की घोशणा करता है कि एम.फिल. या पी-एच.डी. की उपाधि हेतु उसके द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबंध पूर्णतः उसकी मौलिक कृति है तथा उक्त प्रबंध उसके द्वारा संकलित तथ्यों एवं सन्दर्भो पर आधारित है।

इसके अलावा, शोधार्थी इस बात की भी घोशणा करता है कि उसने उक्त शोध-कार्य किसके निर्देशन में पूर्ण किया है। इस प्रकार घोषणा-पत्र एक प्रकार का स्व-प्रमाणन पत्र है।

(स) अनुमोदन पत्र :-

जब शोधार्थी एम.फिल. या पी-एच.डी. जैसे उपाधियों की प्राप्ति हेतु शोध निर्देशक के समक्ष शोध प्रबंध प्रस्तुत करता है। तो उस प्रबंध में एक अनुमोदन पत्र की आवश्यकता होती है इस अनुमोदन पत्र के माध्यम से शोध निर्देशक, विभाग, विश्वविद्यालय इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि शोधार्थी ने उक्त उपाधि की प्राप्ति हेतु किए गए शोध व शोध प्रबंध लेखन

हेतु सभी नियमों का जिम्मेदारी पूर्वक निर्वहन किया है। अतः अनुमोदन पत्र शोध प्रबंध के प्रमाणीकरण हेतु अनिवार्य अंग है।

(द) प्राक्कथन एवं आभार :-

शोध-प्रबंध के इस अंश में शोधार्थी शोध कार्य के दौरान आए विभिन्न जटिलताओं, अनुभवों, मर्यादाओं व मूल्यों का जिक्र करता है। इसके अलावा, शोधार्थी शोध-कार्य में सहायक व्यक्तियों, परिवारजनों, विश्वविद्यालय के विभिन्न व्यक्तियों, अध्यापकों आदि का विनम्रतापूर्वक आभार प्रदर्शित करता है। साथ ही विचारों की यथार्थता की पुष्टि हेतु शोधार्थी आभार प्रदर्शित करने के उपरांत स्वयं का हस्ताक्षर करता है।

(इ) विषय वस्तु सारणी/अनुक्रमणिका :-

अनुक्रमणिका के अंतर्गत शोधार्थी शोध-प्रबंध के सभी अध्यायों, शीर्शकों, उपशीर्शकों तथा प्रमुख बिन्दुओं को शामिल करता है इसके लिए वह पृष्ठ संख्या का भी सहारा लेता है। प्रत्येक अध्यायों या बिन्दुओं के समक्ष पृष्ठ संख्या का उल्लेख करता है। इस पृष्ठ संख्या के आधार पर कोई भी जिज्ञासु या परीक्षक संबंधित अध्याय तक आसानी से पहुँच कर विषय-वस्तु की जानकारी प्राप्त कर सकता है। अनुक्रमणिका तैयार करते समय शोधार्थी को इस बात का विशेश ध्यान रखना चाहिए कि वह न तो अधिक विस्तृत हो और न ही अधिक संक्षिप्त हो।

4. शोध प्रबंध का मध्य भाग

शोध प्रबंध का मध्यभाग उसके धड़ के समान है, जिसके अंतर्गत विभिन्न अध्यायों को क्रमबद्ध तरीके से विधिवत् प्रस्तुत किया जाता है। शोध प्रबंध का सहीं ढंग से आरंभ यहीं से माना जाता है। इस भाग में अनेक हिस्से शामिल है, जिनका विवरण निम्नवत् है -

(अ) भूमिका/विषय-प्रवेश :-

भूमिका किसी भी शोध प्रबंध का अनिवार्य तथा महत्वपूर्ण भाग है। यह पाठकों में शोध प्रबंध के अध्ययन के प्रति रूचि जागृत करने का कार्य करती है। भूमिका का आकार सीमित तथा संतुलित होना चाहिए। भूमिका में इस बात पर ध्यान रखना आवश्यक है कि इसमें किसी अध्याय की पुनरावृत्ति न हो। भूमिका में किसी समस्या की उत्पत्ति के साथ-साथ प्रकृति, आवश्यकता, उपादेयता, उद्देश्य, परिकल्पनाएँ अध्ययन विधि आदि का निरूपण होता है। भूमिका में सम्मिलित महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नलिखित है–

(i) शोध समस्या की उत्पत्ति, प्रकृति एवं आवश्यकता,

(ii) शोध समस्या का महत्व,

(iii) शोध समस्या संबंधी सर्वेक्षण कार्य,

(iv) शोध समस्या परिभाशीकरण,

(v) शोध समस्या के उद्देश्य, परिकल्पनाएँ एवं उपादेयता आदि।

(ब) अध्यायों का आरंभन :-

भूमिका के उपरान्त शोधार्थी अध्यायों को क्रमबद्ध लिखना आरंभ करता है। प्रत्येक अध्याय के अंतर्गत केन्द्रीय शीर्षक, पार्श्विक शीर्षक तथा अनुच्छेद शीर्शक होते है। इन्हीं शीर्षकों की सहायता से संबंधित समस्या का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। अध्यायों को लिखते समय शोधार्थी को निम्नांकित बातों को ध्यान रखना आवश्यक है-

(i) अध्यायों में क्रमबद्धता का होना आवश्यक है।

(ii) अध्यायों को लिखते समय इस बात का ध्यान रखना जरूरी हो जाता है कि उससे सम्बद्ध कोई महत्वपूर्ण बिन्दु छूट न जाये।

(iii) अध्यायों में उद्धरण, पाद टिप्पणी आदि का स्थान सुनिश्चित हो।

(iv) अध्यायों के अंत में संदर्भ ग्रंथ का उल्लेख किया जाना चाहिए।

(v) अध्यायों की संख्या शोध विषय तथा समस्या के अनुरूप होनी चाहिए। अध्यायों की अत्यधिक संख्या तथा उनकी पुनरावृत्ति शोध-प्रबंध को शिथिल और दूषित करती है।

(स) उद्धरण :-

कभी भी उद्धरण देने के लिए उद्धरण देने का समय, उद्धरण के प्रकार एवं उद्धरण की विधि आदि का ध्यान रखना आवश्यक होता है—

(1) उद्धरण का समय :- उद्धरण के समय के अंतर्गत निम्न बातें शामिल की जा सकती है-

(i) शोधार्थी को बहुत अधिक आवश्यकता पड़ने पर ही उद्धरण का सहारा लेना चाहिए।

(ii) सामान्यतः उद्धरण का सहारा तभी लिया जाता है जब शोधार्थी अपने शब्दों में लेखक का विचार प्रस्तुत नहीं कर पाता।

(iii) उद्धरणों की लंबाई भी कम रखनी चाहिए।

(iv) उद्धरण परिस्थिति अनुरूप हो।

(v) उद्धरण का सहारा शोधार्थी उस समय ले सकता है जबकि उसे उस उद्धरण की आलोचना करनी हो।

(2) उद्धरण का प्रकार :- सामान्यतः उद्धरण को निम्नलिखित प्रकार का होना चाहिए-

(i) उद्धरण जिस रूप में है उसी रूप में बिना किसी काट-छाँट के प्रस्तुत करना।

(ii) उद्धरण में किसी चीज को समझाने के लिए कोष्ठक में लिखकर स्पष्ट किया जा सकता है।

(iii) उद्धरण बहुत अधिक लंबा होने पर पदलोप चिह्न का उपयोग कर सकते हैं लेकिन ध्यान इस बात का रखा जाता है कि लिखित भाग पाठक के समझने हेतु पर्याप्त हो।

(3) उद्धरण की विधि :- उद्धरण को प्रस्तुत करने हेतु निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है—

(i) आकार विधि

(ii) पदलोप चिह्न विधि

(iii) अंतर्वेशन विधि

(iv) विशेश उद्धरण (उद्धरण के अंतर्गत उद्धरण)

(द) पाद टिप्पणी :-

पाद टिप्पणी का अभिप्राय और प्रयोजन शोधार्थी को सुविधापूर्वक समझने और साथ-साथ पाठक को उसका परीक्षण करने की सुविधा प्रदान करना है। सामान्यतः पाद टिप्पणी संबद्ध पृष्ठ के नीचले भाग में लिखा जाता है। यह पाद टिप्पणी एक प्रकार से संबंधित तथ्य का विवरण प्रस्तुत करता है। पाद टिप्पणी में ऐसी अन्य बातों का भी उल्लेख मिलता है जिसका विस्तृत विवरण प्रबंध के अंदर प्रस्तुत करना संभव नहीं होता। टिप्पणी में जिस ग्रंथ से उद्धरण को ग्रहण किया जाता है उस ग्रंथ के पृष्ठ संख्या का उल्लेख किया जाना आवश्यक होता है।

5. शोध प्रबंध का अंतिम भाग

शोध प्रबंध के इस भाग के अंतर्गत सामान्यतः संदर्भ ग्रंथ सूची, परिशिष्ट आदि आते हैं। इसका विवरण निम्नांकित है-

(अ) संदर्भ ग्रंथ सूची :-

संदर्भ ग्रंथ सूची उन समस्त ग्रंथों की सूची होती है जिसका उपयोग शोधार्थी ने शोध लेखन के दौरान किया है। यह सूची शोध काल के दौरान शोधार्थी द्वारा प्रयुक्त पुस्तक, पत्र-पत्रिकाओं, शोध पत्रावलियों, प्राथमिक तथा द्वितीयक स्त्रोतों से संकलित समस्त सामग्री का विस्तृत विवरण होता है।

साधारणतः शोधार्थी द्वारा अपने शोध में दो प्रकार की साक्ष्य-सामग्री का उपयोग किया जाता है-

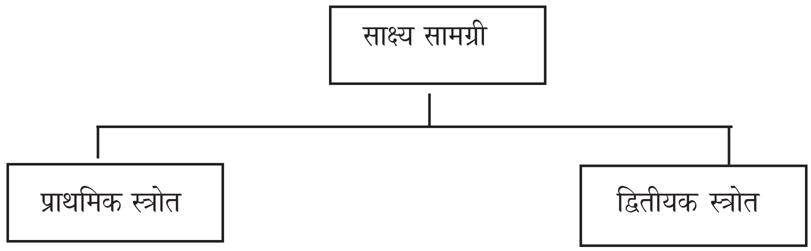

1. मूल लेख
2. पाण्डुलिपियाँ
3. मूल पुस्तकें
4. शोध-पत्र
5. अन्य शोध ग्रंथ
6. इन्टरनेट आदि।

1. एनसाइक्लोपीडिया
2. यीअर बुक्स
3. अनुवादित पुस्तकें
4. एब्स्ट्रैक्ट्स
5. सम्पादित ग्रंथ
6. अन्य पुस्तकें आदि।

सुविधा की दृष्टि से संदर्भ ग्रंथ सूची को निम्नलिखित खंडों में भी बाँटा जा सकता है-
1. सहायक ग्रंथ सूची (पुस्तकें)
2. आधार ग्रंथ सूची
3. समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ
4. वेबसाइट्स
5. शब्दकोश
6. यीअर बुक्स

आजकल संदर्भ ग्रंथ सूची को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसको लिखने का क्रम निम्नलिखित है-
1. लेखक के नाम का अंतिम भाग
2. लेखक के नाम का अग्र भाग
3. पुस्तक का नाम
4. पुस्तक का प्रकाशन स्थान
5. संस्करण
6. प्रकाशन वर्ष
7. पृष्ठ संख्या

(ब) परिशिष्ट :-

कभी-कभी शोध प्रबंध के लेखन के समय कुछ विशिष्ट भाग को वैज्ञानिक कारण से उस स्थान पर लिख पाना संभव नहीं हो पाता, तो उसे परिशिष्ट में जोड़ दिया जाता है। परिशिष्ट में उस भाग को लिख देने से शोधग्रंथ का आकार भी प्रभावित नहीं होता है और न ही पाठक को शोध-ग्रंथ पढ़ते समय कोई व्यवधान होती है। इन सबके अलावा परिशिष्ट के अंतर्गत प्रश्नावली, स्मृति-पत्र, साक्षात्कार-पत्र, मानचित्र दीर्घ प्रश्न आदि जानकारी को रखा जाता है।

6. निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शोध प्रबंध लेखन का कार्य अत्यंत वैज्ञानिक है। लेखन के समय विषय की समझ, अभिव्यक्ति का ढंग, क्रमबद्धता, लेखन प्रणाली, व्यवस्था आदि का ध्यान रखना आवश्यक होता है। शोधार्थी को शोध ग्रंथ लिखते समय भाषानुरूप शब्दों का चयन करना होता है। शोध ग्रंथ की भाषा सरल सुगम्य एवं प्रभावशाली होनी चाहिए। इस हेतु शोधार्थी को भाषा पर अच्छी पकड़ होनी चाहिए। शोध प्रबंध का लेखन कार्य का अन्य पुरुष के रूप में किन्तु आभार प्रदर्शन का कार्य प्रथम पुरुष के रूप में किया जाना चाहिए।

अतः शोध प्रबंध एक वैज्ञानिक एवं सृजनात्मक कृति है, जिसमें शोधार्थी के विचार एवं समझ की जानकारी मिलती है। वास्तव में शोध प्रबंध शोधार्थी के मानसिक विचारों की स्पष्ट छाप है। शोधार्थी में जितना जिज्ञासा तथा ज्ञान होगा, शोध प्रबंध उतना ही अधिक श्रेष्ठ व उत्तम होगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. वशिष्ठ, के.सी., (डॉ.), शिक्षण एवं शोध अभियोग्यता, उपकार प्रकाशन आगरा-2, संस्करण-2016, पृष्ठ-156-169.
2. गणेशन, एस.एन., अनुसंधान की प्रविधि और प्रक्रिया, लोकभारती प्रकाशन-2007, पृष्ठ-96-109.
3. फड़िया, बी.एल., (डॉ.), शोध पद्धतियाँ, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, पृष्ठ-55-64.
4. कोठारी, सी.आर., शोध पद्धति, न्यू एज इन्टरनेशनल पब्लिशर्स बंगलुरू, कर्नाटक, पृष्ठ-94-110.
5. गणेशन, एस.एन., अनुसंधान प्रविधि सिद्धाँत और प्रक्रिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2009, पृष्ठ-141-185.
6. अस्थाना, बिपिन, मूलभूत अनुसंधान पद्धति एवं सांख्यिकी, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, संस्करण-2024, पृष्ठ-84-126.
7. यादव, के.ए.; कुमी, दुर्गेश, अनुसंधान प्रविधि, बी.एफ.सी. पब्लिकेशन्स, लखनऊ, संस्करण-2022, पृष्ठ-9-25, पृष्ठ-35-49.
8. टौंडियाल, सच्चिदानंद; फाटक, अरविन्द, शैक्षणिक अनुसन्धान का विधिशास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ-15-27.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

दोहरा अभिशाप : दलित स्त्री की त्रासदी

राकेश कुमार
शोध छात्र, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

शोध सार :- कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' किसी दालित स्त्री द्वारा लिखी गई प्रथम आत्मकथा है। लेखिका ने अपने लेखन में दलित महिलाओं के उत्पीड़न और संघर्ष को सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया है। साथ ही पुरुषवादी मानसिकता पर तीव्र प्रहार भी करती है। उनके लेखन में दलित महिला रचनाकारों को प्रेरणा और बल दिया है। लेखिका के जीवन की ही नहीं बल्कि तमाम दलित स्त्रियों के साथ यह त्रासदी है कि एक तरफ वर्णवादी व जाति प्रधान समाज में जातीय दंश झेलना पड़ता है, तो दूसरी तरफ पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों के प्रताड़ना व शोषण का भी सामना करना पड़ता है। इस शोध-आलेख में 'दोहरा अभिशाप' आत्मकथा के माध्यम से दलित चेतना और दलित स्त्री की त्रासदी को देखा जा सकता हैं।

बीज शब्द : दलित, चेतना, अंधविश्वास, आम्बेडकर, मनुवाद, गरीबी, जाति, शोषण, प्रतिरोध।

विश्व विख्यात स्त्रीवादी लेखिका 'सिमोन द बोउवार' अपनी चर्चित किताब 'द सेकेण्ड सेक्स' (स्त्री उपेक्षिता) में लिखती हैं कि "स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता हैं।" इस कथन को चरितार्थ होते 'दोहरा अभिशाप' में देखा जा सकता है। 'दोहरा अभिशाप' नामक किताब कौशल्या बैसंत्री की तीन पीढ़ियों को प्रस्तुत करती है, जिसमें लेखिका स्वयं, लेखिका की माँ भागीरथी एवं नानी-आजी शामिल हैं। लेखिका अपनी आत्मकथा की भूमिका में लिखती हैं कि "मैं लेखिका नहीं हूँ ना साहित्यिक लेखिका, अस्पृश्य समाज में पैदा होने से जातियता के नाम पर मानसिक यातनाएँ सहन करनी पड़ी इसका मेरे संवेदनशील मन पर असर पड़ा। मैंने अपने अनुभव खुले मन से लिखे हैं। पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन बर्दाश्त नहीं करता। पति तो इस ताक में रहता है कि पत्नी पर अपने पक्ष को उजागर करने के लिए चरित्र हीनता का ठप्पा लगा दे।"[1]

'दोहरा अभिशाप' से महाराष्ट्र में दलित चेतना के स्वरूप का पता चलता हैं। कौशल्या बैसंत्री महाराष्ट्र की रहने वाली थीं, जहाँ दलित चेतना एक तरह से विरासत में मिलती है। प्रो. बद्रीनारायण का मानना है कि "दलित आन्दोलन 1877 के आस-पास सबसे पहले महाराष्ट्र में शुरू हुआ। ज्योतिबा फूले, गोपाल बाबा, बालकार और फिर बी॰ आर॰ आम्बेडकर इस आन्दोलन से जुड़े रहे। शुरू से इस आन्दोलन में प्रकाशन और प्रचार पर खूब जोर दिया गया।"[2]

सदियों से समाज में स्त्री को दूसरे स्थान पर रखा गया। पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियाँ अधिकांश आर्थिक दृष्टिकोण से पुरुष पर ही निर्भर होती हैं और पुरुष स्त्री को हमेशा से घर-परिवार की चाकरी करना ही स्त्री का कर्तव्य एवं अधिकार समझता हैं। इसी तरह स्त्रियाँ दोहरे शोषण के संताप को उठा रही हैं। इसी आधार पर कौशल्या बैसंत्री ने अपनी आत्मकथा का नाम 'दोहरा अभिशाप' रखा है। कौशल्या बैसंत्री अपनी आत्मकथा में आर्थिक संघर्ष को झेलती हुई कहती हैं कि "मेरी माँ, बाबा (पिता) नागपुर की एक प्रेस मिल में काम करते थे। माँ धागों बनाने वाले विभाग में काम करती थी और पिता जी

मशीनों में तेल डालने का काम करते थे।"[3]

पैसों की खातिर दलितों को कई बार अपमान के घूँट पीने पड़ते हैं। वर्ण व्यवस्था की व्यवसायगत बाध्यता उनकी आर्थिक स्वतंत्रता के मार्ग में प्रमुख रोड़ा है। उनके लिये समाज में ऐसे व्यवसाय निश्चित किये गये हैं। जिसमें आमदनी कम और मेहनत अधिक होती है। लेखिका की माँ बहुत जुझारू महिला थीं। जब वे पौष कॉलोनी में कुमकुम, काजल, चुड़ियाँ आदि बेचने जाती थीं तो सवर्ण औरतें पुराने कपड़े पहनकर उनसे चूड़ियाँ पहनती थीं, बाद में नहा धो लेती थीं। पैसों की वजह से उनकी माँ को यह सब अपमान सहन करना पड़ता था। लेखिका अपनी बस्ती में मैट्रिक पास करने वाली पहली लड़की थी। दलित जब अपने पुराने मूल्यों को छोड़कर नया सामाजिक व संस्कृतिक आधार ढूंढने निकलते हैं तो उन्हें तरह-तरह से आपमानित करके पीछे ढकेलने की कोशिश होती है। जब कौशल्या बैसंत्री साइकिल पर सवार होकर अपने घर से निकलती थीं, तो उच्च्य वर्गीय लड़के उन पर जलते हुए कहते थे "ये हरिजन बाई जा रही हैं। दिमाग तो देखो, इसका बाप तो भिखमंगा है, साइकिल पर जाता देखकर बड़े कुत्सित ढंग से हँसती थीं।"[4]

'दोहरा अभिशाप' एक स्त्री की अंतहीन पीड़ा की कहानी तो हैं ही, समाज का सच भी है। सभ्य समाज की वास्तवीक मानसिकता कितनी धिनौनी हो सकती है और वह मौजूदा दौर में भी बनी हुई है। यह बहुत शर्मसार करने वाली बात है। अस्पृश्यता का दंश और स्त्री होने की पीड़ा 'दोहरा अभिशाप' में कितने स्तरों पर उभरी है, इसको प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। 'दोहरा अभिशाप' जीवंत दस्तावेज है एक दलित स्त्री के जीवनानुभव और नियति की निष्ठुरता का। 'दोहरा अभिशाप' से महाराष्ट्र के दलितों में आई चेतना का परिचय भी प्राप्त होता है। वहाँ दलितों ने बाबा साहब के विचारों और मान्यताओं का अक्षरशः पालन करने का मन बना लिया था। इसी का परिणाम था कि कौशल्या बैसंत्री घर में प्रौढ़ शिक्षा की कक्षाएं भी होने लगीं। वे लिखती हैं- "बस्ती में प्रौढ़ शिक्षा कुछ लोगों ने शुरू की थी। मिल से कुछ लोग आते थे। हमारे घर में कक्षा लगती थी। माँ को कोई साथ चाहिए था। आत्मा, सारणी मौसी, भिल्लन आदि को साथ में बिठाती थीं। वह मिट्टी का तेल भी लालटेन जलाने के लिए अपनी ओर से देती थीं। माँ ने अ से लेकर ह तक अक्षर पढ़ना और लिखा सीखा, बाबा ने सीखा। उन्होंने कुछ जोड़ा अक्षर और सौ तक गिनती भी सीखा ली।"[5] जिस वक्त माँ बाप अपने छोटे-छोटे बच्चों की पढ़ाई के बारे में नहीं सोच पाते थे उस वक्त प्रौढ़ शिक्षा की कक्षाएं लगाना कोई कम प्रगतिशील कदम नहीं था। एक स्त्री के शिक्षित होने का मतलब है, एक परिवार का शिक्षित होना। कौशल्या अपनी आत्मकथा में एक तटस्थ प्रेक्षक की भाँति उपस्थित होती हैं। वे अपने अनुभवों को काट-छाँटकर प्रस्तुत नहीं करतीं। दलित समाज की आंतरिक कमजोरियों पर पर्दा नहीं डालतीं, यही करण है कि दलितों में भी पाई जाने वाली जातिगत विभिन्नताओं को वे खुलकर प्रस्तुत करती हैं। जैसे कि "हमारी महार जाती में साढ़े बारह उपजातियाँ थीं। कोसरे बाबने, लाउवन, आधवन, समावेशी, बारके, झाड़े, बाबने बैगरह, सबसे खान-पान हो जाता था परन्तु विवाह मात्र अपने ही उपजाति में होता था।"[6]

कौशल्या की जाती के विशय में स्कूल में सिर्फ अध्यापिका ही जानती हैं जो इस बात का फायदा उठाती हैं। वह उससे अपने छोटे-मोटे काम करवाया करती हैं। एक बार जब किसी लड़की की किताब शिक्षिका की आलमारी में दबी रह जाति है, तब कौशल्या पर वह किताब चुराने का अभियोग उस लड़की और अध्यापिका द्वारा लगाया जाता है। कौशल्या की सफाई पर कोई विश्वास नहीं करता। ऐसा ही एक और प्रसंग है भिड़े कन्याशाला में पाँचवी कक्षा की फीस माफ काराने के लिये कौशल्या के बाबा हेड मिस्ट्रेस के चरणों में सिर झुकाते हैं, मगर दूर से ही क्योंकि वे अछूत हैं। कौशल्या जाति प्रथा की इस अमानवीयता से क्षुब्ध होकर कहती हैं- "जाति पाँति बनाने वाले का मुँह नोचने का मन करता है।"[7]

वस्तुतः स्पष्ट है कि स्त्री को आजादी परिवारिक और सामाजिक लोकतंत्र के बिना सम्भव नहीं हैं। स्त्री लोकतंत्र की आजादी के पश्चात ही साहसपूर्ण अपनी बात खुलकर कर रख सकती हैं। स्त्री को अपने आप पर भरोसा रखना होगा। कौशल्य बैसंत्री आगे कहती हैं कि आज के अनुभव से हमने सीख लिया है कि हम स्वाभिमान से अपने उन्नति करना चाहते हैं, अब हमें अपने पावर पर खड़ा होकर अपने पर भरोसा रखकर आगे बढ़ना होगा। कौशल्या के जीवन में तमाम कठिनाइयाँ और संघर्ष आते हैं और वे यथा सामर्थ्य उनसे जूझती भी हैं। अपने पति देवेन्द्र कुमार द्वारा बार-बार प्रताड़ित होने के बावजूद कौशल्या

जी अपने पति के घर को छोड़ने का साहस नहीं जुटा पाती जबकि कौशल्या से दो पीढ़ी पहले दलित समाज की ही स्त्री उनकी नानी अपने पति के उत्पीड़न से व्यथित हो घर छोड़कर नागपुर रहने का निर्णय लेती हैं और अपने पैरों पर खड़ी होती हैं। कौशल्या जी की आजी का जैसा चरित्र 'दोहरा अभिशाप' में उभरा है उसके आधार पर देखा जाए तो आजी का चरित्र नारी चेतना और अदम्य साहस के मामले में अपने युग से बहुत आगे है। इसी युग का कहना तो ज्यादा तर्कसंगत नहीं लगता क्योंकि वैसे चरित्र अपवाद रूप मे समाज में मौजूद थे। बाकी तो उत्पीड़न-शोषण अपनी नियति मान लेने वाली स्त्रियों की संख्या ही इस दोहरी मानसिकता वाले समाज में अधिक हैं।

कौशल्या जी की आत्मकथा दलित चेतना और नारी चेतना को भली-भाँति व्यक्त करती है। दलित समाज में पैदा होने के कारण दलित नारी को जातिगत दंश को तो झेलना ही पड़ता है, नारी होने के कारण सवर्ण तथा दलित दोनों ही समुदायों के पुरुषों द्वारा किये जाने वाले शोषण एवं उत्पीड़न का शिकार भी होना पड़ता है। कौशल्या जी ने इस मर्मातक सत्य का उद्घाटन 'दोहरा अभिशाप' में किया है।

सन्दर्भ

1. दोहरा अभिशाप - कौशल्या बैसंत्री, परमेश्वरी प्रकाश, नई दिल्ली, सस्करण 2015, पृष्ठ सं. भूमिका से
2. दलित वीरागनाएँ एवं मुक्ति की चाह - बद्रीनारायण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ सं. 50
3. दोहरा अभिशाप - कौशल्या बैसंत्री, पृष्ठ सं. 11
4. वही, पृष्ठ सं. 61
5. वही, पृष्ठ सं. 73
6. वही, पृष्ठ सं. 22
7. वही, पृष्ठ सं. 47

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

हिंदी उपन्यास साहित्य में किन्नर गाथा

डॉ. संजय धोटे
हिंदी विभाग प्रमुख, यशवंत महाविद्यालय, वर्धा
मोबा. 9730772209
ईमेल - dhotedr-sanjay@yahoo.com

शोध सार : इक्कीसवीं सदी ऐसी सदी है जिसमें किन्नरों पर विशेषतः उपन्यास साहित्य भरपूर मात्रा में लिखे गए और वर्तमान में भी लिखे जा रहे हैं। वर्तमान की समस्याएं विगत दशकों की समस्याओं से विपरीत है। नई सदी के उपन्यास पाठकों को अपने साथ नए विषय तथा नई-नई समस्याओं का परिचय करवाते है। जैसे किन्नर समुदाय की समस्याए। किन्नर समाज की प्रमुख समस्या में शैक्षिक समस्या, बहिष्कृत समस्या, पारिवारिक समस्या, विस्थापन समस्या, आवास समस्या, रोजगार समस्या, देहव्यापार समस्या, वेश्या समस्या, यौन हिंसा समस्या और विशेष सामाजिक समानता की समस्या आदि है। इन समस्याओं के साथ किन्नर समाज वर्तमान में भी अपने अस्तिव के लिए संघर्ष कर रहा है। वर्तमान में किन्नर समाज के संदर्भ में कानून है किंतु अस्तित्व में कुछ नहीं। समकालीन उपन्यास साहित्य में किन्नर समाज की इन कठिनाइयों एवं उनके संघर्ष को संवेदनात्मक स्तर पर प्रमुखता से उठाया गया है।

बीज शब्द : उपेक्षित, थर्ड जेंडर, संवैधानिक अधिकार, विडंबना, तिरस्कार, लिंग-दोष, यौन अभिव्यक्ति, लैंगिक विकलांगता।

प्रस्तावना : 'सदियों से जो रहे उपेक्षित, श्रीमंतों के हरम सजाकर' - हिंदी साहित्य के प्रख्यात कवि व ग़ज़लकार अदम गोंडवी की ये पंक्तियाँ सदियों से वंचना का दंश सहनेवाली किन्नर जाति की उस करुण गाथा को प्रस्तुत करती है, जो आज भी अपने अधिकारों के लिए निरंतर प्रयासरत है। समकालीन हिंदी साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात समझ आता है कि हिंदी साहित्य स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, मुस्लिम विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श एवं वृद्ध विमर्श जैसे अनेक विमर्श सामने आए। इनके साथ ही आज भी भारतीय समाज के उन पक्षों पर भी विमर्श की आवश्यकता है, जो सदियों से उपेक्षित जीवन जी रहे है। वह है—'थर्ड जेंडर' अर्थात तृतीय पंथी समाज। भारतीय न्याय व्यवस्था ने दि. 15 अप्रैल, 2014 को उच्च न्यायालय द्वारा इन्हें तीसरे लिंग के रूप में मान्यता प्रदान की गई। भारतीय समाज में 'थर्ड जेंडर' अर्थात तृतीय पंथियों को किन्नर, शिखंडी, हिजडा, कोठी, खोजा, अली, छक्का, नपुंसक, थर्ड जेंडर आदि नामों से जाना जाता है। इनके चार प्रकार होते हैं - बचुरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। बचुरा वर्ग के किन्नर वास्तविक हिजड़े होते हैं, वे जन्म से न स्त्री होते हैं ना पुरुष। नीलिमा वर्ग में वे हिजड़े आते हैं, जो किसी परिस्थितिवश या कारणवश स्वयं हिजड़े बन जाते हैं। मनसा वर्ग में वे हिजड़े आते हैं, जो मानसिक तौर पर स्वयं को हिजड़ा समझने लगते हैं और हंसा वर्ग में वे हिजड़े आते हैं, जो किसी यौन अक्षमता की वजह से स्वयं को हिजड़ा समझने लगते हैं। किन्नर समाज विश्व के हर क्षेत्र में समाहित हैं। वे मनुष्य ही हैं, सिर्फ़ उनमें प्रजनन क्षमता न होने से समाज हीन नजर से देखता है। यह वो इंसान होते हैं जो ना ही पुरूष होने का, ना ही स्त्री होने का दावा करते हैं। पौराणिक कथाओं व कहानियों में इनके प्रमाण मिलते है। हमारे समाज में जितना महत्व स्त्री

या पुरूष को मिलता है उतना इन तृतीय पंथियों को नहीं मिलता है। यह हमेशा ही परिवार, समाज एवं सरकार से उपेक्षित रहे हैं। यहाँ तक की इनका आज भी कोई स्वतंत्र अस्तिव ही स्वीकार नहीं किया गया। जिसका मार्मिक वर्णन हिंदी साहित्य की उपन्यास विधा में विविध पहलूओं को लेकर वर्णित किया गया है।

मूल आलेख : समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है, जो अन्याय की ओर ध्यान आकर्षित कर, उन खामियों को उजागर करने के साथ ही उनका समाधान भी प्रस्तुत करता है। समाज का यथार्थवादी चित्रण, समाज सुधार का चित्रण और समाज के प्रसंगों की जीवंत अभिव्यक्ति द्वारा साहित्य समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है। वर्तमान सदी के दूसरे दशक में किन्नर गाथा को ध्यान में रखकर हिंदी साहित्य की विविध विधाओं जैसे–उपन्यास, कहानी, कविता, आत्मकथा इत्यादि में अनेक रचनाओं की महती भूमिका रही है। जैसे 'मै हिजडा मैं लक्ष्मी' आत्मकथा स्वयं किन्नर जीवन व्यतीत करनेवाले लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी द्वारा लिखित है। मनोबी बंधोपाध्याय की आत्मकथा 'पुरूष तन में फंसा मेरा नारी मन' जैसे रचनाएँ किन्नर जीवन की उपेक्षित गाथा का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। हिंदी साहित्य की उपन्यास विधा में 'गुलाम मंडी' 'श्रपित किन्नर', 'तीसरी ताली', 'अस्तित्व', 'किन्नर कथा', 'दर्द न जाने कोई', 'हमसफर', 'दरमियान', 'मैं पायल', 'जिंदगी फिफ्टी फिफ्टी', 'मेरे होने में क्या बुराई है', 'मुन्नी मोबाईल', 'शिखंडी' आदि महत्वपूर्ण रचनाएँ है। कहानी विधा में 'दहलीज का दर्द', 'दास्तान ए किन्नर', 'हम भी इंसान है', 'इस जिंदगी के उस पार', थर्ड जेंडर अनुदित कहानियाँ 'ख्याहिशों के पैबंद', 'थर्ड जेंडर हिंदी कहानियाँ', 'कथा और किन्नर', 'हमख्याल' इत्यादि रचनाएँ है। इसके अलावा इस विषयों पर अब तक अनेक आलोचनात्मक पुस्तकें भी आ चुकी है। जैसे 'लैगिंक विमर्श और यमदीप', थर्ड जेंडर पर केंद्रित हिंदी का प्रथम उपन्यास 'यमदीप', 'हिंदी उपन्यास के आईने में थर्ड जेंडर', 'थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ किन्नर कथा', 'तीसरी दुनिया का सच', 'किन्नर समाज संदर्भ तीसरी ताली', 'हिंदी साहित्य में किन्नर जीवन', 'तीसरी दुनिया का यथार्थ', 'भारतीय साहित्य और समाज में तृतीय लिंगी विमर्श', 'आधी हकीकत आधा फसाना', 'अर्ध किन्नर कथा संवाद', 'थर्ड जेंडर और जिंदगी फिफ्टी फिफ्टी', 'थर्ड जेंडर अतीत और वर्तमान', जैसा साहित्य किन्नर जीवन को समर्पित है। यहाँ हमारा विषय हिंदी उपन्यास साहित्य में किन्नर गाथा को प्रस्तुत करना है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर कुछ उपन्यासों को विश्लेषण यहाँ किया जा रहा है। हिन्दी साहित्य में किन्नर समुदाय से संबंधित पहला उपन्यास 'यमदीप' (नीरजा माधव) है, जिसका प्रकाशन 2002 ई. में सामयिक प्रकाशन द्वारा किया गया था और 2009 में पुनः प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास मुख्यतः दो कथाओं को आधार बनाकर लिखा गया है जिसे लेखक ने छब्बीस भागों में विभक्त किया है। पहली कथा किन्नर वर्ग के जीवन व समाज पर आधारित है जो दीर्घकाल से हाशिए का जीवन व्यतीत करने पर विवश है तथा अपना अधूरी देह के कारण समाज के पग-पग पर तिरस्कृत होना पड़ता है। जिसका मार्मिक वर्णन लेखिका ने उपन्यास में किया है। उपन्यास में किन्नर समुदाय के अंतरंग जीवन, उनके समुदाय से जुडे रीति-रिवाज, उनके साथ होनेवाले शोषण, उनकी भीतरी वेदना तथा हदयस्पर्शी वर्णन लेखिका ने बडे ही भावनात्मक तरिके से किया है। आधुनिक जीवन शैली में लोगों को अपने घर किन्नर को बुलाना अच्छा नहीं लगता। जिस कारण किन्नर को आर्थिक नुकसान होता है। इस कारण कुछ किन्नरों को कुमार्ग पर चलने को विवश होना पड़ता है जिसका वर्णन लेखिका ने मल्लु नामक पात्र के माध्यम से सबीना के विषय में कहती है–"अब धंधा बारहों महीने एक जैसा तो नहीं रहता.....शायद इसी मजबूरी को आप सबीना को ऐसा करते देखते होंगे। नहीं तो हम कोई इंसान तो नहीं कि हमारे तन की आग हमें ऐसा करने को मजबूर करे। बस पेट की आग से .... अतः भूख के कारण विवश होकर ही इन्हें गलत तरीके अपनाने पड़ते है।"[1]

किन्नर समुदाय के जीवन संघर्ष के विद्रूप कुकर्मो का यथार्थ जीवन नीरजा माधव ने यमदीप उपन्यास में किया है। 'तीसरी ताली' उपन्यास प्रदीप सौरभ जी का एक साहसिक उपन्यास है, जो जेंडर को लेकर समाज में विद्यमान अलगाव को उकेरता है।। इस उपन्यास में वे किन्नरों के सामाजिक चलन तथा जीने के तरीके एवं शान-ओ-शोहरत पर विशेष ध्यान केंद्रित हैं। जिसका प्रकाशन 1 जनवरी, 2019 को वाणी प्रकाशन द्वारा किया गया। किन्ध्नरों का जीवन क्ष्या है और कैसे गुजर-बसर होता है, इसी पर आधारित है - तीसरी ताली। तीसरी ताली.... यानी ऐसी ताली जिसे समाज में कभी मान्यता नहीं मिली।

जिनकी दुआएं पाने के लिए लोगों में इच्छा जरूर है, लेकिन उन्ह्रें देखकर दूर हट जाने वाले लोगों की लंबी जमात भी समाज में मौजूद है। तीसरी ताली में अकेलापन है, जिसे सभी चरित्रों के जीवन में देखा जा सकता है, जो जेंडर को लेकर समाज में मौजूद अलगाव को दर्शाता है। तीसरी ताली' उपन्यास के फ्लैप पर ही उपन्यास सामाजिक स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया गया है- ''यह जीवनशैली की लिंगीयता है जिसमें स्त्री लिंगी-पुलिंगी मुख्य धाराएँ हैं जो इनको दबा देती है। नपुंसकलिंगी कहाँ कैसे जिएँगें? समाज का स्वीकृत हिस्सा कब बनेंगे? ....उपन्यास 'तीसरी ताली' लेखक की जबर्दस्त पर्यवेक्षण-क्षमता का सबूत है। यहाँ वर्जित समाज की फुतीली कहानी है, जिसमें इस दुनिया का शब्दकोश जीवित हो उठा है। लेखक की गहरी हमददी इस जिंदगी के अयाचित दुरूखों और अकेलेपन की तरफ है। इस दुनिया को पढ़कर ही समझा जा सकता है कि इस दुनिया को बाकी समाज, निर्मम क्रूरता से 'डील' करता है वही क्रूरता इनमें हर स्तर पर 'इनवर्ट' होती रहती है। उनकी जिंदगी का हर पाठ आत्मदंड, आत्मक्रूरता, चिर यातना का पाठ है। यह हिंदी का एक साहसी उपन्यास है जो जेंडर के इस अकेलेपन और जेंडर के अलगाव के बावजूद समाज में सम्मान से जीने की ललक से भरपूर दुनिया का परिचय कराता है।"[2]

निर्मला भुराड़िया का गुलाम मंडी उपन्यास सन् 2016 में सामयिक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उपन्यास मानव तस्करी, देह व्यापार, और किन्नरों की समस्याओं पर आधारित है। जो भारत ही नहीं बल्कि दुनिया भर में उपेक्षित और लगभग हाशिये में पड़े थर्ड जेंडर अर्थात किन्नरों के प्रति मानवीय संवेदना को बौद्धिक स्तर पर झकझोरता है। सामाजिक अवहेलना निश्चित ही दुखद होती है। इस सामाजिक अवहेलना का चित्रण गुलाम मंडी उपन्यास में यों हुआ हैं- "बचपन से देखती आयी हूँ। उन लोगों के प्रति समाज में तिरस्कार को, जिन्हें प्रकृति ने तयशुदा जेंडर नहीं दिया। इसमें उनका क्या दोष है? ये क्यों हमेशा त्यागे गये, सताये गये और अपमान के भागी बने, इन्हें हिजडा, किन्नर, बृहन्ला कई नामों से पुकारा जाता है, मगर हमेशा तिरस्कार के साथ ही क्यों? आखिर में बाकी इंसानों की तरह मानवीय गरिमा के हकदार क्यों नहीं?"[3]

चित्रा मुद्गल का सुप्रसिद्ध उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा लैगिक विकलांगता और उससे जुडे सामाजिक सरोकार की समस्या को उकेरनेवाला थर्ड जेंडर पर आधारित सन् 2016 में प्रकाशित है। यह उपन्यास भारतीय समाज में किन्नरों की यथा स्थिति, किन्नर जीवन की विडंबना को प्रस्तुत करता है। उपन्यास की कथा विनोद नामक किन्नर और उसकी मां वंदना बेन शाह के बीच पत्र व्यवहार के ईद-गिर्द घुमती है। उपन्यास का नायक विनोद अपने अधिकारों के लिए सजग है तब वह कहता है—"जरूरत है सोच बदलने की। संवेदनशील बनाने की। सोच बदलेगी तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कंलक मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें घूरे में नहीं फेंकेंगे। ट्रांसजेंडर के खाते में नहीं धकेलेंगे। यह पहचान जब उन्हें किन्नरों के रूप में जीने नहीं दे रही समाज में तो सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद जीने देगी? किन्नरों के रूप में समाज ने उन्हें उस खांचे में सदियों पूर्व ढकेलकर रखा हुआ है। उसी रूप में उन्हें आरक्षित करके सरकार अभिभावकों को अपराध मुक्त कर खुली छूट दे रही है। पैदा होते ही वह लिंग दोषी बच्चों को ट्रांसजेंडर जमात के हवाले कर। छुट्टी पा ले अपनी जिम्मेदारी से।"[4] विनोद यह कथन उसके भीतर अंदर छिपे आक्रोश को दर्शाता है जो समाज से बिना किसी भेद-भाव के समानता की आस लगाये बैठे है।

'किन्नर कथा' उपन्यास की विषय वस्तु की शुरूआत बुंदेलखण्ड के चित्रकूट और छतरपुर की पृष्ठभूमि पर उपजी है, इसमें बुंदेली राजघराने में जन्मी एक बच्ची सोना की कहानी है। जो पैदा होते ही राजघराने के लिए मुसीबत बन जाती है। 'किन्नर कथा' उपन्यास 1 जनवरी, 2020 को प्रकाशित किन्नर के जीवन की कथा है, जिसके लेखिका महेन्द्र भीष्म है। किन्नर जीवन को कथा वस्तु का आधार बनाते हुए लेखक ने किन्नर समाज और सामान्य समाज के मध्य स्थित विभिन्न मिथकों व यथार्थ परिस्थितियों को अलग-अलग पात्रों के माध्यम से पाठकों के समक्ष रखा है। सोना, तारा, सोनिया, नगीना जैसे किन्नर पात्रों के जीवन को प्रस्तुत करते हुए लेखक बीच-बीच में किन्नरों से संबंधित अनेक तथ्यों को भी उजागर करते हैं। विडम्बना यह है कि खुद इतने दर्द, उपेक्षा तथा घृणा से भरे जीवन को जीने के बावजूद किन्नर हमारी जिंदगी में आनंद भरने, मनोरंजन करने तथा दुआएँ देने में कभी कंजूसी नहीं करते। 'किन्नर कथा' में हाशिए के समाज (किन्नरों) के जीवन के प्रत्येक पहलू पर अत्यंत बारीकी से नज़र दौड़ाई है फिर चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक हो या शैक्षणिक,

मनोवैज्ञानिक, यौन समस्याएँ आदि। वैसे तो किन्नरों की दशा समाज में हर मायने में दयनीय है किन्तु इसमें भी मुख्य रूप से सामाजिक और आर्थिक दशा अत्यंत सोचनीय है जो कि किसी भी व्यक्ति के जीने की आरम्भिक शर्त होती है। महेन्द्र भीष्म 'किन्नर कथा' में बताते हैं कि किन्नरों का घर विकसित जगह से परे गाँव तथा अविकसित इलाकों में होता है और साथ ही उनके गुरूधाम व डेरों की संरचना का वर्णन भी लेखक ने अत्यंत विस्तार से किया है, जो कि अक्सर लोगों के लिए एक रहस्य बना रहता है। लेखक लिखते हैं- "तारा अपने किन्नर समाज का गुरु है। यह पद उसने काफी संघर्षों के बाद पाया था। किन्नर समाज में सात घर होते हैं। जिसका मुखिया नायक होता है, जो गुरु नियुक्त करता है। गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। किन्नर चाहे वह हिन्दू के यहां पैदा हुआ हो, मुस्लिम या किसी अन्य धर्म से किन्नर समाज में सम्मिलित हो, वह सभी एक पंथ के गामी बन जाते हैं, जो स्व-अर्जित आय का निर्धारित हिस्सा अपने गुरू के चरणों में ईमानदारी के साथ रखते हैं।"[5]

किन्नरों के पास रोजगार के अन्य विकल्प न होने के कारण वो वेश्यावृत्ति से जुड़ने के लिए मजबूर हो जाते है। वेश्यावृत्ति में सक्रिय होने के कारण संक्रामक यौन रोगों के शिकार भी हो जाते हैं—जैसे एड्स। 'मेरे हिस्से की धूप' उपन्यास की बबली भी वेश्यावृत्ति में लिप्त रहती है। सामाजिक असुरक्षा के कारण इनका यौन शोषण भी सर्वाधिक होता है। कभी अपने पड़ोसी, कभी रिश्तेदार और कभी अपने सहकमी द्वारा यौन शोषण के शिकार होते है। अफ़सोस तो इस बात का है कि इनके साथ होते इस अपराध के विरोध में कोई आवाज तक नहीं उठाता। 'मैं पायल' उपन्यास में पायल के साथ एक सिपाही ही यौन शोषण करने का प्रयास करता है। किन्नरों के साथ होते यौन शोषण का जिक्र 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' उपन्यास में भी किया गया है- "कैसी-कैसी मानसिकता के लोग हैं, धिक्कार है ऐसे समाज पर, जहाँ पर ऐसे इज्जतदार लोग रहते हैं जो एक हिजड़े को भी हवस मिटाने का साधन मात्र समझते हैं।"[6] हिंदी साहित्य की उपन्यास विधा व्यापक है जिसमें समाज के उपेक्षित जनों का वर्णन विविध पत्रों को लेकर किया गया है। किंतु आलेख की मर्यादा को ध्यान में रखकर में यहाँ उपरोक्त उपन्यासों के माध्यम से ही किन्नर समुदाय की पीड़ा की यथार्थ परिस्थितियों को उजागर करने का कार्य किया है।

निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि हिंदी उपन्यासकारों ने किन्नर समुदाय की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आर्थिक दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर, विभिन्न पात्रों के माध्यम से किन्नर समुदाय की दयनीय यथार्थ स्थिति का वर्णन बड़े से मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि इक्कीसवीं सदी में किन्नर समुदाय को कानूनी अधिकार दे देने से उनकी समस्याओं का अंत तब तक नहीं होगा जब तक मानवीय समाज तृतीय पंथी संबंधी अपनी पुरानी रूढ़िगत मानसिकता को नहीं बदलेंगे। तभी सामाजिक परिदृश्य में तृतीय लिंगी समुदाय समाज में अपना सर गर्व से उंचा कर, अपना जीवन व्यापन कर सकेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. माधव नीरजा- यमदीप- सुनील साहित्य सदन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण -2018 पृष्ठ क्रं. - 49
2. प्रदीप सौरभ - तीसरी ताली - वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2011, उपन्यास के फ्लैप से
3. निर्मला भुराडिया - गुलाम मंडी - सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ क्र - 07
4. चित्रा मुद्गल - पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा - सामयिक प्रकाशन - नई दिल्ली 2017 पृ.क्र. -112
5. महेन्द्र भीष्म - किन्नर कथा - सामयिक पेपर बैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली 2016 - उपन्यास के प्राक्कथन से
6. डॉ. मोनिका शर्मा- अस्तित्व की तलाश में सिमरन- माया प्रकाशन, कानपुर - पृ.क्र. -35

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

महात्मा गांधी और उनके राजनीतिक विचार

शरद मधुकर चव्हाण
पी-एच.डी रिसर्च स्कॉलर
युनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी जयपुर, राजस्थान
Email: sharadchavhan23@gmail.com

शोध सार Abstract:

गांधी के राजनीतिक विचारों में विचारों और सिद्धांतों की एक विस्तृत श्रृंखला थी, जिनमें अहिंसा, सत्याग्रह, स्वराज्य, शांति तथा ट्रस्टीशिप आदि आते हैं। "अहिंसा" गांधी के राजनीतिक दर्शन की आधारशिला थी। उनका मानना था कि सच्चा और स्थायी परिवर्तन केवल शांतिपूर्ण तरीकों से ही प्राप्त किया जा सकता है। हिंसा को नैतिक और रणनीतिक रूप से दोषपूर्ण मानते हुए अस्वीकार किया जा सकता है। अहिंसा के प्रति गांधी की प्रतिबद्धता जीवन के सभी पहलुओं तक फैली हुई थी, जिसमें व्यक्तिगत आचरण, सामाजिक संबंध और राजनीतिक कार्रवाई शामिल थी। गांधी जी की राजनीति का आधार सत्याग्रह भी था, जिसने सम्पूर्ण ब्रिटिश सरकार की नींव को हिला कर रख दिया। "सत्याग्रह" गांधी की अहिंसक प्रतिरोध की अनूठी पद्धति थी, जो सत्य और नैतिक अपील के सिद्धांतों पर आधारित थी। निष्क्रिय प्रतिरोध के विपरीत, सत्याग्रह में सक्रिय और अनुशासित भागीदारी शामिल थी, जिसका उद्देश्य आत्म-पीड़ा और नैतिक अपील के माध्यम से उत्पीड़क को परिवर्तित करना था। गांधी ने असहयोग आंदोलन, नमक मार्च और भारत छोड़ो आंदोलन सहित विभिन्न अभियानों में सत्याग्रह का इस्तेमाल किया, औपनिवेशिक सत्ता को चुनौती देने और जन समर्थन जुटाने में इसकी प्रभावशीलता का प्रदर्शन किया। महात्मा गांधी, जिन्हें भारत में 'राष्ट्रपिता' के रूप में सम्मानित किया जाता है, आधुनिक भारतीय राजनीति के सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्वों में से एक थे। उनके राजनीतिक विचारों ने न केवल भारत के स्वतंत्रता संग्राम को दिशा दी, बल्कि विश्व के अनेक संघर्षों और आंदोलनों में भी प्रेरणा का कार्य किया। गांधीजी का राजनीतिक दर्शन सत्य, अहिंसा, स्वराज, धर्म और नैतिकता जैसे सिद्धांतों पर आधारित था, जिन्हें उन्होंने अपने जीवन और कार्यों के माध्यम से स्थापित किया। उनके राजनीतिक विचारों की चर्चा विभिन्न पहलुओं में की जा सकती है, जिनमें सत्य और अहिंसा, सत्याग्रह, स्वराज, शिक्षा और समाज सुधार, धर्म और राजनीति का संबंध, सार्वजनिक सेवा और नेतृत्व, धार्मिक एकता और सांप्रदायिक सद्भाव, और अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण शामिल हैं।

प्रस्तावना

महात्मा गांधी के राजनीतिक विचार, राजनीतिक दर्शन और व्यवहार में अद्वितीय स्थान रखते हैं। अहिंसा, सत्य और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित उनके विचारों ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को बदल दिया और दुनिया भर में राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों को प्रेरित किया। गांधी के राजनीतिक विचारों के ऐतिहासिक संदर्भ, दार्शनिक आधार और मूल सिद्धांतों की जांच करके, इस अध्ययन का उद्देश्य उनकी विरासत और समकालीन समय में उनकी प्रासंगिकता की

व्यापक समझ प्रदान करना है। नैतिक सिद्धांतों पर आधारित न्यायपूर्ण और दयालु समाज के बारे में गांधी का दृष्टिकोण आधुनिक दुनिया की चुनौतियों का समाधान करने के लिए एक कालातीत और शक्तिशाली रूपरेखा प्रदान करता है।

1. सत्य, अहिंसा और सत्याग्रहः गांधीजी के राजनीतिक विचारों का केंद्रबिंदु 'सत्य' और 'अहिंसा' है। उनका मानना था कि सत्य एक सार्वभौमिक सिद्धांत है, जिसे खोजने के लिए मनुष्य का प्रयास निरंतर रहना चाहिए। सत्य के प्रति उनकी आस्था धार्मिक और नैतिक आधार पर थी। उन्होंने सत्य की खोज को मानव जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य माना। उनके अनुसार, सत्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा आवश्यक है। अहिंसा का अर्थ केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं है, बल्कि यह विचारों, शब्दों और कार्यों में किसी भी प्रकार की हिंसा का त्याग करना है। अहिंसा, गांधीजी के लिए एक सशक्त साधन था, जिसके माध्यम से उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया। उनका कहना था कि "अहिंसा केवल एक नीति नहीं, बल्कि यह एक जीवन जीने की शैली है।"

गांधीजी ने अपने राजनीतिक संघर्ष को 'सत्याग्रह' का नाम दिया, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'सत्य के प्रति आग्रह'। सत्याग्रह, गांधीजी के राजनीतिक विचारों की व्यावहारिक अभिव्यक्ति थी। यह एक ऐसा साधन है, जिसमें अहिंसा और सत्य के बल पर अन्यायपूर्ण सत्ता और नीतियों का विरोध किया जाता है। सत्याग्रह का पहला प्रयोग उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में किया, जहां उन्होंने भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष किया। भारत लौटने के बाद, उन्होंने चंपारण सत्याग्रह, खेड़ा सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन के माध्यम से ब्रिटिश शासन के खिलाफ सत्याग्रह की शक्ति का परिचय दिया। सत्याग्रह के माध्यम से गांधीजी ने दिखाया कि किसी भी संघर्ष को शांति और अहिंसा के मार्ग पर चलकर भी जीता जा सकता है। गांधीजी का जीवन सत्य और संघर्ष का पर्याय था। उनका मानना था कि संघर्ष को सत्य के मार्ग पर ही चलना चाहिए और संघर्ष का उद्देश्य केवल शत्रु को पराजित करना नहीं, बल्कि उसे भी सत्य और अहिंसा के मार्ग पर लाना होना चाहिए। उन्होंने हर प्रकार के संघर्ष को सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों के माध्यम से हल करने की कोशिश की। गांधीजी ने कहा, ष्सत्य के लिए किया गया संघर्ष हमेशा ही कठिन होता है, लेकिन अंत में विजय सत्य की ही होती है।'' उन्होंने अपने जीवन में कई बार जेल यात्राएं कीं और ब्रिटिश शासन के अत्याचारों को सहा, लेकिन कभी भी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया। उनका संघर्ष व्यक्तिगत अहंकार या स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के कल्याण के लिए था।

2. स्वराजः गांधीजी के राजनीतिक विचारों में 'स्वराज' का विशेष महत्व था। स्वराज का अर्थ केवल ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता नहीं था, बल्कि यह आत्म-नियंत्रण, आत्म-संयम और आत्म-निर्भरता का प्रतीक था। गांधीजी के अनुसार, स्वराज की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हर व्यक्ति आत्म-निर्भर बने और अपने जीवन का संचालन नैतिकता और सच्चाई के आधार पर करे।

गांधीजी ने स्वराज के दो स्तरों की परिकल्पना की–

व्यक्तिगत स्वराजः इसमें व्यक्ति का आत्म-नियंत्रण, आत्म-निर्भरता, और नैतिकता पर आधारित जीवनशैली शामिल है।

राष्ट्रीय स्वराजः इसमें देश का आत्म-निर्भर होना, अपने संसाधनों का सही उपयोग, और सभी के कल्याण की भावना निहित है। गांधीजी का मानना था कि स्वतंत्रता तभी सार्थक हो सकती है जब हर नागरिक स्वराज के मूल्यों को आत्मसात करे।

3. शिक्षा और समाज सुधार : गांधीजी ने शिक्षा को समाज सुधार का एक महत्वपूर्ण साधन माना। उन्होंने 'नई तालीम' (बुनियादी शिक्षा) का समर्थन किया, जिसमें शारीरिक श्रम, कौशल विकास, और नैतिक शिक्षा को प्रमुखता दी गई। उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को आत्म-निर्भर बनाना और समाज के प्रति उसकी जिम्मेदारियों का बोध कराना है।

समाज सुधार के क्षेत्र में गांधीजी ने अस्पृश्यता उन्मूलन, स्त्री शिक्षा और महिलाओं के अधिकारों की वकालत की। उन्होंने

'हरिजन' आंदोलन के माध्यम से समाज में व्याप्त छुआछूत और जातिगत भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास किया। उनका मानना था कि जब तक समाज के सभी वर्गों का उत्थान नहीं होगा, तब तक सच्चे स्वराज की स्थापना नहीं हो सकती।

4. धर्म और राजनीति का संबंध : गांधीजी का मानना था कि राजनीति को धर्मनिष्ठा के सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए, लेकिन उनका 'धर्म' किसी विशेष आस्था या संप्रदाय से नहीं जुड़ा था। उनके लिए धर्म का अर्थ नैतिकता, सत्य और अहिंसा था। उन्होंने राजनीति में नैतिकता और सच्चाई को स्थापित करने का प्रयास किया और कहा कि ष्धर्म रहित राजनीति मृतक के समान है। उनके अनुसार, धर्म का अर्थ नैतिक मूल्यों का पालन करना और अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना है। गांधीजी ने राजनीति को नैतिकता से जोड़कर एक नई दिशा दी, जो आज भी प्रासंगिक है। महात्मा गांधी के अनुसार, राजनीति का उद्देश्य केवल सत्ता प्राप्ति नहीं होना चाहिए, बल्कि यह एक नैतिक जिम्मेदारी है, जिसका लक्ष्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति की भलाई सुनिश्चित करना है। उनका कहना था कि राजनेताओं और समाज सेवकों का जीवन नैतिकता, सत्य, और पारदर्शिता से प्रेरित होना चाहिए। उन्होंने राजनीति में सादगी, सेवा और त्याग की भावना को सर्वोपरि रखा। उनके विचार में, राजनीति नैतिकता के बिना अधूरी है। उन्होंने कहा, 'राजनीति को धर्म और नैतिकता से अलग नहीं किया जा सकता।' गांधीजी ने इस अवधारणा को न केवल अपने भाषणों में व्यक्त किया, बल्कि अपने जीवन में भी इसे पूरी तरह से लागू किया। उनका व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन सादगी, संयम, और नैतिकता का जीवंत उदाहरण था, जिसने उन्हें एक सच्चे नेता के रूप में स्थापित किया। गांधीजी ने राजनीति को सार्वजनिक सेवा का एक माध्यम माना। उनके अनुसार, एक सच्चा नेता वही है, जो समाज की सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित करे। उन्होंने स्वयं को 'जनसेवक' कहा और लोगों के दुख-दर्द को समझने के लिए उनके बीच रहे। उन्होंने सादगी, सत्य, और ईमानदारी को एक नेता के प्रमुख गुणों के रूप में परिभाषित किया। उन्होंने कहा कि नेता का उद्देश्य केवल सत्ता पाना नहीं होना चाहिए, बल्कि लोगों की सेवा करना और समाज को नैतिकता और सच्चाई के मार्ग पर ले जाना होना चाहिए।

5. धार्मिक एकता और सांप्रदायिक सद्भाव : गांधीजी ने हमेशा धार्मिक एकता और सांप्रदायिक सद्भाव का समर्थन किया। उनका मानना था कि सभी धर्म एक ही सत्य की ओर ले जाते हैं। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा देने के लिए कई प्रयास किए और धार्मिक दंगों के दौरान उपवास और प्रार्थना का सहारा लेकर शांति और सद्भावना का संदेश दिया। उनका मानना था कि धार्मिक मतभेदों के बावजूद, हम सभी एक ही समाज का हिस्सा हैं और हमें मिलकर रहना चाहिए। उन्होंने धार्मिक एकता को राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक बताया और कहा कि "सभी धर्मों का सम्मान करना ही सच्ची धार्मिकता है।" गांधीजी का राजनीतिक दर्शन न केवल भारत तक सीमित था, बल्कि उन्होंने विश्व के विभिन्न देशों के नेताओं और आंदोलनों को भी प्रेरित किया। मार्टिन लूथर किंग जूनियर, नेल्सन मंडेला और दलाई लामा जैसे नेता गांधीजी के सिद्धांतों से प्रभावित थे। उन्होंने यह सिखाया कि अहिंसा और सत्य के माध्यम से विश्व में शांति और सद्भाव की स्थापना की जा सकती है। गांधीजी ने दिखाया कि अहिंसा और सत्याग्रह के माध्यम से किसी भी संघर्ष का समाधान किया जा सकता है। उन्होंने राष्ट्रों के बीच आपसी सहयोग, सह-अस्तित्व और शांति का समर्थन किया और अपने जीवन में इन मूल्यों का पालन करते हुए एक आदर्श प्रस्तुत किया।

6. सामाजिक समानता और मानवाधिकारों के प्रति दृष्टिकोण : महात्मा गांधी ने अपने राजनीतिक विचारों के माध्यम से सामाजिक समानता और मानवाधिकारों की वकालत की। उन्होंने जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के खिलाफ दृढ़ता से आवाज उठाई। गांधीजी ने हरिजनों (जो बाद में दलितों के रूप में जाने गए) के अधिकारों के लिए संघर्ष किया और उन्हें समाज में समान स्थान दिलाने के लिए आंदोलन चलाए। उन्होंने अपने आश्रम में सभी जातियों और धर्मों के लोगों को समान रूप से रहने और कार्य करने का अवसर प्रदान किया, जिससे उन्होंने सामाजिक समानता का उदाहरण प्रस्तुत किया। गांधीजी का मानना था कि जब तक समाज में समानता, बंधुत्व और सहयोग की भावना नहीं होगी, तब तक किसी भी राष्ट्र का समग्र विकास संभव नहीं है। उन्होंने कहा कि समाज का उत्थान तभी होगा जब प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों का सम्मान हो और उसे अपने जीवन जीने का स्वतंत्र अवसर प्राप्त हो। इसलिए, उन्होंने समाज सुधार और जाति-पांति की दीवारों को

गिराने की दिशा में अनेक प्रयास किए।

7. विकेंद्रीकरण और ग्राम स्वराज : महात्मा गांधी का राजनीतिक दृष्टिकोण विकेंद्रीकृत शासन प्रणाली और ग्राम स्वराज के विचार पर आधारित था। उनका मानना था कि भारतीय समाज का आधार गांव हैं और यदि गांव मजबूत और आत्मनिर्भर होंगे, तो ही भारत एक सशक्त राष्ट्र बन सकेगा। उन्होंने ग्राम स्वराज की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें हर गांव आत्मनिर्भर हो, अपने संसाधनों का उपयोग करके अपने निर्णय स्वयं ले सके, और किसी भी बाहरी हस्तक्षेप के बिना विकास कर सके। गांधीजी के विचारों में विकेंद्रीकरण का महत्व था, जहां सत्ता का केंद्रीकरण न हो और प्रत्येक व्यक्ति या संस्था को अपनी स्वतंत्रता और अधिकारों का सम्मान मिले। ग्राम स्वराज का यह विचार आज भी ग्रामीण विकास और पंचायती राज व्यवस्था के रूप में प्रासंगिक है, जहां गांवों को अधिक अधिकार और स्वतंत्रता प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। गांधीजी का आर्थिक दृष्टिकोण 'स्वदेशी' की अवधारणा पर आधारित था। उनका मानना था कि हमें अपने देश के उत्पादों और संसाधनों का उपयोग करना चाहिए और विदेशी वस्त्रों तथा उत्पादों का बहिष्कार करना चाहिए। स्वदेशी का अर्थ केवल आर्थिक स्वतंत्रता नहीं था, बल्कि यह आत्मनिर्भरता, स्थानीय कारीगरों और कुटीर उद्योगों के विकास का भी प्रतीक था। गांधीजी ने भारतीय लोगों को चरखे के माध्यम से कातना और खादी पहनने का संदेश दिया। उनका मानना था कि खादी केवल एक वस्त्र नहीं, बल्कि स्वदेशी आंदोलन का प्रतीक है, जो आर्थिक स्वतंत्रता और आत्म-निर्भरता को प्रकट करता है। उन्होंने कहा कि ष्स्वदेशी का अर्थ है अपने देश की आत्मा को पहचानना और उसके अनुसार ही अपनी जीवन शैली का निर्माण करना।''

गांधीजी का पर्यावरण और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण भी उनके जीवन और दर्शन का एक अभिन्न हिस्सा था। उनका मानना था कि मानव को प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके जीवन जीना चाहिए। उन्होंने प्रकृति के अंधाधुंध दोहन का विरोध किया और कहा कि हमें प्रकृति के संसाधनों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि वह भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित रहें। गांधीजी का विचार था कि विकास का उद्देश्य केवल भौतिक समृद्धि नहीं होना चाहिए, बल्कि यह पर्यावरण, समाज और व्यक्ति के बीच संतुलन बनाने वाला होना चाहिए। उनके अनुसार, ''पृथ्वी सबकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त है, लेकिन यह किसी एक के लालच को पूरा नहीं कर सकती।'' उनके ये विचार आज की पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान के लिए भी प्रासंगिक हैं।

8. महात्मा गांधी और महिला सशक्तिकरण : महात्मा गांधी ने अपने राजनीतिक विचारों और आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका को भी सशक्त बनाया। उन्होंने कहा कि समाज में महिलाओं को समान अधिकार और सम्मान मिलना चाहिए। उनके नेतृत्व में हुए आंदोलनों में महिलाओं ने भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। वे मानते थे कि महिलाओं में न केवल समाज का नेतृत्व करने की क्षमता है, बल्कि वे समाज में नैतिकता और सच्चाई की स्थापना में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। गांधीजी ने महिलाओं की शक्ति और उनकी साहसिकता को मान्यता दी और कहा कि ''यदि एक महिला अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो जाए, तो वह समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती है।'' उन्होंने महिलाओं के प्रति समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता और भेदभाव को समाप्त करने के लिए कई प्रयास किए और उन्हें समाज में बराबरी का स्थान दिलाने की वकालत की।

निष्कर्ष

महात्मा गांधी के राजनीतिक विचार और सिद्धांत आज भी भारत और विश्व के लिए प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं। सत्य, अहिंसा, स्वराज, और आत्म-निर्भरता के उनके सिद्धांत न केवल भारतीय समाज और राजनीति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए, बल्कि उन्होंने विश्व स्तर पर भी संघर्षों के समाधान के लिए एक नई दिशा प्रस्तुत की। गांधीजी का जीवन और उनके विचार हमें यह सिखाते हैं कि नैतिकता, सत्य, और सेवा के मार्ग पर चलकर समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास को संभव बनाया जा सकता है। महात्मा गांधी के राजनीतिक दर्शन को समझना, केवल उनके विचारों को जानना नहीं है, बल्कि यह एक ऐसे जीवन को अपनाने की प्रेरणा है, जो सत्य, अहिंसा, और मानवता के आदर्शों पर आधारित हो। उनका जीवनदर्शन हमें यह

सिखाता है कि वास्तविक स्वतंत्रता और विकास की प्राप्ति तभी संभव है, जब हम नैतिकता, आत्म-नियंत्रण और मानवता के सिद्धांतों को अपनाएं और अपने जीवन का उद्देश्य समाज और राष्ट्र की सेवा को बनाएं। महात्मा गांधी के राजनीतिक विचार आज भी प्रासंगिक हैं और वैश्विक स्तर पर समाज, राजनीति और नैतिकता के लिए प्रेरणास्रोत बने हुए हैं। उनके विचारों में सत्य, अहिंसा, स्वराज, और धार्मिक सद्भाव जैसे सिद्धांत निहित हैं, जो न केवल भारत की आजादी के संघर्ष में महत्वपूर्ण थे, बल्कि आज भी विश्व में शांति और न्याय की स्थापना के लिए मार्गदर्शक हैं। गांधीजी का जीवन और दर्शन यह सिखाता है कि सच्चाई, नैतिकता और मानवता की सेवा ही वास्तविक विकास और स्वतंत्रता का मार्ग है।

Reference:

1. Gandhi, M. K. (1909). Hind Swaraj or Indian Home Rule. Navajivan Publishing House.
2. Gandhi, M. K. (1945). Constructive Programme: Its Meaning and Place. Navajivan Publishing House.
3. Nanda, B. R. (1994). Mahatma Gandhi: A biography. Oxford University Press.
4. Parekh, B. (1997). Gandhi's political philosophy: A critical examination. Palgrave Macmillan.
5. Tidrick, K. (2006). Gandhi: A political and spiritual life. I.B. Tauris.
6. Terchek, R. J. (1998). Gandhian nonviolence and human rights. Indian Journal of Human Rights, 2(1), 14-28.
7. Pyarelal. (1986). Mahatma Gandhi: The last phase. Navajivan Publishing House.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

जलवायु परिवर्तन का संकट और आर्द्रभूमि की भूमिका

शिव गिरि
सहायक आचार्य भूगोल,
बी. एल. कॉलेज ऑफ आर्टस् एण्ड साईंस

संदर्भ

वर्ष 2100 तक भारत समेत अमेरिका, कनाडा, जापान, न्यूजीलैंड, रूस और ब्रिटेन जैसे सभी देशों की अर्थव्यवस्थाएँ जलवायु परिवर्तन के असर से अछूती नहीं रहेंगी। कुछ समय पूर्व कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की एक शोध टीम ने 174 देशों के वर्ष 1960 के बाद जलवायु संबंधी आँकड़ों का अध्ययन किया है। अध्ययन के अनुसार, पृथ्वी पर 1-5 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान की स्थिति में विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ-साथ मानव के अस्तित्व पर भी खतरा उत्पन्न हो जाएगा। जलवायु परिवर्तन के संकट से निपटने के लिए आर्द्र भूमि सबसे प्रभावी पारिस्थितिकी तंत्र है। आर्द्र भूमि ऐसे क्षेत्र है जहाँ जल, पर्यावरण और संबंधित पेड़ पौधों एवं पशुओं के जीवन को नियंत्रित करने वाला प्राथमिक कारक है।

आर्द्रभूमि को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है *''स्थलीय और जलीय पारिस्थितिकी प्रणालियों के बीच संक्रमणकालीन भूमि जहाँ जल आमतौर पर सतह पर होता है या भूमि उथले पानी से ढकी होती है।''* आर्द्रभूमि CO_2 अवशोषित कर तापमान कम करने और प्रदूषण घटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। 02 फरवरी 1971 को रामसर (ईरान) में ''अन्तर्राष्ट्रीय आर्द्रभूमि कन्वेंशन'' का आयोजन हुआ था जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ ने 02 फरवरी को आर्द्रभूमि दिवस घोषित किया। इस दिवस का आयोजन ग्लोबल वार्मिंग का सामना करने में पृथ्वी के लिए आर्द्रभूमि की महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में विश्व स्तर पर जागरूकता बढ़ाने के लिए किया जाता है। भारत में यह 01 फरवरी 1982 को लागू किया गया जिसके तहत् अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्र भूमियों को रामसर स्थल के रूप में घोषित किया गया।

क्या है जलवायु परिवर्तन?

जलवायु परिवर्तन को समझने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि जलवायु क्या होता है? सामान्यतः जलवायु का आशय किसी दिये गए क्षेत्र में लंबे समय तक औसत मौसम से होता है। अतः जब किसी क्षेत्र विशेष के औसत मौसम में परिवर्तन आता है तो उसे जलवायु परिवर्तन (Climate Change) कहते हैं। जलवायु परिवर्तन को किसी एक स्थान विशेष में भी महसूस किया जा सकता है एवं संपूर्ण विश्व में भी। यदि वर्तमान संदर्भ में बात करें तो यह इसका प्रभाव लगभग संपूर्ण विश्व में देखने को मिल रहा है।

जलवायु परिवर्तन और वेटलैंड्स के बीच का संबंध इस प्रकार है: -

- ❖ वेटलैंड्स, जलवायु परिवर्तन को कम करने में अहम भूमिका निभाते हैं।
- ❖ ये कार्बन को संग्रहीत करते हैं और वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के प्रवेश को रोकते हैं।

- ❖ वेटलैंड्स, वर्षा वनों की तुलना में 50 गुना ज्यादा कार्बन जमा कर सकते हैं वेटलैंड्स, समुदायों के लिए महत्वपूर्ण संसाधन हैं।
- ❖ ये स्थानीय समुदायों को बनाए रखने और खाद्य असुरक्षा से निपटने में मदद करते हैं।
- ❖ वेटलैंड्स, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में मदद करते हैं। ये तूफानी पानी को अवशोषित करते हैं,
- ❖ बाढ़ को रोकते हैं, और भूजल को रिचार्ज करते हैं।
- ❖ वेटलैंड्स के विनाश से फंसी हुई गैसें निकल सकती हैं।
- ❖ समुद्र के स्तर में वृद्धि से तटीय वेटलैंड्स नष्ट हो रहे हैं।
- ❖ सूखे की स्थिति लंबे समय तक बनी रहने से वेटलैंड्स की मिट्टी पर गहरा असर पड़ता है।

आर्द्रभूमियाँ जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील हैं।

भूमि और जल के मिलने की स्थिति के कारण आर्द्रभूमियों को जलवायु परिवर्तन से नुकसान का खतरा है। आर्द्रभूमियों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव निम्न हो सकते हैं—

- मिट्टी में संग्रहीत कार्बन की हानि
- मृदा संरचना में परिवर्तन
- अधिक बार सूखना या बाढ़ आना
- पौधे या पशु समुदाय में परिवर्तन
- मीठे पानी वाले तटीय आर्द्रभूमि में खारे पानी का अतिक्रमण
- बर्फ पिघलने से आर्द्रभूमि को मिलने वाले पानी के समय और मात्रा में परिवर्तन।

वेटलैंड्स में संग्रहित अधिकांश कार्बन मिट्टी में है, जहां कार्बन चक्रण और सूक्ष्मजीव प्रक्रियाओं को विकसित होने में लंबा समय लगता है। उदाहरण के लिए, पीटलैंड में कार्बनिक मिट्टी को विकसित होने में हजारों साल लग सकते हैं- सिर्फ एक इंच पीट जमा होने में 250 साल तक लग सकते हैं। उन प्रणालियों में गड़बड़ी के परिणामस्वरूप उन मिट्टी में संग्रहीत कार्बन वायुमंडल में समाप्त हो सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि अशांत कार्बनिक मिट्टी के ऑक्सीकरण से वायुमंडल में पर्याप्त मात्रा में CO_2 का योगदान होता है। अशांत वेटलैंड्स मानवीय गतिविधियों से अशांत वेटलैंड्स की तुलना में लगभग दोगुना कार्बन संग्रहीत करते हैं। गर्म तापमान और वर्षा में परिवर्तन भी वेटलैंड मिट्टी में संग्रहीत कार्बन के नुकसान को बढ़ा सकते हैं। अन्य क्षेत्रों में जहाँ वर्षा में वृद्धि होने की उम्मीद है या समय में परिवर्तन होने की उम्मीद है, कभी-कभी सूखने वाली आर्द्रभूमियाँ और अधिक गीली हो सकती हैं। कुछ क्षेत्रों में आर्द्रभूमियाँ अधिक जोखिम में हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, पर्वतीय आर्द्रभूमियाँ उच्च तापमान, कम बर्फ पैक और समय से पहले बर्फ पिघलने से प्रभावित होने की उम्मीद है, जिसके परिणामस्वरूप अधिक मौसमी आर्द्रभूमियाँ और उभयचरों और आर्द्रभूमि अकशेरुकी के लिए उपयुक्त आवास नष्ट हो सकते हैं। तापमान और वर्षा में परिवर्तन के अलावा, तटीय आर्द्रभूमियाँ समुद्र के स्तर में वृद्धि से प्रभावित होंगी। जिन क्षेत्रों में तटीय आर्द्रभूमि पानी बढ़ने पर अंतर्देशीय स्थानांतरित करने में सक्षम नहीं हैं, वे गायब हो सकते हैं। जलवायु परिवर्तन के साथ आर्द्रभूमि में होने वाले परिवर्तन पानी की गुणवत्ता, पानी की मात्रा और आवास कार्यों को बदल सकते हैं। जलवायु परिवर्तन के लिए अलग-अलग आर्द्रभूमि की प्रतिक्रिया इस पर निर्भर करेगी—

- ○ परिवर्तित जलवायु परिस्थितियों के संपर्क में आना
- ○ उन परिवर्तनों के प्रति संवेदनशीलता
- ○ जोखिम और संवेदनशीलता से संभावित प्रभाव
- ○ अनुकूलन की क्षमता

आर्द्रभूमि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करती है :-

तटीय आर्द्रभूमि, अप्रभावित अंतर्देशीय आर्द्रभूमि और झील-तल महत्वपूर्ण कार्बन सिंक हैं।

- तटीय आर्द्रभूमि कार्बन को कुशलतापूर्वक सोखती है और अपेक्षाकृत कम मीथेन उत्सर्जित करती है। अनुमान है कि वे अपनी मिट्टी में सभी उष्णकटिबंधीय वनों की तुलना में दोगुना कार्बन सोखते हैं।
- पुराने मीठे पानी के आर्द्रभूमि जितना कार्बन उत्सर्जित करते हैं, उससे अधिक कार्बन सोखते हैं।
- वनाच्छादित आर्द्रभूमि वृक्ष बायोमास में बड़ी मात्रा में कार्बन संग्रहित करती है।
- युवा मीठे पानी की आर्द्रभूमियाँ और अशांत आर्द्रभूमियाँ तब तक कार्बन उत्सर्जित कर सकती हैं, जब तक कि वे कार्बन को अवशोषित करने के लिए पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हो जातीं।

एक वेटलैंड के कार्बन उत्सर्जक से कार्बन सिंक बनने में 61 से 14.000 वर्ष लग सकते हैं। वैश्विक स्तर पर वेटलैंड 700 बिलियन टन तक कार्बन संग्रहीत करते हैं, ज्यादातर पीट मिट्टी में, जिसमें प्रति वर्ष 96 मिलियन टन कार्बन संग्रहित होता है। ऐसा अनुमान है कि यूएस वेटलैंड में 11.52 बिलियन टन कार्बन संग्रहीत है, जो वैश्विक मृदा कार्बन का लगभग 1 प्रतिशत है। ऐसा अनुमान है कि पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका के वेटलैंड्स में प्रति हेक्टेयर 200 मिलियन टन से अधिक मृदा कार्बन घनत्व है। जबकि तटीय वेटलैंड्स *"ब्लू कार्बन"* बाजारों का केंद्र हैं, मीठे पानी की वेटलैंड्स में मृदा कार्बन का समान घनत्व होता है

अनुकूलन

आर्द्रभूमि और जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन

अनुकूलन का अर्थ है प्रतिक्रिया को सक्षम बनाना, लचीलापन बढ़ाना और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति प्रतिरोध पैदा करना। आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ प्रदान करती हैं जो जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने की हमारी क्षमता में योगदान देंगी।

- जल विज्ञान चक्र में उनकी भूमिका.
- जल की गुणवत्ता सुधारने की उनकी क्षमता।

जल विज्ञान चक्र में आर्द्रभूमियाँ

जलवायु परिवर्तन के कारण जल विज्ञान चक्र में परिवर्तन होने की संभावना है, जिसमें वर्षा और बर्फ पिघलने के पैटर्न में बदलाव शामिल है। वेटलैंड्स वर्षा और बर्फ पिघलने में होने वाले परिवर्तनों को पानी के भंडारण और सूखे और भयंकर तूफानों के प्रभावों को कम करके संतुलित कर सकते हैं। वाटरशेड में वेटलैंड्स और झीलों की संचयी उपस्थिति बड़े तूफान की घटनाओं के दौरान बाढ़ के प्रवाह को कम कर सकती है। वेटलैंड्स सूखते परिदृश्यों में सतह और भूजल पुनर्भरण का एक स्रोत भी हैं। वे धाराओं में पानी को बहने में मदद करते हैं, जो सैल्मन और अन्य प्रजातियों पर गर्मियों के सूखे के प्रभावों को संतुलित करने में मदद करता है। वाटरशेड में पीटलैंड का एक छोटा प्रतिशत भी धारा प्रवाह का आधा हिस्सा पैदा कर सकता है। तटीय वेटलैंड्स तूफानी उछाल से रक्षा कर सकते हैं जो समुद्र के उच्च स्तर के कारण अतीत की तुलना में तट पर दूर के क्षेत्रों को प्रभावित कर सकते हैं।

आर्द्रभूमि और जल गुणवत्ता

जलवायु परिवर्तन से तूफान की तीव्रता बढ़ सकती है, जिसके परिणामस्वरूप तूफानी जल अपवाह में वृद्धि होती है, जो जल गुणवत्ता, सैल्मन और अन्य वन्यजीवों के लिए हानिकारक प्रदूषक ले जाता है। आर्द्रभूमि को अक्सर परिदृश्य में

गुर्दे के रूप में संदर्भित किया जाता है। गीलेपन और सूखने के चक्रों के माध्यम से, आर्द्रभूमि में रहने वाले बैक्टीरिया और पौधों के साथ मिलकर, वे अतिरिक्त पोषक तत्वों, भारी धातुओं और पेट्रोलियम उत्पादों जैसे प्रदूषकों को अलग कर सकते हैं, बदल सकते हैं और या आत्मसात कर सकते हैं। जल गुणवत्ता प्रबंधन में उनकी भूमिका जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने की हमारी क्षमता में योगदान देगी।

आर्द्रभूमि और आवास

आर्द्रभूमि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचने का एक आश्रय प्रदान करती है। आर्द्रभूमि दुनिया के सबसे अधिक उत्पादक पारिस्थितिकी तंत्रों में से एक है। इनका उपयोग वाशिंगटन और ओरेगन में दो-तिहाई से अधिक स्थलीय कशेरुकी प्रजातियों द्वारा किया जाता है, जिसमें 65 प्रतिशत स्तनधारी और 72 प्रतिशत पक्षी शामिल हैं। वे सैल्मन विकास और उभयचर प्रजनन के लिए भी प्रमुख आवास हैं।

आर्द्रभूमि जल या नम, ठंडे सूक्ष्म जलवायु का स्रोत प्रदान करके वन्यजीवों पर सूखे और गर्मी के प्रभाव को कम कर सकती है। जलवायु परिवर्तन के साथ, आर्द्रभूमि परिदृश्य पर एक गलियारा या कदम पत्थर भी प्रदान करती है जो प्रजातियों को बेहतर क्षेत्रों में जाने में मदद कर सकती है।

तटीय क्षेत्रों में, ईलग्रास बेड महासागर अम्लीकरण के प्रभावों को कम कर सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप ऐसे क्षेत्र बन सकते हैं जो सीप और क्लैम जैसी प्रजातियों का समर्थन करने में सक्षम हो सकते हैं जो पहले से ही जल रसायन विज्ञान में परिवर्तन से प्रभावित हैं।

आर्द्रभूमि के लिए खतरेः-

1. शहरीकरणः-शहरी क्षेत्रों के पास उपलब्ध आर्द्रभूमि आवासीय, औद्योगिक, वाणिज्यिक सुविधाओं के विकास के दबाव के चलते घट रही है जबकि सार्वजनिक जल आपूर्ति को संरक्षित करने के लिए शहरी आर्द्र भूमि आवश्यक है।
2. कृषिः- आद्रभूमि के विशाल हिस्सों को धान के खेतों में बदल दिया गया हैं। सिंचाई के लिए बड़ी संख्या में जलाशयों, नहरों, बांधों के निर्माण ने संबंधित आर्द्रभूमि के जल विज्ञान को महत्वपूर्ण रूप में बदल दिया है।
3. प्रदूषणः- आर्द्रभूमि प्राकृतिक जल फिल्टर के रूप में कार्य करती है। पीने के पानी की आपूर्ति और आर्द्रभूमि की जैविक विविधता पर औद्योगिक प्रदूषण के प्रभाव के बारे में चिन्ता बढ़ रही है।
4. जलवायु परिवर्तनः- वायु के तापमान में वृद्धि, वर्षा में बदलाव, तुफान, सूखा और बाढ़ की आवृति में वृद्धि वायुमण्डलीय, कार्बनडाई आक्साइड, एकाग्रता में वृद्धि और समुद्र के स्तर में वृद्धि भी आर्द्रभूमि को प्रभावित कर सकती है।
5. लवणीकरणः- भूजल के अत्याधिक दोहन से लवणीकरण की स्थिति उत्पन्न हुई है।

निष्कर्ष

आर्द्रभूमि जलवायु परिवर्तन के संकट को कम करन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ये बाढ़, सुखा और तुफान के खिलाफ बफर के रूप में कार्य करती है तथा कार्बन की मात्रा संग्रहित करके जलवायु परिवर्तन को कम करती है, साथ ही सांस्कृतिक, मनोरंजक एवं सौन्दर्य के मुल्यों में योगदान देती हैं। अनियोजित शहरीकरण और बढ़ती आबादी का मुकाबला करने के लिए आर्द्रभूमि के प्रबंधन, योजना, निष्पादन और निगरानी के संदर्भ में एकीकृत दृष्टिकोण होना चाहिए। आर्द्रभूमि के महत्व के बारे में जागरूकता कार्यक्रम शुरू करके जल की गुणवत्ता के लिए आर्द्रभूमि की निरंतर निगरानी करने से आर्द्रभूमि को और अधिक खराब होने से बचाया जा सकेगा।

संदर्भ

- ➢ गुर्जर, डॉ. रामकुमार एवं जाट, डॉ. बी.सी. 2022 ''भारत का भूगोल'' पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
- ➢ खुल्लर, डी.आर. 2014, भूगोल; सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के लिए टाटा मेक्ग्रा-हिल, नई दिल्ली।
- ➢ सिन्हा, राजकुमार, 04 मार्च 2024, ''कृषक जगत'', भोपाल प्रकाशन
- ➢ Moomaw, W. R., Chmura, G. L., Davies, G. T., Finlayson, C. M., Middleton, B. A., Natali, S. M., Sutton-Grier, A. E. (2018). Wetlands in a changing climate: science, policy and management. Wetlands, 38(2), 183-205)

মহামতি কৌটিল্যের দৃষ্টিতে বিবাহ-সংক্রান্ত আইন

Dr. Narayan Sarkar
State Aided College Teacher , Catagory – I
Department of Sanskrit
Gangarampur College

মহামতি কৌটিল্যের অর্থশাস্ত্রম্ গ্রন্থে বিবাহের আলোচনা আসে ব্যবহার প্রসঙ্গে ।কৌটিল্য বিবাহকেই ব্যবহারের মূল বলে ধরেছেন – বিবাহপূর্বো ব্যবহারঃ[1] । মনু ১৮ রকমের ব্যবহারের উল্লেখ করেছেন তার মধ্যে প্রথম হলো ঋণাদান । এই তালিকার অনেক নীচে নারী পুরুষের কর্তব্য পাওয়া যায় । কৌটিল্য যে বিবাহকে ব্যবহারের প্রসঙ্গে প্রথম বলে উপস্থাপিত করেছেন , এটা খুবই তাৎপর্যপূর্ণ ।

কৌটিল্যের সময়ে নারী ও পুরুষের ব্যবহারপ্রাপ্তির বয়স নির্ধারণ করা হতো । এই বয়স নারীর ক্ষেত্রে ১২ , পুরুষের ক্ষেত্রে ১৬ । এই বয়সের পর আইন অমান্য করলে তারা দণ্ডনীয় হতো । যেহেতু বিবাহ , বিবাহ বিচ্ছেদ ও সম্পত্তির অধিকার প্রসঙ্গে এই বয়সের উল্লেখ করা হয়েছে , অতএব এ কথা মনে করা হয়তো অযৌক্তিক হবে না , যে যথাক্রমে ১২ এবং ১৬ নারী ও পুরুষের ন্যূনতম বয়স ।

মহাকাব্য , পুরাণ ও ধর্মশাস্ত্রে যে ১৮ প্রকার বিবাহের উল্লেখ আছে , কৌটিল্য তাঁর সবকটিই স্বীকার করেন । মহাভারতে বলা হয়েছে –

অষ্টাবেব সমাসেন বিবাহা ধর্মতঃ স্মৃতাঃ ।
ব্রাহ্মো দৈবস্তথৈবার্ষঃ প্রাজাপত্যস্তথাসুরা ।
গান্ধর্বো রাক্ষসশ্চৈব পৈশাচাশ্চাষ্টমঃ স্মৃতঃ ।।[2]

মহামতি কৌটিল্য আট প্রকার বিবাহ স্বীকার করেন । সেগুলি হলো – ব্রাহ্ম , প্রাজাপত্য , আর্ষ , দৈব , গান্ধর্ব , আসুর , রাক্ষস ও পৈশাচ । তিনি এই বিবাহগুলি নিয়ে ব্যাখ্যা দিয়েছেন ---

ব্রাহ্ম – কন্যাদানং কন্যামলঙ্কৃত্য ব্রাহ্মো বিবাহঃ [3]অর্থাৎ যে বিবাহে সালংকারা কন্যাকে সম্প্রদান করা হয় তাকে ব্রাহ্মবিবাহ বলে । ব্রাহ্ম বিবাহকে শ্রেষ্ঠ মনে করা হয় । এই বিবাহের ফলে যিনি বিবাহিতা স্ত্রী , তিনি যদি সন্তানহীনা অবস্থায় মারা যান , তাহলে এই বিবাহের নিয়মানুসারে বিবাহিত পতি স্ত্রীধন লাভ করেন ।[4]

---

[1] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[2] মহাভারতম্ , আদিপর্ব – ৭৩/৮৯
[3] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[4] মনু – ৩.২ , যাজ্ঞবল্ক্য – ৩.৫৮

প্রাজাপত্য – সহধর্মচর্যা প্রাজাপত্যঃ[5] অর্থাৎ যে বিবাহে বর ও কন্যা যৌথভাবে ধর্মাচরণ করে তাকে প্রাজাপত্য বিবাহ বলে । বিষ্ণুপুরাণ অনুসারে কন্যার পিতা বর ও কন্যাকে এক সাথে থেকে গার্হস্থ্য ধর্মপালন করার প্রতিজ্ঞা করিয়ে নিয়ে তাদের বিবাহ দেন যে বিবাহে তাকে প্রাজাপত্য বিবাহ বলে ।[6]

আর্ষ – গোমিথুনাদানাদার্ষঃ [7] অর্থাৎ যে বিবাহে একজোড়া গরু সমেত কন্যা দান করা হয় তাকে আর্ষবিবাহ বলে । মনুর মতানুসারে এই গো-দ্বয় হবে একটি গাভী ও একটি বৃষ বা দুটি গাভী বা দুটি বৃষ ।[8]

দৈব – অন্তর্বেদ্যামৃত্বিজে দানাদ্ দৈবঃ [9] অর্থাৎ যে বিবাহে যজ্ঞবেদির মধ্যস্থিত ঋত্বিক কে কন্যা দান করা হয় তাকে দৈব বিবাহ বলে ।

গান্ধর্ব – মিথঃসমবায়াদ্ গান্ধর্বঃ [10] অর্থাৎ যে বিবাহে পারস্পরিক ইচ্ছাপূর্বক অর্থাৎ পরস্পরের অনুরাগাতিশয্যের ফলে নিজ নিজ মাতা-পিতা বা গুরুজনদের অনুমতি না নিয়ে বর ও কন্যার দ্বারা একের অন্যকে গ্রহণ করা বা মিলন হয় তাকে গান্ধর্ববিবাহ বলে ।[11]

আসুর – শুল্কাদানাদাসুরঃ [12] অর্থাৎ বর বা বরের পিতার কাছ থেকে শুল্কধন গ্রহণ করে , কন্যার পিতা কর্তৃক বরকে কন্যাদান করা হলে তাকে আসুর বিবাহ বলে । কন্যার পিতাকে যথাশক্তি ধন দান করে স্বেচ্ছায় কন্যাকে স্ত্রীরূপে স্বীকার করাকে আসুরবিবাহ বলে ।[13]

রাক্ষস – প্রসহ্যাদানাদ্ রাক্ষসঃ [14] অর্থাৎ বলপূর্বক অর্থাৎ কন্যাপক্ষের লোকজনকে মারধর অঙ্গচ্ছেদন বা তাদের গৃহের দ্বারাদি ধ্বংস করে বলাৎকার পূর্বক কন্যাকে

---

[5] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[6] বিষ্ণুপুরাণ – ৩.১০.২৪
[7] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[8] মনু – ৩.২৯ , যাজ্ঞবল্ক্য – ৩.৫৯
[9] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[10] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[11] মনু – ৩.৩২ , যাজ্ঞবল্ক্য – ৩.৬১ , অগ্নিপুরাণ – ১৫৪.১১ , গরুড়পুরাণ – ১৫.১০.১১
[12] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[13] মনু – ৩.৩১ , যাজ্ঞবল্ক্য – ৩.৬১
[14] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২

অপহরণ করে বিবাহ করাকে রাক্ষসবিবাহ বলা হয় । যুদ্ধে অপহরণ করা হয়েছে যে কন্যাকে সেই কন্যাকে বিবাহ করাকেও রাক্ষস বিবাহ বলে ।[15]

পৈশাচ – সুপ্তদানাত্ পৈশাচঃ [16]অর্থাৎ নিদ্রিতা বা সুরাদি পানের ফলে মত্তাবস্থা-প্রাপ্তা কন্যাকে হরণ করার পর সম্পাদিত বিবাহের নাম পৈশাচ বিবাহ । যাজ্ঞবল্ক্যের মতে ছলপূর্বক কোনও কন্যাকে বিবাহ করাকে পৈশাচ বিবাহ বলে ।[17]

এর মধ্যে প্রথম চার প্রকারের বিবাহ অর্থাৎ ব্রাহ্ম ,দৈব , আর্ষ , ও প্রাজাপত্য কে বলা হয়েছে ধর্ম্য বিবাহ । কৌটিল্য বলেন এই চার প্রকারের বিবাহে কন্যার পিতার সম্মতি আবশ্যক – পিতৃ প্রমাণশ্চত্বারঃ পূর্বে ধর্ম্যাঃ [18]। কিন্তু শেষ চারটিতে মাতার সম্মতিও প্রয়োজন , কারণ কন্যা পণের শুল্ক পিতামাতা উভয়ে যৌথভাবে ভোগ করেন – মাতাপিতৃ প্রমাণাঃ শেষাঃ । তৌ হি শুল্কহরৌ দুহিতুঃ [19] । শুল্ক বা কন্যা পণ কন্যার বিনিময়ে ক্ষতিপূরণ স্বরূপ কন্যার পিতা মাতাকে দেওয়া হত । শেষ চার প্রকার বিবাহের মধ্যে পৈশাচ বিবাহকে শাস্ত্রকারেরা কেউই ভালো চোখে দেখেন নি । নেহাত এই ধরনের ঘটনা ঘটত বলেই এই বিবাহকে একটা সামাজিক স্বীকৃতি দেওয়া হয়েছে , তা না হলে কন্যা এবং তার ভাবী সন্তানদের সমাজে কোনো স্থান হত না । কৌটিল্যও সেই চিন্তার বশবর্তী হয়ে এই বিবাহকে স্বীকৃতি দিয়েছেন , যদি সংশ্লিষ্ট সকলকেই সন্তুষ্ট হয় , তবে সব রকমের বিবাহই সিদ্ধ – সর্বেষাং প্রীত্যারোপণমপ্রতিষিদ্ধম্ [20]। যে বিবাহে কন্যাকে তার ইচ্ছার বিরুদ্ধে হরণ করা হয় , সেখানে নিশ্চয়ই সংশ্লিষ্ট সকলের প্রীতি হতে পারে না ।

বিবাহের পরসঙ্গে কোথাও এসে পড়ে । কোনো কোনো বিবাহে কন্যার পিতামাতাকে শুল্ক দেওয়া হত । পিতা মাতার মধ্যে কোনো একজন অনুপস্থিত বা মৃত হলে অপর জন সমগ্র শুল্কএ পেতেন । দুজনেই অনুপস্থিত বা মৃত হলে কন্যাই শুল্ক পেত । এছাড়া বিবাহিতা নারীর নিজস্ব স্ত্রীধন থাকত । কৌটিল্য দুই প্রকারের স্ত্রীধনের উল্লেখ করেছেন , বৃত্তি অর্থাৎ ভরণপোষণের যোগ্য সম্পত্তি এবং আবধ্য অর্থাৎ পরিধেয় অলংকারাদি । বৃত্তি ২৫০০ পণ পর্যন্ত হতে পারত , আবধ্যের কোনো সীমা ছিল না । কাত্যায়ন স্মৃতিকারদের অনুকরণ করে ৬ রকমের স্ত্রীধনের উল্লেখ করেছেন । বিবাহের সময়ে অগ্নিসাক্ষী করে স্ত্রীকে যা দেওয়া হয় তা অধ্যগ্নিকৃত ,

[15] মনু – ৩.৩২ , যাজ্ঞবল্ক্য – ৩.৬১
[16] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[17] মনু – ৩.৩৪ , যাজ্ঞবল্ক্য – ৩.৬২
[18] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[19] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[20] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২

পিতৃগৃহ ত্যাগ করে যাবার সময়ে সে যা পায় তা অধ্যাহবনিক । শ্বশুর শাশুড়ী ভালোবেসে যা দেন তা পাদবন্দনিক । ঘরের শোভাবৃদ্ধি ইত্যাদির জন্য যা পাওয়া যায় , তা অন্বাধেয় । বিবাহিত কন্যা স্বামীর কাছ থেকে বা পিতৃগৃহ থেকে যা পায় তা সৌদায়িক । কৌটিল্য এই বিভিন্ন প্রকারের স্ত্রীধন নিয়ে বিস্তারিত আলোচনা করেন নি ।

এই যে নানা প্রকারের স্ত্রীধন এর উপর স্ত্রীর সীমিত অধিকার ছিল , অর্থাৎ তিনি ইচ্ছিামত স্ত্রীধন ব্যবহার করতে পারতেন না । বিপদে আপদে ব্যবহারের জন্যই স্ত্রীধন সঞ্চিত থাকত । স্বামী অনুপস্থিত থাকলে স্ত্রী নিজের এবং পুত্রের ভরণপোষণের জন্য স্ত্রীধন ব্যবহার করতে পারতেন । কিন্তু স্বামীর এই স্ত্রীধনের উপর কোনো অধিকার ছিল না । প্রাকৃতিক বিপর্যয় বা ধর্মকর্ম ছাড়া তিনি স্ত্রীর অনুমতি ছাড়া এতে হাত দিতে পারতেন না । ধর্ম্য বিবাহ গুলির ক্ষেত্রে দম্পতী দুই সন্তানের জন্ম দিয়ে থাকলে পরস্পরের সন্মতিক্রমে স্ত্রীধন ভোগ করতে পারতেন । তিন বছর এই ভাবে ভোগ করলে স্ত্রীধন আর ফিরিয়ে দিতে হত না , বা স্ত্রীধন ভোগের জন্য দম্পতীর বিরুদ্ধে আইন সঙ্গত ব্যবস্থাও নেওয়া যেত না । গান্ধর্ব ও আসুর বিবাহের ক্ষেত্রে স্ত্রীধন সুদ সমেত ফিরিয়ে দিতে হত । রাক্ষস ও পৈশাচ বিবাহের ক্ষেত্রে স্ত্রীধনের ভোগ চুরি বলে গণ্য হতো ।[21]

স্বামী জীবিতকালে স্ত্রীর মৃত্যু হলে স্ত্রীধন পুত্র কন্যাদের মধ্যে সমান ভাগ হত । পুত্র না থাকলে স্ত্রীধন কন্যারা পেত । নিঃসন্তান অবস্থায় স্ত্রীর মৃত্যু হলে স্বামীই স্রাধনের উত্তরাধিকারী হতেন , তবে শুল্ক এবং আত্মীয় স্বজনের দেওয়া অন্বাধেয় তাঁদের ফিরিয়ে দিতে হতো ।

অর্থশাস্ত্রে বিধবা বিবাহের অনুমোদন দোওয়া আছে । নিঃসন্তান বিধবা পুনর্বিবাহ না করলে গুরুর আশ্রয়ে থেকে স্ত্রীধন ভোগ করতে পারতেন । তাঁর রক্ষাকর্তাকে তাঁর সম্পত্তিও রক্ষা করতে হত । যে বিধবা ব্রহ্মচর্য পালন করতে চাইতেন , তিনি তাঁর সমস্ত সম্পত্তি ও অলংকার এবং সমগ্র শুল্ক পেতেন । যে বিধবা পুনর্বিবাহ করতে চাইতেন তাকে বলা হত বিন্দমানা । দ্বিতীয় বিবাহকে বলা হত নিবেশ । নিবেশের সময়ে বিন্দমানাকে সুদসমেত সমস্ত শুল্ক দিতে হত । শ্বশুরের অনুমতিক্রমে নিবেশ করতে এই সময়ে তিনি শ্বশুর ও পূর্বস্বামীর দেওয়া সবকিছু পেতেন । কিন্তু শ্বশুরের অনুমতি ছাড়া দ্বিতীয় বিবাহ করলে শ্বশুর ও পূর্বস্বামীর দেওয়া সম্পত্তি শ্বশুরকে ফিরিয়ে দিতে হত । স্বামীর সম্পত্তিতে বিধবার অধিকার ছিল , কিন্তু বিন্দমানার এই অধিকার ছিল না । পুনর্বিবাহের সময়ে পূর্ব স্বামীর ঔরসপুত্র থাকলে তার পৈতৃক সম্পত্তি তাকেই দিতে হত । যদি এই সম্পত্তি সন্তানদের ভরণপোষণের জন্য প্রয়োজন

---

[21] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২

হত , তবে তা তাদের নামেই গচ্ছিত রাখতে হত । এক নারীর একাধিক স্বামীর ঔরসপুত্র থাকলে যার যার পৈতৃক সম্পত্তি সেই সেই পুত্রকে তা দিতে হতো ।

স্ত্রীধন ছাড়াও স্ত্রী স্বামীর কাছ থেকে ভর্মণ্যা বা খোরপোষ পেতেন । এই ভর্মণ্যা কখনো নির্দিষ্ট কালের জন্য , কখনো অনির্দিষ্ট কালের জন্য । কোনো ক্ষেত্রে স্বামীর উপার্জনের সঙ্গে সামঞ্জস্য রেখে স্ত্রীর জন্য বিশেষ বরাদ্দ ধার্য করা হতো । কোনে ক্ষেত্রে আবার স্ত্রীর খোরপোষ বাবদে যা লাগে এবং তার চেয়ে বেশি কিছু স্বামীর উপার্জনের অনুপাত স্ত্রীকে দেওয়া হতো । এছাড়া স্বামীকে একটা চুক্তি করতে হত । তিনি আবার বিবাহ করতে চাইলে স্ত্রীকে শুল্ক এবং স্ত্রীধন তো দিতে হতই , তার উপর আদিবেদনিক দিতে বতো । স্বামী স্ত্রীকে পরিত্যাগ করে আর এক বিবাহ করলে পরিত্যক্তা স্ত্রীকে বলা হত অধবিন্না । তাকেই এই আধিবেদনিক মূল্য দিতে হত , যাকে আজকাল বলা যেতে পারে alimony । তবে স্ত্রী যদি তাঁর শ্বশুরকুলের আশ্রয়ে থাকতেন বা আলাদা থাকতেন , তাহলে আদিবেদনিক তাঁকে দিতে হত না । সেক্ষেত্রে খোরপোষ না দেওয়ার জন্য স্বামীকে অভিযুক্ত করা যেত না ।

বিবাহিতা স্ত্রীকে পরিত্যাগের প্রধান কারণ পুত্রলাভের প্রয়োজনীয়তা । কৌটিল্য বলেছেন পুত্রলাভের জন্য পুরুষ একাধিক স্ত্রীকে গ্রহণ করতে পারে , কারণ পুত্র উৎপাদনের জন্যই নারীর সৃষ্টি – পুত্রার্থাঃ হি স্ত্রিয়ঃ [22] । স্ত্রী যদি অপ্রজায়ামানা অর্থাৎ একটির বেশী সন্তান ধারণে অসমর্থা হতেন , অথবা পুত্রহীনা বা বন্ধ্যা হতেন , তাহলে স্বামী ৮ বছর অপেক্ষা করে তবেই পুনর্বিবাহ করতে পারতেন । স্ত্রী যদি নিন্দু অর্থাৎ মৃতবৎসা হতেন , তবে ১০ বছর এবং কেবল কন্যার জন্ম দিলে ১২ বছর অপেক্ষা করতে হত । এই নিয়ম লঙ্ঘন করে বিবাহ করলে স্বামীর শুধু যে স্ত্রীধন এবং আধিবেদনিক দিতে হত তাই নয় , রাজকোষেও ২৪ পণ জরিমানা দিতে হত । যথা সময়ে দ্বিতীয় বিবাহ করলেও প্রথম স্ত্রীকে যথোচিত ভরণ পোষণ দিতে হত ।

পুরুষের ক্ষেত্রে স্ত্রী-পরিত্যাগের কয়েকটি বাধা যেমন কৌটিল্য উপস্থিত করেছেন তেমনি স্ত্রীর পক্ষে স্বামীকে ত্যাগ করে পুনর্বিবাহের ব্যবস্থাও তিনি রেখেছেন । স্বামী নীচ , দীর্ঘপ্রবাসী , রাজদ্রোহী , হত্যাকারী , পতিত বা ক্লীব হলে স্ত্রী তাঁকে ত্যাগ করতে পারতেন –

নীচত্বং পরদেশং বা প্রস্থিতো রাজকিল্বিষী ।
প্রাণাভিহন্তা পতিতস্ত্যাজ্যঃ ক্লীবোऽপি বা পতিঃ ।।[23]

---

[22] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২
[23] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/২

স্বামীর দীর্ঘপ্রবাসের ক্ষেত্রে কয়েকটি বিধি নিয়ম আছে । শূদ্র রমনী স্বামীর জন্য ১ বছর , বৈশ্য রমনী ২ বছর , ক্ষত্রিয় রমনী ৩ বছর এবং ব্রাহ্মণী ৪ বছর অপেক্ষা করে আবার বিবাহ করতে পারেন । স্বামী প্রবাসে যাবার সময়ে স্ত্রী গর্ভবতী হলে এর উপর আরও এক বছর অপেক্ষা করতে হত । স্বামী প্রবাসে যাবার আগে স্ত্রীর ভরণ পোষণের ব্যবস্থা করে গেলে নির্দিষ্ট সময়ের দ্বিগুণ অপেক্ষা করতে হত । ভরণ পোশণের ব্যবস্থা না থকলে আত্মীয় স্বজনেরা চার থেকে আট বছর স্ত্রীর দেখাশোনা করতেন ।এর পরে স্ত্রী পুনর্বিবাহ করতে পারতেন , কিন্তু বিবাহের সময়ে আত্মীয়দের কাছ থেকে যা পেয়েছেন , সব তাকে ফেরৎ দিতে হত ।

ব্রাহ্মণ শিক্ষালাভের উদ্দেশ্যে প্রবাসে গেলে তাঁর স্ত্রীকে ১০ বছর অপেক্ষা করতে হত । তারপরে তিনি পুনর্বিবাহের অনুমতি পেতেন । এই নিয়ম নিঃসন্তান দম্পতীর ক্ষেত্রে । সন্তান থাকলে ১২ বছর অপেক্ষা করতে হত । রাজকর্মচারীরা রাজকার্যে বিদেশে গেলে তাঁর স্ত্রী পুনর্বিবাহের অনুমতি পেতেন না । এই সন্তান তাঁর স্বামীর সন্তান বলেই গণ্য হত , এবং এই গর্ভধারণের পদ্ধতিকে ব্যভিচার মনে করা হত না। এছাড়া স্ত্রীর আত্মীয় স্বজন তাঁর ভরণপোষণের ভার না নিলে তাঁর পুনর্বিবাহের অনুমতি মিলত । এই নিয়মগুলি সবই শেষ চার প্রকার বিবাহের ক্ষেত্রে প্রযোজ্য । ধর্ম্য বিবাহগুলির ক্ষেত্রে এই নিয়ম খাটত না ।

প্রথম চার প্রকারের বিবাহের ক্ষেত্রেও পুনর্বিবাহের নির্দেশ ছিল । স্বামীর প্রবাসের সময়ে যদি স্ত্রী অক্ষতকৌমার্য থাকতেন , তবে নির্দিষ্ট কাল অপেক্ষা করে তারপরে স্ত্রী পুনর্বিবাহের জন্যে অনুমতি নিতে পারতেন । কতদিন অপেক্ষা করতে হবে , তারও নিয়ম আছে । প্রবাসে যাবার পর স্বামীর সন্ধান পাওয়া গেলে , স্ত্রীকে শুল্ক বা শুল্কাংশ দেওয়া হলে , তা না দেওয়া হলে – ইত্যাদি সময় নির্ধারণের কয়েকটি সূত্র আছে । তবে কোনোটিই একবৎসরের বেশী নয় ।

পুনর্বিবাহ সাধারণতঃ স্বামীর ভাইয়ের সঙ্গে হতো । স্বামীর কাছাকাছি বয়সের যে ভাই স্ত্রীকে ভরণপোষণ করতে সক্ষম , এবং স্বামী হবাব যোগ্য গুণাবলী যার আছে , তিনিই উপযুক্ত বর বলে গণ্য হতেন । কিন্তু কোনো ক্ষেত্র স্বামীর সবচেয়ে ছোট ভাইও যদি অবিবাহিত থাকত , তবে তাকেও বিবাহ করা যেত । স্বামীর ভাই না থাকলে তাঁর সপিণ্ড বা কোনো জাতিকে বিবাহ করা যেত । স্বামীর পরিবারের বাইরের কাউকে বিবাহ করলে তা ব্যভিচার বলে গণ্য হত , এবং স্ত্রী দ্বিতীয় স্বামী , সম্প্রদান কর্তা , সকলেই আইনতঃ দণ্ডনীয় হতেন ।

স্বামী-স্ত্রীর পরস্পর সম্মতিক্রমে বিবাহ বিচ্ছেদও আইনসিদ্ধ ছিল । শেষ চার প্রকারের বিবাহে এই মোক্ষের বিধান ছিল , চারটি ধর্ম বিবাহের ক্ষেত্রে নয় –

অমোক্ষো ধর্ম্যবিবাহানামিতি...... [24]। শেষ চার প্রকারের বিবাহে স্বামী-স্ত্রী পরস্পরকে ঘৃণা করলে মোক্ষ হত – পরস্পরং দ্বেষান্মোক্ষঃ [25] । কিন্তু স্ত্রী স্বামীকে ছাড়তে চাইলেও স্বামী স্ত্রীকে ছাড়তে না চাইলে মোক্ষ হত না । অপরপক্ষে স্বামী স্ত্রীকে ছাড়তে চাইলেও স্ত্রীর অনিচ্ছায় মোক্ষ হত না – অমোক্ষ্যা ভর্তুরকামস্য দ্বিষতী ভার্যা ভার্যায়াশ্চ ভর্তা [26] । স্ত্রী যদি সাত ঋতুকাল স্বামীর কাছে না যেতেন , তবে তাঁর অলংকারাদি সব স্বামীকে ফিরিয়ে দিতে হত এবং অন্য স্ত্রীলোকের সঙ্গ করতে স্বামীকে অনুমতি দিতে হতো । স্বামী স্ত্রীকে ভালো না বাসলে কোনো পরিব্রাজিকা রক্ষক বা আত্মীয়ের কাছে তাঁকে থাকার অনুমতি দিতে হতো । স্ত্রীর অপরাধে স্বামী মোক্ষ চাইলে স্ত্রীকে তিনি যা যা অলংকারাদি দিয়েছেন , সব তাকে ফিরিয়ে দেওয়া হতো । স্বামীর অপরাধে যদি স্ত্রী মোক্ষ চাইতেন তবে এই অলংকারাদি তাকে ফিরিয়ে দিতে হত না । এখানে মূল গ্রন্থের পাঠ কিছুটা বিকৃত বলে মনে হয় । মূলে আছে –

স্ত্রীবিপ্রকারাদ্বা পুরুষশ্চোন্মোক্ষমিচ্ছেৎ যথা গৃহীতমস্যৈ দদ্যাৎ ।
পুরুষবিপ্রকারাদ্বা স্ত্রী চেন্মোক্ষমিচ্ছেৎ নাস্যৈ যথাগৃহীতং দদ্যাৎ ।।[27]

স্ত্রীর অপরাধে স্বামী বিবাহ বিচ্ছেদ চাইলে তাঁর দেওয়া অলংকারাদি ফিরে পাওয়া যেমন ন্যায্য , অনুরূপভাবে স্বামীর অপরাধে স্ত্রী বিচ্ছেদ চাইলে অলংকারাদি ফিরিয়ে না দেওয়াই ন্যায্য ।

বিবাহ বন্ধনের মধ্যে থেকে ব্যভিচার করলে পুরুষ ও নারী উভয়েই সমান ভাবে দণ্ডনীয় হতেন । কোনো পুরুষ যদি বিবাহিত নারীর সঙ্গে ব্যাভিচারে লিপ্ত হতেন , তাহলে তিনিও সেই নারীর সঙ্গে সমান শাস্তি পেতেন ।

যদিও স্ত্রী পুরুষের সাম্য ঠিক সামাজিক তথ্য ছিল না , অন্ততঃ আইনের ক্ষেত্রে যাতে কিছুটা সমতা থাকে , কৌটিল্য সেই চেষ্টাই করেছেন । স্বামী দেবতা স্ত্রীর উপরে যথেষ্ট অত্যাচার করতে পারতেন না । তিরস্কারের সময়ে বিশেষ কয়েকটি গাল দিতে পারতেন । অতিরিক্ত ক্ষেত্রে স্ত্রীর পিঠে বাঁশের ছাল , হাত বা দড়ি দিয়ে তিনবাব মৃদু প্রহার করতেন । এর চেয়ে বেশী কটু ভাষা প্রয়োগ করলে বা আঘাত করলে বাক্পারুষ্য বা দণ্ডপারুষ্যের শাস্তি পেতে হতো । লক্ষণীয় যে স্ত্রীও অপরাধী স্বামীকে অনুরূপ ভাবে শাসন করতে পারতেন ।

কৌটিল্যের বিবাহ সংক্রান্ত আইনগুলি মৌর্যযুগের সমাজ ও আইন ব্যবস্থার একটি চিত্র তুলে ধরে । স্ত্রী পুরুষের বিবাহের ন্যূনতম বয়স নির্ধারিত ছিল ।

[24] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/৩
[25] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/৩
[26] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/৩
[27] অর্থশাস্ত্রম্ – ৩/৩

সতীদাহের কোনো উল্লেখ পাওয়া যায় না , বরং বিধবা বিবাহের বহুল প্রচলনই প্রমানিত হয় । বিবাহ বিচ্ছেদের সুযোগও সেযুগে ছিল । নারীর ক্ষেত্রে কিছুটা সীমিত হলেও সম্পত্তির অধিকার দেখা যায় । আইন শুধু আইন নয় , কতকটা সমাজের দর্পণও বটে । তাই সেযুগে অনেকাংশে সীমিত হলেও নারীর অধিকার রক্ষার প্রবণতা লক্ষ্য কর যায় ।

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী

১. গৈরোলা , বাচস্পতি (২০১৩) ; কৌটিলীয় অর্থশাস্ত্রম্ , চৌখম্বা বিদ্যাভবন , বারাণসী ।

২. চক্রবর্তী , শ্রীকমলকৃষ্ণ (২০০৯) ; সংস্কৃত বীথিকা (দ্বিতীয় খণ্ড) , বাণী প্রকাশন , কলকাতা ।

৩.পাহাড়ী , অধ্যাপক ড. অন্নদাশঙ্কর (২০১০) ; মনুসংহিতা (দ্বিতীয়োऽধ্যায়) , সংস্কৃত বুক ডিপো , কলকাতা ।

৪. প্রধান , শ্রীবঙ্কিমচন্দ্র (২০১৬) ; মনুসংহিতা (সপ্তমোऽধ্যায়) , দি ঢাকা স্টুডেন্টস্ লাইব্রেরী , কলকাতা ।

৫. বসু ন্যায়তীর্থ , ড. সুমিতা (২০১৮) ; মনুসংহিতা (সপ্তমোऽধ্যায়) , বি. এন. পাব্লিকেশান্ , কলকাতা ।

৬. বন্দ্যোপাধ্যায় , মানবেন্দু (২০১৬) ; মনুসংহিতা , সংস্কৃত পুস্তক ভাণ্ডার , কলকাতা ।

৭. বন্দ্যোপাধ্যায় , অধ্যাপক ড. মানবেন্দু (২০০২) ; কৌটিলীয়ম্ অর্থশাস্ত্রম্ , সংস্কৃত পুস্তক ভাণ্ডার , কলিকাতা ।

৮. বসু , ড. অনিল চন্দ্র (২০১১) ; কৌটিলীয় অর্থশাস্ত্র , সংস্কৃত বুক ডিপো , কোলকাতা ।

৯. বন্দ্যোপাধ্যায় , শ্রী অশোক কুমার (১৪১৬) ; কৌটিলীয় অর্থশাস্ত্র , সদেশ , কলকাতা ।

১০. ভট্টাচার্য , জনেশ রঞ্জন (২০১৭) ; অর্থশাস্ত্রম্ , বি. এন. পাব্লিকেশান্ , কলকাতা ।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

मध्यकालीन भारत में जाति एवं वर्ण व्यवस्था का अध्ययन

डॉ. कुलराज व्यास
(सहायक प्रोफेसर)
शिक्षा विभाग, आइ.ए.एस.ई. मानित विश्वविद्यालय,
सरदारशहर (चुरु)

सारांश

इस शोध पत्र में मध्यकालीन भारत में जाति एवं वर्ण व्यवस्था के विकास पर प्रकाश डाला गया है जो इस पत्र का मुख्य उद्देश्य है। इस अध्ययन के लिए विभिन्न लेखकों द्वारा वर्णित विषय सामग्री की सहायता ली गई है। भारतीय जन मानस की मूलतः विशिष्टतावादी नैसर्गिक प्रवृति को भी इसका कारण माना है। अतः ब्राह्मणों ने अलगाव या निषेध का सिद्धान्त पहले शुद्रों पर, फिर अन्य सभी वर्णो पर क्रियान्वित किया गया, जिसके परिणाम स्वरूप है। जाति का प्रादुर्भाव हुआ था, जो वर्तमान समय तक विद्यमान है।

बीज शब्दः जाति व वर्ण व्यवस्था, पेशेगत कारक, अलगाव या निषेध सिद्धान्त, जातियों का प्रादुर्भाव।

परिचयः गुप्तकाल के पश्चात् भारतीय समाज में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो गया था, परन्तु इस बात को स्पष्ट रूप से प्रकट करना, इतना सरल नहीं था कि भारत में प्राचीन काल का अन्त और मध्यकाल का आरम्भ होना शुरू हो गया। इस का कारण यह भी है कि मध्यकाल की अवधारणा के सम्बन्ध में विद्वानों का दृष्टिकोण उतना स्पष्ट नहीं है, जितना आधुनिक काल के सम्बन्ध में है। राखलदास बनर्जी, रमेशचन्द्र, मजुमदार, नीलकण्ठ शास्त्री तथा रमाशंकर त्रिपाठी जैसे विख्यात विद्वानों द्वारा प्राचीन भारत पर लिखी पुस्तकों के अनुसार, यह समय सीमा 1206 ई. तक सीमित रही है।

डॉ. आर.एस. शर्मा का अभिमत है कि अंततः जिस चीज ने प्राचीन भारतीय समाज को मध्यकालीन समाज में रूपांतरित किया है, वह थी भूमि अनुदान की प्रथा। विभिन्न शासकों द्वारा जारी किए गए अधिकारों पत्रों से ज्ञात होता है कि पुरोहितों और पुजारियों को भूमिदान पुण्य अर्जित करने के लिए दिए जाते थे। यह भूमि अनुदान प्रथा सामंती अर्थ व्यवस्था का आधार बनी और अतः प्राचीन भारत को मध्यकालीन भारत का रूप दिया।

सातवीं शताब्दी से भारत की राज्य व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और उसके समाज तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में कुछ बुनियादी परिवर्तन हुए, जैसे राज्य, वर्ण जाति पर आधारित समाज तथा पितृ सत्तात्मक परिवार ये सभी संस्थाऐं दोनों कालों में व्यवस्थित रूप में कार्य कर रही थी। भारत के पूर्ण मध्य युग में ऐसे तत्व भी उत्पन्न व विकसित होने शुरू हो गए थे, जिसके फलस्वरूप देश में समाज, धर्म तथा संस्कृति में ह्रास के चिन्ह, स्पश्ट रूप से प्रकट होने प्रारम्भ हो गए थे। इस विषय 700 से 1200 ई. का उत्तर भारत चक्रवर्ती क्षेत्र का संकोच, राजपूत शब्द से अभिहित नवीन राजवंशी के अभ्युदय, सामन्तवाद प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। इनके फलस्वरूप नये गांवों की स्थापना के कारण गांवों की संख्या में वृद्धि तथा वैदिक मूल्यों का ह्रास, मुस्लिम आक्रमण, व्यापार-वाणिज्य तथा नगरों का पतन, बन्द अर्थव्यवस्था एवं गतिशीलता का अभाव एवं ग्राम संस्कृति का उत्कर्श आदि विशेषताऐं अपनी उपस्थिति दर्ज करती है।

अतः 700 से 1200ई तक के समय में पूर्व मध्यकालीन, उत्तर भारतीय, समाज में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक,

सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों विभिन्न विस्मयकारी परिवर्तन हुए, जिन्होंने तद्युगीन जातीय एवं वर्ण व्यवस्था को भी प्रभावित किया। विभिन्न कारकों के आधार पर, जातीय एवं वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति, सिद्धान्त एवं ऐतिहासिक विकास का विश्लेशण किया गया है। इसके पश्चात् आठवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य हुए सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत जातीय एवं वर्ण व्यवस्था में आये परिवर्तनों के कारकों की सहायता से कारण प्रभाव सम्बन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। अंत में पूर्व मध्यकाल में परिवर्तनशील, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिवेश से उत्पन्न संकट के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों व शूद्रों के कार्यों के परिवर्तन को स्पश्ट रूप से दर्शाया गया है।

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में जाति एवं वर्ण व्यवस्था के अध्ययन में प्राचीनकाल के विभिन्न ग्रन्थों में दिये गए। विभिन्न स्रोतों द्वारा संकल्न करके, उनको साक्ष्य मानकर इस जाति या वर्गीकरण की व्याख्या की गई है। यह वर्गीकरण इस काल में प्रचलित विभिन्न पेशेगत कारकों को आधार मान कर जातीय व्याख्या की गई है।

इन कारकों के आधार पर पूर्व मध्यकालीन भारत में जाति एव वर्ण व्यवस्था का समीक्षात्मक वर्णन बहुआयामी पद्धति द्वारा विश्लेशण करना अति आवश्यक है। इस सन्दर्भ में पूर्व मध्यकाल के विभिन्न अध्ययनों द्वारा कुछ तथ्य निकाले गए हैं। इन तथ्यों के आधार पर यहाँ मध्यकालीन से पूर्व तथा 700ई से पहले के अध्ययनों से यह पता चलता है कि विचारधारा में कुछ अन्तर नजर आता है। इस सन्दर्भ में यह बात सामने आई है कि पुरातत्व परम्परावादी विचारधारा का प्रभाव वैदिक विचारधारा पर व्यापक रूप से पड़ा है। जो मानदण्ड, मनुस्मृति या धर्मशास्त्र साहित्य में दिये गये है, वे वैदिक परम्परावादी विचारधारा से व्यापक रूप से मेल खाते हैं, परन्तु यह विचारधारा इस काल की समकालीन लेखकों की विचारधारा से भिन्न है। यह सभी लेख जो मुख्यः मनुस्मृति की ही व्याख्या है। जो समय के साथ सुधार और कभी-कभी शास्त्रों का प्रतिस्थापन ही एक स्वरूप है। यह मस्काटि व्याख्या है, जो नारा दिया मनुसंहिता तथा विजनाने स्वारा का जिमूत्याहाना पर प्रभाव का ही स्वरूप है।

इन चार वर्णों में पहली बात जो सामने उभर कर आई है। इन चार वर्णों में से कोई भी एक आदर्श तस्वीर सामने उभर कर आई प्रतीत नहीं होती जो समाज को विभाजित रूप से प्रकट कर सके। यह केवल समाज को दो भागों में ही विभाजित करती है। द्वीजा (ब्राह्मण) व अद्वीजा (शुद्र) - इस वर्गीकरण में क्षत्रिय तथा वैश्य, जातियों का कोई स्थान नहीं नजर आता। यह अवस्था केवल पूर्व मध्यकालीन भारत में ही दृष्टिगोचर होती है।

विभिन्न लेखन कार्यो से यह स्पश्ट हो जाता है कि वर्ण प्रणाली इस काल में समाज की धुरी बन चुकी थी। वर्ण और जाति एक दूसरे के प्रतिस्थापन के रूप में प्रयोग किया जाता था। कानून बनाने वाले इस बात से परिचित थे कि विभिन्न समुदायों में विवाह शादियों से होने वाली सन्तानें अपनी ही जातियों का विशेश पहचान बनाने के लिए यत्नशील रहती थी।

इस बात की आवश्यकता यह थी कि विभिन्न बस्तियाँ भी ब्राह्मण के इस मॉडल के अनुरूप ही जानी जाती थी। ये बस्तियां जातियों से जुड़े विभिन्न धंधों के आधार पर ही आश्रित होती थी। क्योंकि विशेश धंधा एक विशेश जाति से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा होता था। इस सन्दर्भ में एक विशेश रूचि की बात यह है कि इन सामुदायिक समूहों में भी प्रादेशिक तथा स्थानीय स्तर पर भी विशमता होती थी। लिखित सामग्री से इस बात का भी संकेत नहीं मिलता कि इस के लिए कोई समान संहिता नहीं मिलती तथा इस विशय में व्यापक तौर पर विशमता पाई जाती है।

इस काल में ब्राह्मणों को समाज में उच्चतम दर्जा दिया जाता था, जो समाज में सबसे पढा-लिखा व्यक्ति माना जाता था। वह समाज में सबसे अधिक पढा-लिखा होने के कारण वेदों और पुराणों की व्याख्या करने का अधिकार रखता था। पुजारियों के उपवर्ग में - 1. देवा 2. मुनी 3. द्वीजा 4. राजा 5. वैश्य 6. शुद्र 7. मर्जारा 8. बीस्ट 9. मलेच्छ 10. चाण्डाल।

ब्राह्मणः ब्राह्मणों को पांच भागों में बांटा गया है।

1. सारस्वत, जिनका उद्गम स्थान सरस्वती नदी के प्रदेश से सम्बन्धित है। 2. कन्याकुंज जो कन्नोज स्थान से सम्बन्धित है। 3. उत्कला, जिनका निकास उड़ीसा प्रदेश से सम्बन्धित है। 4. मिथिला, जिसका उद्गम स्थान उत्तरी बिहार है तथा गौड़ ब्राह्मण। आगे बंगाल प्रदेश के ब्राह्मणों को दो भागों में बांटा गया है- राधिया और वरेन्द्र जो प्रादेशिक विशेशिता को स्पष्ट

रूप से दिखाई देता है।

मनु संहिता के अनुसार किसी अपराध के होने पर ब्राह्मणों को मौत की सजा माफ होती थी और उनसे केवल आर्थिक दण्ड लिया जाता था। इसके विपरीत विजनेश्वर के अनुसार यदि ब्राह्मण अपराधी है और वह स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने में असफल रहता है तो वह पूरे दण्ड का भागीदार होता था।

क्षत्रियः जैसा कि धर्मशास्त्र में क्षत्रिय की आदर्श परिभाषा दी थी, वह कुछ अलग रूप से प्रकट की गई थी। वह उदगम् स्थान से अलग थी। इसके विपरीत यह प्रवृति क्षत्रीय के परिभाशा को अलग रूप से नस्ल अर्थात पीढी का उद्‌गम स्थान क्या है, यह बात अधिक महत्वपूर्ण थी। जो क्षत्रिय होने का दावा करता था। वर्तमान सन्दर्भ में, इस बात की पुश्टि होती है कि पश्चिमी भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक प्रक्रिया जो राजपूत स्तर को प्राप्त करने के लिए, इन शक्तियों का सहारा लिया था। इस विशय में सक्षम रूप से निरीक्षण करने पर यह पता चलता है कि इसका सम्बन्ध सूर्यवंश या चन्द्रवंश से है।

वैश्यः वैश्य वर्ण का सम्बन्ध, कृषि, पशु पालन और व्यापार से सम्बन्ध माना जाता है, परन्तु मध्यकालीन भारत में वैश्य इन सब से अलग ही था। आर.एस. शर्मा के अनुसार कृशि जो इस वर्ण से सम्बन्धित माना जाता था, वो उस समय में शूद्रों से सम्बन्धित था। पूर्व मध्यकालीन समय में यह माना जाता थ कि व्यापारिक गतिविधियां व्यापक रूप से समाप्त हो चुकी थी और यह माना जाता था कि यह समुदाय अपनी महत्वता बिल्कुल खो चुका था। इस सन्दर्भ में रणबीर चक्रवर्ती जैसे लेखक के अनुसार इस काल में वैश्य वर्ण की अपनी पहचान बन चुकी थी।

इस विशय में ऐसा विश्वास किया जाता है कि उन्होंने वाणिक समुदाय के साथ व्यापारिक गतिविधियों को बढाकर इस काल में अपनी अलग पहचान बनाई। पूर्व मध्यकाल में लिखित सामग्री के अनुसार व्यापारिक बस्तियों का प्रचार हुआ जो वानीग्राम के रूप में जाना जाता है, वह एक राजनैतिक शक्ति का केन्द्र भी माना जाता था।

शूद्रः ब्राह्मणों के सामाजिक दर्जे बन्दी के अनुसार शूद्रों के साथ व्यापक रूप से भेदभाव अपेक्षित था। कुछ लेखकों के अनुसार यह बात एक विरोधाभास बनकर सामने आई जो इस समीक्षा को व्यापक रूप से जटिलता का आभास करवाता है। इन लेखों में यह बात रोचक ढंग से उभर कर आई कि इस समय शूद्रों को गैर ब्राह्मण समुदाय के रूप में जाना जाता था। यह बात इस बदलते परिवेश में वर्ण व्यवस्था की संरचना को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक था। यह तब ही सम्भव हो सका जब सभी वांछित सूचनाओं के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया।

इस विषय में यह बात स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती है कि शूद्र समुदाय व्यापक रूप से भिन्न समुदाय था। जिसमें अधिकत्तर कृशि मजदूर, छोटे किसान, कारीगर व हाथ से कार्य करने वाले नौकर व अन्य लघु कर्मचारी इत्यादि सम्मलित थे। इन समुदायों में व्यापक रूप से वृद्धि होने पर ब्रह्मव्रत पुराण, प्रकाश यादव का वैजयन्ती और हेमचन्द्र का अभिधना चिन्तामणि के नामों से जाना जाता था।

आर.एस. शर्मा के अनुसार जब विभिन्न ब्राह्मण समुदायों में भूमि वितरण के समय उच्च कोटि के ब्राह्मणों ने यह बात रखी कि कौन से ब्राह्मण शुद्ध ब्राह्मण हैं और कौन से अशुद्ध ब्राह्मण हैं। इसी वर्गीकरण में ब्राह्मणों ने सब्रास, भील पुल्डिास और अन्य बात का मान दण्ड बनाने के बाद शुद्ध और अशुद्ध ब्राह्मणों का वर्गीकरण किया गया था। शर्मा ने इस परिवर्तन को विशेष व्यवसाय से जुड़े समुदायों के साथ भी इस वर्ण व्यवस्था को जोड़ा जैसे नपिता, मोदका, ताम्बुलिका, स्वर्णकार सूत्रकार आदि। शुद्ध और अशुद्ध के मानदंड के आधार पर अनेक व्यवसायों की व्याख्या करते हुए मनु शर्मा ने दो भागों में विभक्त किया है- सत्त शुद्ध और असत्त शुद्ध। इसी प्रकार आगे चलकर इसके दो भाग हैं- भोज्यान्ना (जो भोजन तैयार किया जाता है, वह ब्राह्मण द्वारा ग्रहण किया जाता है) तथा अभोज्यान्ना जो इसका विपरीत है।

कायस्थः कायस्थों को प्रायः कर्णो का पयार्यवाची माना जाता रहा है। जैसा कि क्लार्क ने ऐतिहासिक पूर्व काल में बताया था। जैसा कि इस काल में यह केवल राजस्व तथा भूमि के निरन्तर हस्तातंरण के सन्दर्भ में देखा गया है। जैसा कि पूर्व-मध्य कालीन समय में लेखकों तथा रिकार्ड धारकों को इन कार्य में लगाना आवश्यक था, जो भूमि सम्बन्धी रिकार्ड तथा गांवों से धीरे-धीरे भूमि राजस्व जुटाना अति आवश्यक था। 900 ई. से पहले किसी एक जाति की विशेषता को दिखाना

आवश्यक नहीं था। यह केवल उन व्यवसायों से जुडे विभिन्न वर्णों व सामाजिक समूहों से लिया गया था।

इस सन्दर्भ में यह बात देखने में आई कि नौवीं शताब्दी तथा इस से आगे कालान्तर में यह देखा गया कि बहुत से खानदान जैसे वल्लभ, गौड़, मथुरा, वत्स या श्रीवास्तव जो कायस्थों के विभिन्न गौत्र हैं, वह कई प्रदेशों में बसते गए। जब वे समूह के रूप में विकसित हुए तो उन्हें जाति के रूप में जाना गया और विशेश जाति के गुणों के कारण अपनी पहचान बनाई। यह वह समय था जब जातियों की पहचान एक विशेष पंक्ति के विकसित होने के लिए की जाति थी। इस समय के अन्तिम दौर में शक्तिकरण तथा विशेश स्तर को ग्रहण करने पर गैर ब्राह्मण समूह के रूप में बंगाल में उभरते नजर आये। इस विषय में यह बात भी उभर कर सामने आई कि शक्ति का दुरूप्योग करने तथा घोटालों में लिप्त होने के कारण कल्हन ने इसे कायस्था सर्प पदम या साँप कहकर वर्गीकरण किया। शक्ति के सन्दर्भ में यह बात ब्राह्मणों को अखरनी निश्चित थी क्योंकि इससे पहले समाज की विभिन्न शक्तियों के आयाम पर केवल ब्राह्मणों का ही अधिकार होता था।

वैद्यः पूर्व मध्यकालीन भारत में आर्युवैदिक चिकित्सा का विकास होना प्रारम्भ हो गया था और चिकित्सा का अध्ययन तथा इलाज पर पड़ा धब्बा कुछ न कुछ दूर हुआ। इसके लिए कई उदाहरण है, जैसे आरोग्यशाला स्थापित हुई, जो ब्राह्मणी मठों तथा बुद्ध विहारों में इन केन्द्रों की स्थापना हुई। इस प्रकार पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत में चिकित्सा विज्ञान में भ्रान्तियां दूर करके इस वैधिक विचारधारा को इस काल की अग्रणीय सेवाओं में ला खड़ा किया।

अछूत व्यवस्थाः उतरी भारत में पूर्व मध्यकाल में अछूत व्यवस्था जो अस्वच्छ सेवाऐं मानी जाती थी, उन्हें जनसंख्या के इस भाग को अछूत की संज्ञा दी गई थी। ये अस्वच्छ सेवाऐं, इस जनसंख्या के विशेश वर्ग द्वारा दी जाती थी। इस समाजिक समूह को एजियाज का एक निम्न दर्जा दिया गया। कालान्तर में ये शूद्र कहलाए। इन शूद्रों में राजकां, कारमकारा, नट, कैईवाता, मेदा और भील थे। यहां तक कि इन मे से कई इनसे भी नीचे के समूह थे जिमसें चाण्डाल, हाडी, डूम इत्यादि। अस्पर्शयता का विचार की धारणों तथा इसका लोक व्यवहार इस काल में चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी। जब अन्तयाजा समूहों विशेशकर कण्डाला, व डूम जातियों से जुडे लोगों को अपेक्षाकृत बहुत प्रताड़ित किया जाता थ।

इस काल में हम यह देखते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में तालाब इत्यादि के प्रयोग करने पर ग्रमीण वातावरण व्यापक रूप से तनावपूर्ण हो जाता था। कई साक्ष्य बताते हैं कि चाण्डालों को गांव की सीमा पर बसाया जाता था। बात यहाँ तक थी अन्यादा समुदाय के किसी व्यक्ति को शूद्र का साया भी पड़ जाता था तो उसे पुनः पवित्र होने के लिए सांस्कारिक पूजा पाठ करनी पड़ती थी। इस सन्दर्भ में आरण्य का जिक्र करना भी आवश्यक है। आरण्य वो थे जो वनों में घुम्मकड़ों का जीवन व्यतीत करते थे। कथासारिका सागर में यह बात व्यापक रूप से रूचिकर उभरकर सामने आई है कि भील, पुलिंद और साब्रास जो विंध्य के वनों में विचरते थे। ये सभी यदि राज्य की सीमाओं से बाहर रहते थे परन्तु राज्य की रीढ़ की तरह शक्ति का केन्द्र बिन्दु कहलाते थे। अतः हम देखते हैं कि मध्यकालीन युग में वर्ण व्यवस्था का विकास राज्य की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक शक्तियों के समागम के कारण हुआ प्रतीत होता है।

निष्कर्षः इस शोध पत्र में मध्यकालीन (700 से 1200 ई.) के मध्य के समय में भारतवर्श के उत्तरी भारत के विभिन्न प्रदेशों में जाति व वर्ण व्यवस्था के विकास की दशा एवं दिशा की समीक्षात्मक व्याख्या की गई है। इस सन्दर्भ में कई इतिहासकारों ने अपने-अपने शोध के आधार पर कई निष्कर्ष निकाले हैं, जिसके फलस्वरूप मध्यकालीन, भारत में जाति व वर्ण व्यवस्था का विभिन्न जातीय एवं वर्ण कारकों का कारण प्रभाव सम्बन्ध की व्याख्या प्रसंग सहित की गई है। जैसा कि कई इतिहासकारों ने इस वर्ण व्यवस्था के उद्गम, विकास, विभाजन एवं प्रभाव की समीक्षा उससे सम्बन्धित नस्ल से भी जुड़े हैं। कालान्तर में वर्ण व्यवस्था का मुख्य आधार उसका आधारभूत में समय के साथ व्यापक परिवर्तन हुआ जो इस बात की निरन्तरता तथा परिवर्तन की स्थिति को सांकेतिक करता है। अतः ब्राह्मणों में अलगाव या निषेध का सिद्धान्त सर्वप्रथम शूद्रों पर फिर अन्य वर्णों पर क्रियान्वित किया गया है। जिसके फलस्वरूप जाति का प्रादुर्भाव हुआ था जो वर्तमान समय तक प्रचलित है। यह वर्ण व्यवस्था विशेशकर ग्रामीण परिवेश में समाज का अभिन्न अंग है। यह व्यवस्था आज भी भलीभांति ताना-बाना युक्त, संगठित एवं जुड़ी है, जो इस वर्ण व्यवस्था की धरोहर को संजोकर रखे हुए है।

सन्दर्भ सूची

* Chattpadhya (1994), "The making of Early Mediveal India", Oxford University Press, Delhi.
* Chaudharym A.K. (1971), 'Early Mediveal Age', Sanjeet Publication, Nai Sarak, Delhi .
* Chauhan, Gyan Chand (2003), "Economic History of Early Mediveal North India", Atlantic Publishers, New Delhi.
* Ray, H.C. (1978), "Social Cultural and Economic History of Medival India", Surjeet Publications, Nai Sarak, Delhi.
* Sharma, R.S. (1993), "Social Change in Early Mediveal India: Circa AD: 500-1200, People Publishing House, N. Delhi.
* Sharma, R.S. (2006), India's Ancient Past, Oxford India Press, New Delhi.
* Satish Chander (2006) Rajnaitik Smaj and Sanskriti, Surjeet Publishers, Delhi.
* Singh, Upender, (2006), A History of Ancient and Early Mediveal India from Stone Age to 12th Century, Pearson Education, New Delhi.

स्त्री अस्मिता के प्रश्न और आदिवासी उपन्यास

स्नेहलता
शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. विष्णु प्रसाद शुक्ला
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज

आदिवासी समाज में स्त्रियों को गैर आदिवासी स्त्रियों से ज्यादा अधिकार प्राप्त हैं। किन्तु धीरे-धीरे गैर आदिवासी समाज का प्रभाव पड़ने के कारण आदिवासी समाज में भी कामकाज के बंटवारे और शुभ-अशुभ के निर्धारण में स्त्रियों के प्रति समाजिक भेदभाव होने लगा है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में स्त्री शरीर को वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। आदिवासी स्त्रियाँ इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं। इनकी जमीन पर कब्जा करके इन्हें मजदूर बनने पर मजबूर किया जाता है, तदोपरान्त जमींदार इनका दैहिक और आर्थिक शोषण करते हैं। हिन्दी के उपन्यासकारों ने उनके बीच जाकर अनुसंधान कर आदिवासी समाज में स्त्रियों के शोषण और उनकी बदलती स्थिति का चित्रण किया है। हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी स्त्री अस्मिता की बोलती तस्वीर प्रस्तुत है। यहाँ आदिवासी स्त्री की अस्मिता के प्रश्न को सचेत और सुव्यवस्थित ढंग से उठाया गया है।

आदिवासी समाज में स्त्रियों को किसी भी प्रकार की रोकटोक स्वीकार नहीं है। यदि मान्यतायें रुढ़िवादी हैं तो वह उसका विरोध कर सकती हैं। रांगेय राघव के ‘कब तक पुकारूँ’ उपन्यास में उनका विद्रोह कम है, जिसके कारण वह शोषण चक्र में बुरी तरह फंस जाती हैं। उनका आत्मसम्मान उनसे छिन जाता है। अपने पति को पुलिस से छुड़वाने हेतु वे अपना सौदा करती हैं। उनके स्वर में कहीं भी आक्रोश नहीं है, सिर्फ व्यवस्था के आगे घुटने टेकने को विवश हैं, लाचार हैं। उनका विश्वास है—“जमींदार हुकुम चलाता है-वह हमारा बाप है, हम उनकी रिआया हैं। उसका काम है हमारा पेट भरना हम सदा से उनके सामने सिर झुकाते ही आये हैं।”[1] इस प्रकार व्यवस्था के शोषण तंत्र में आदिवासी समाज की स्त्री पिसती जा रही है। मुख्यधारा का समाज उनकी लाचारी बेबसी का नाजायज फायदा उठाता है। नटों की जातीय व्यवस्था के चलते नट स्त्रियाँ दोहरे शोषण का शिकार होती हैं। शेष समाज उन्हें औरत की जगह नट औरत के रूप में देखता है। वह रोती हैं चिल्लाती हैं, नट जाति में पैदा होना अपना दुर्भाग्य समझती हैं। उपन्यास में ‘प्यारी’ अपनी जातीय अस्मिता से कहीं औरत होने पर खीझ खाती है—“मुझे उठा ले, अपने पास बुला ले। दुःख दे देकर मुझे जिला जिलाकर न मार। मेरा पाप क्या है? पराए मर्दों के संग सोई हूँ तो तूने मेरी जाति ऐसी बनाई क्यों? जिसे कोई हक नहीं है। तूने मुझे औरत बनाया क्यों?”[2] इस तरह से उपन्यास में नारी पात्र अपनी मुक्ति के साथ अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के द्वंद में भी झूल रही है।

बढ़ते औद्योगीकरण और शहरीकरण के चलते गांवों से लोगों का मोहभंग हो रहा है। आज गाँव उजड़ रहे हैं, इसका प्रभाव आदिवासी स्त्री पर भी पड़ा है। कुछ ऐसी आदिवासी स्त्रियों के मनोभाव का चित्रण उदयशंकर भट्ट ने ‘सागर लहरें और मनुष्य’ में किया है। उपन्यास की रत्ना नामक पात्र को गाँव का मोह आकर्षित नहीं करता है—“कारण कुछ भी नहीं बस मुझे बरसोवा से नफरत है, यहाँ के लोगों से इस काम से नफरत है। दुनिया इतनी आगे बढ़ गई और हम अभी तक बाप-दादों की तरह मछली मार रहे हैं। न ऊँचाई न रहन-सहन, न कुछ और।”[3] शिक्षा के प्रभाव से भी जनजातीय समाज की स्त्रियों

को समाज में अपने होने का अहसास होता है। तेजी से बढ़ते विकास के साथ वह अपना तालमेल बैठाने की चाहत रखती है। लेखक ने रत्ना के माध्यम से यह दिखाया है कि ''एक आदिवासी स्त्री की भी प्रतिष्ठा हो। मैं बड़ी बन सकूं। जब मैं सभा सोसायटी में किसी औरत को बोलते सुनती हूँ तो जी चाहता है, मैं भी ऐसी होती।"[4] यह रत्ना नामक पात्र अपने अस्तित्व-बोध के चलते अपने भीतर दबी उमंगों को बाहर लाती है। वह चाहती है कि समाज में उनके सपनों को भी महत्ता मिले। उसकी आवाज को भी सशक्त वाणी मिले। उनकी सहभागिता सभी जगह सुनिश्चित हो, आखिर उनकी भी अपनी स्वतंत्र अस्मिता है। इस उपन्यास में स्त्री अस्मिता का सवाल उनके मान सम्मान तथा सामाजिक न्याय से जुड़ा है। उपन्यास में एक अंचल का सहारा लेकर वहाँ की जनजातीय जिंदगी को समझा परखा गया है।

ऐतिहासिक उपन्यास 'कचनार' में आदिवासी स्त्री के अस्तित्व का चित्रण मिलता है। उपन्यास में सभी लालच, स्वार्थ से दूर अपने मान-सम्मान के प्रति जनजातीय लोग अधिक जागरुक दिखाई पड़ते हैं। खासतौर पर स्त्री में यह जागरुकता ज्यादा पाई जाती है। वह अपने स्वत्व को मरने नहीं देती है। कचनार नामक पात्र अपने अस्तित्व के प्रति सजग दिखाई पड़ती है। वह अपने स्वाभिमान हेतु सब कुछ न्योछावर कर सकती है–"दासी तो हूँ ही, आपकी और दादी की अन्य सबकी सेवा करूंगी, परन्तु मैं ऐसी अंगरखा नहीं बन सकती जो जब चाहा उतारकर फेंक दिया।"[5] स्त्री का आत्मसम्मान सर्वोपरि है। कचनार अपनी अस्मिता को अपने आत्मबल से मिटने नहीं देती है। उपन्यास में जनजातीय स्त्री सम्पूर्ण परिवेश में अपने वजूद को टटोलती रहती है। अपने स्वाभिमान एवं नारीत्व को बनाए रखती है।

जल, जंगल, जमीन का सवाल आदिवासियों के हितों से तथा उनकी अस्मिता तथा अस्तित्व से जुड़ा है। 'शैलूष' नामक उपन्यास में सावित्री नामक पात्र चाहती है कि उनकी भी अपनी खुद की जमीन हो जिससे वो गरिमापरक जीवन जी सकें। "सावित्री उस दिन का इंतजार करती रही कि नटों का घर हो, थोड़ी जमीन हो ताकि ये सभ्य जन बन सकें।"[6] इस प्रकार नट स्त्री अपने अस्तित्व के लिए चिंतित है। उपन्यास में स्त्री अस्मिता के प्रश्न को भी उभारा गया है। आदिवासी स्त्री अपने मान सम्मान तथा स्वाभिमान के प्रति सजग है। उपन्यास की पात्र रूपा में यही प्रवशत्ति दिखाई पड़ती है।

राजेंद्र अवस्थी के 'सूरज किरन की छांव' नामक उपन्यास में झूठे प्रलोभन के जाल में फंसी ऐसी आदिवासी स्त्री की करुण गाथा है जो धर्म परिवर्तन के जरिये बंजारी स्त्री से मिसेज बेंजो बन जाती है। अपनी मूल जड़ों से कटने के पश्चात वह क्रिश्चियन समाज में भी अपने आप को फिट महसूस नहीं कर पाती है। भोली-भाली स्त्री अपने अस्तित्व की लड़ाई में बहुत सी उलझनों से होकर गुजरती है। जनजातीय समाज के साथ एक समस्या यह भी कि वह नगरीय सभ्यता के दुष्चक्रों में फंसता जा रहा है। क्रिश्चियन लड़का अपने दुष्चक्रों में बंजारा स्त्री को फंसा लेता है। ''शहर से तेरे लिए एक नया ब्लाउज ला दूँगा। बल्ला-बंजारी से उसका नाम तक उच्चारित नहीं होता। वह पूछती है यह क्या बला है रे।"[7] यहाँ इस बात को उजागर किया गया है कि महानगरीय जीवन की चालाकी की वजह से मुख्यधारा के समाज ने आदिवासी समाज के साथ छल प्रपंच किया है। इन्हीं छल प्रपंचों तथा दुष्चक्रों के कारण उनकी अस्मिता संकट के कगार पर है। उपन्यास में बंजारा स्त्री धर्म-परिवर्तन के बाद बहुत से कष्टदायी मार्गो से गुजरती है। वह अपने किये गये कार्यों के लिए पाश्चाताप करती है। यह पश्चाताप ही उसे अपने अस्तित्व के प्रति सतर्क रखता है। उपन्यास में वह प्रण करती है कि ''अब मैं कंगाल के साथ अपने गांव को वापस चली जाऊंगी। गांव की और गांववालों की सेवा कर अपने पाप का मोचन करूंगी और देखूंगी कि वहां किसी और बंजारी को निर्वासित होकर मिसेज बेंजो जोसेफ न बनना पड़े।"[8]

वहीं श्री प्रकाश मिश्र के 'जहाँ बांस फूलते हैं' नामक उपन्यास में मिजो स्त्री व्यवस्था के आगे लाचार है। उसका अस्तित्व नष्ट होने के कगार पर है। अन्याय, अत्याचार को तो वह भाग्य की नियति के रूप में स्वीकार कर लेती है। कामी, जोरमी आदि ऐसे पात्र हैं, जो शोषण के इस दुष्चक्र में छटपटाती रहती हैं।

''जोरमी का अपना यौवन, अपना बचपन, अपनी पूरी जिंदगी आंखों में घूम गई, जिसमें कहीं भी सुख नहीं था। भोगेंद्र ने उसकी जिंदगी इस तरह से चौपट की कि वह नर्क के दलदल में फंसती चली गई।"[9] इस तरह की अपमानित, प्रताड़ित और तिरस्कृत प्रवशत्ति के चलते मिजो जनजाति की स्त्री-अस्मिता भी संकट में पड़ जाती है। कुल मिलाकर कह सकते हैं

कि कथाकार ने मिजो जनजाति की स्त्री-अस्मिता के प्रश्न को बारीकी से उठाया है। मिजो समाज का कड़वा और नंगा सच उन्हीं की शब्दावली में उभर कर हमारे सामने आया है। अस्तित्व-बोध के चलते विद्रोह चेतना का अंकन है। उपन्यास में आदिवासी स्त्री भी अपने हक और अधिकारों को पाने की लालसा रखती है। वह अपने तथा बाहरी समाज के हस्तक्षेप से निपटने हेतु अपने को ताकतवर बनाती है।

रमणिका गुप्ता के 'सीता-मौसी' उपन्यास में आज की आदिवासी समाज की स्त्री की वो दास्तान है, जिसमें वह उस दंश का मुकाबला करती है जो उसके स्वाभिमान को चोट पहुंचाती है। सीता-मौसी ने परिस्थितियों को अपने अनुसार ढाल लिया है। उन्होंने परिस्थितियों को हर कदम पर, हर मोड़ पर जिन्दगी को मौत से छीना है। अपनी जमात के लिए, अपने स्वाभिमान के लिए, अपने जनजातीय समाज के लिए। सीता-मौसी ने ऐसे नेतश्त्व को जन्म दिया है जो सदियों से मौन रहा है जो तिरस्कार भरी जिन्दगी जीता रहा है, परन्तु अब उस तबके में जागरुकता आने लगी है तथा अनुभव के आधार पर अपने फैसले खुद लेने लगे हैं। सीता-मौसी इसका अच्छा खासा उदाहरण हैं। इन उपन्यासों में आज की वह आदिवासी स्त्री है जो मुख्यधारा के समाज के सामने अपनी झिझक, संकोच और चुप्पी को तोड़ती हुई दिखाई पड़ती है। इन उपन्यासों में आदिवासी स्त्री के अस्तित्व-संघर्ष के स्वर गति पकड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं।

भगवानदास मोरवाल के 'रेत' उपन्यास की नायिका रुक्मिणी एक ऐसी पात्र है जो अपने स्वाभिमान को बचाने की ललक में रहती है। उपन्यास में यह नारी पात्र अपने अस्तित्व को टटोलती रहती है। अपने अस्तित्व पर आँच नहीं आने देती है। यहाँ आदिवासी स्त्री के संघर्ष की जमीन तैयार होती है। यह सीढ़ी दर सीढ़ी सफलता पाने की लालसा रखने वाली स्त्री के संघर्ष की दास्तान है। देशज शब्दावली के साथ गजब की किस्सागोई से लबरेज लेखक का यह नया शाहकार, हिन्दी में स्त्री-विमर्श के चौखटों एवं हदों को तोड़ता हुआ इस विमर्श के एक नए अध्याय की शुरुआत करता है। इस उपन्यास में आदिवासी समाज में अंगड़ाई ले रही स्त्री में नई चेतना की अभिव्यक्ति है।

संजीव का 'धार' नामक उपन्यास आदिवासी अस्मिता की दश्ष्टि से महत्वपूर्ण रचना है। उपन्यास के केंद्र में आदिवासियों की संगठन शक्ति तथा क्रान्तिकारी पहलू को रखा है। आदिवासियों की यह संगठन शक्ति तथा क्रान्तिकारी चेतना तलवार की धार की तरह है जो उनके अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए जरूरी ही नहीं बल्कि अनिवार्य बताई गई है। उपन्यास में अपने आदिवासी साथियों को अविनाश शर्मा संगठन में शक्ति का अहसास तथा अपनी अस्मिता के प्रति भी जागरुक करते हैं-''तो साथियों, यह धार ही हमारी शक्ति है और धार का भोथरा होना ही मौत-धार बरकरार रही तो सारा संसार ही आपका है। इसलिए हमें धार की जरूरत है, सतत शान से ताजा होती धार चाहिए। हमें इसके लिए कोई भी आहुति क्यों न देनी पड़े।"[10] उपन्यास में आदिवासी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आंदोलित हैं। उनमें क्रान्ति के जरिए बदलाव की चेतना की जरूरत है। संजीव के धार उपन्यास में नायिका मैना भी अपने अस्तित्व हेतु संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। कोयला माफिया ठेकेदार और पुलिस प्रशासन की मिली भगत से आदिवासियों के ऊपर हो रहे अन्याय एवं अत्याचार से लड़ने के लिए मैना अपने समाज के बीच संघर्षशील चेतना के रूप में न केवल उभरती है वरन शोषण के खिलाफ जनजागरण भी करती है।

मधुकर सिंह का 'बाजत अनहद ढोल' संथाल विद्रोह की कहानी कहता है। 1855 में हुई 'संथाल हूल' नाम से मशहूर संथाल क्रान्ति अंग्रेजों को भारत से भगाने की पहली जनक्रान्ति थी। दरअसल भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध संगठित पहला गोला, हाशिए पर धकेल दिए गए झारखंडी आदिवासियों ने ही दागा था। संथालियों की गरिमा, ज्ञान आजादी और अस्मिता परिस्थितियों के अनुकूल सिद्धू कान्हू नामक नायक के साथ जाग चुकी थी। इस सतर्कता और जागरुकता का परिचय उपन्यास में मिलता है। उपन्यास में दिखाया गया है कि किस प्रकार गोरे, साहूकार और स्थानीय जमींदार लोग एक साथ संथाल जनजाति पर जुल्म करते हैं। इस अन्याय अत्याचार के खिलाफ स्त्री तथा पुरुष दोनों एक साथ विद्रोह भी करते हैं। विदेशी ताकतें तथा जमींदार मिलकर संथाल जनजाति का शोषण करते थे। इस दमन-चक्र में संथाल जनजातियां अपनी अस्मिता को लेकर चिंतित हो गईं तथा अपने स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए विद्रोह के स्वर को तेज कर दिया। ''भीतरी दमन का सिलसिला फिर से शुरू हो गया। भूख, गरीबी, जहालत, अभाव और समाज में अपनी भूमिका तलाशते संथाल समुदाय अपनी

अस्मिता की चिंता में बेदम होते चले गए। यह सच है कि संथाल आदिवासी स्वभावतः विद्रोही होते हैं। वे सब कुछ बर्दाश्त कर सकते हैं, बहू बेटियों की अस्मिता का मर्दन ये कतई बर्दाश्त नहीं कर सकते।"[11]

आदिवासी स्त्री अपनी अस्मिता और अस्तित्व के प्रति सजग है। वह सामंती समाज के आगे अपनी अस्मिता की रक्षा स्वयं करती है। इस प्रकार संथाल विद्रोह में स्त्री तथा पुरुष दोनों का विरोध है। यहां स्त्री तथा पुरुष दोनों के संघर्ष में चेतना के साथ-साथ नए समाज की कल्पना भी उनके मस्तिष्क में कौंधती रहती है।

राकेश कुमार सिंह एक ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने आदिवासी जनजीवन पर अपनी अनुभवजन्य दृष्टि डाली है। 'पठार पर कोहरा' आदिवासी जनजीवन पर लेखक की एक सफल सार्थक कोशिश दिखती है। उपन्यास की भाषा के जरिए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी अनुभवजन्य दृष्टि काफी विकसित है। झारखण्ड के वर्तमान जनजाति जीवन की झलक यहाँ देखने को मिलती है। ब्रिटिश हुकूमत के भारत छोड़ने के बाद झारखंड के जंगलों में एक नई शोषक संस्कृति का उदय हुआ है। यह साहू, बाबू और बंदूक की संस्कृति थी। लेखक की यह चिन्ता भी जायज है कि आदिवासी कल्याण की सरकारी योजनाओं का लाभ उन्हें नहीं मिल पाता है। इन्हीं सब चिंताओं का सार्थक चित्रण इस उपन्यास में है। उपन्यास में संजीव नामक नायक के माध्यम से या कहें एक गैर-आदिवासी पात्र ने जनजातीय समाज में रहकर उनके सुख-दुख तथा उनमें सोई हुई शक्ति को जगाने का प्रयास किया है—"यह कैसा दीकू आया है इस दफा मास्टर बनकर जो मुंडाओं के दुख से दुखी होता है।"[12] इस उपन्यास में शोषण, अन्याय और अत्याचार के दुष्चक्र में फंसे जनजातीय समाज को सतर्क करते, उनमें अपनी अस्मिता के बीज अंकुराते एक संवेदनशील और मजबूत इरादों वाले नायक की कथा है, साथ ही निराशा के अंधकार में घिरी एक आदिवासी स्त्री के आत्मसंघर्ष को भी उपन्यास हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

मैत्रयी पुष्पा बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की महत्वपूर्ण कथाकार हैं। 'अल्मा कबूतरी' उनका श्रेष्ठ उपन्यास है, जो कबूतरा जनजाति को आधार बनाकर लिखा गया है। इसमें जनजातीय समाज की तड़प और बेचैनी को उजागर किया गया है। लेखिका ने उनके अस्तित्व और अस्मिता के प्रश्न को संवेदनशील तरीके से उजागर किया है। अपने वजूद और अस्तित्व को बचाए रखने के लिए यह समाज निरंतर संघर्ष कर रहा है। कबूतरा जनजाति के लोग अपनी जड़ों और संस्कृति को कभी नहीं भूल पाते हैं क्योंकि इसी से उनकी अस्मिता जीवित रहती है।

यह उपन्यास सामंती दुष्चक्रों के चलते जनजातीय समाज की त्रासदी भरी गाथा कहता है। उपन्यास में स्त्री अस्मिता की छवियाँ भी उभर कर सामने आती हैं। अल्मा कबूतरी की पात्र कदम, भूरी अल्मा इत्यादि सभी जनजातीय स्त्रियों की अस्मिता को विभिन्न तंत्रों के जरिए दबाया जाता है किन्तु निरंतर संघर्षशील होने के कारण अस्मिता हेतु संघर्ष का सफर अपनी दिशा में गतिमान रहता है। यह समाज अपने धर्म, संस्कृति और परम्परागत मान्यताओं को अपनी अस्मिता से जोड़कर देखता है। उपन्यास में लेखिका ने जनजातीय समाज (विशेषकर कबूतरा जनजाति) की अस्मिता खोने या कुचलने के संकेत दिए हैं। मैत्रेयी पुष्पा ऐसे जनजातीय समाज से हमारा साक्षात्कार करवाती हैं जो अपने अधिकारों, अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहा है। आरक्षण जैसी सुविधा से भी वह उपेक्षित रहता है।

इस प्रकार यह कह सकते हैं कि हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी स्त्री के तनावों, दुखों, यातनाओं और इन सबके बीच उसकी अपने को जिन्दा रखने की जद्दोजहद और जीवन-शक्ति, भीड़ में अपनी अलग पहचान बनाने की इच्छा और विकसित परिस्थितियों से जूझते हुए निरंतर संघर्ष करने की शक्ति को उजागर किया गया है। हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी अस्मिता के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है। यहाँ आदिवासी जीवन अपनी धड़कनों, जीवंतताओं और प्रामाणिकता के साथ विद्यमान है। यहाँ ऐसे जनजीवन का चित्रण है जो शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के आलोक वृत्त से बाहर है। यह हाशिए पर ठिठका खड़ा वह विराट जनजीवन है जो शास्त्र अथवा सिद्धान्त से नहीं अपितु अपने विश्वासों, संस्कारों और रीतिरिवाजों से संचालित होता है। उससे रस ग्रहण करता है और उन्हीं संस्कारों एवं रीति रिवाजों के प्रकाश में अपने जीवन मूल्यों तथा अस्मिता को परिभाषित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कब तक पुकारूं, रांगेय राघव, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2014, पृ. 47
2. वही, पृ. 107
3. सागर लहरें और मनुष्य, उदय शंकर भट्ट, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 2004, पृ. 91
4. वही, पृ. 146
5. कचनार, वश्न्दावन लाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 28
6. शैलूष, शिव प्रसाद सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1996, पृ. 129
7. सूरज किरन की छांव, राजेन्द्र अवस्थी, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ. 17
8. वही, पृ. 17
9. जहाँ बाँस फूलते हैं, प्रकाश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, 2012, प्रयागराज, पृ. 289
10. धार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 165
11. बाजत अनहद ढोल, मधुकर सिंह, वाणी प्रकाशन, प्रयागराज, 2023, पृ. 6
12. 'पठार पर कोहरा' राकेश कुमार सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005, पृ. 125

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारत में न्यायिक सक्रियता के उपकरण के रूप में लोकहितवाद : एक समीक्षा

अतुल कुमार सिंह
शोध छात्र (विधि)
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
E-Mail-atulsinghbhu19@gmail.com
Mob. No. +91-7054990191

सारांश

आजादी के उपरान्त देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिदृश्य में व्यापक परिवर्तन आए है। राज्य की भूमिका एक पुलिस राज्य से एक लोक कल्याणकारी राज्य के रूप में परिणत हुई है, अतः इन परिवर्तनों से हमारी न्यायपालिका भी अछुति नहीं रही। आज न्यायपालिका सिर्फ न्याय प्रदान करने का कार्य नहीं कर रही है, बल्कि एक प्रशासक, सुधारक और निति निर्धारक की भूमिका भी अदा कर रही है। दरअसल, आज की परिस्थितियों में न्यायपालिका को ऐसे भी कार्य करने पड़ रहे हैं, जो मूलरूप से कार्यपालिका और विधायिका के दायित्व क्षेत्र में आते हैं। ऐसी स्थिति को जबकि न्यायपालिका द्वारा अन्य दो घटकों की शान्तियों का प्रयोग किया जाता है, तो इसे न्यायिक सक्रियता कहते हैं।[1] मोटे तौर पर 1970 के दशक से न्यायपालिका का यह पक्ष देखने को मिलता है। इस दौरान जनहित याचिका और स्वतः संज्ञान उपकरणों का प्रयोग कर न्यायपालिका ने संविधान की बुनियादी संरचना, अनुच्छेद 21 के विस्तार, कैदियों के मानवाधिकार तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे मुद्दों पर कई अहम फैसले सुनाये हैं। हाल ही में ज़ारता (धारा 497 भा0द0सं.) को असंवैधानिक घोषित करने का मामला हो[2] या सबरी माला प्रकरण में किसी भी उम्र के महिलाओं को प्रवेश देने का मामला[3] या फिर कोविड 19 महामारी के दौरान मुक्त चिकित्सकीय परीक्षण[4], महामारी में मृत लोगों का गरिमा पूर्वक दाह संस्कार[5], प्रवासी श्रमिकों को सुविधा प्रदान करने का निर्देश[6]। इन सभी मामलो में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की सक्रियता परिलक्षित होती है, जिसमें माननीय न्यायालय ने जनहित याचिका और स्वतः संज्ञान उपकरणों का प्रयोग किया है।

प्रस्तावना

लोकहितवाद भारतीय संविधान में अन्तर्निहित स्वतंत्रता, समानता और न्याय के आदर्शों से अभिप्रेत एवं आधुनिक अवधारणा है, जिसे 1970 के दशक के उत्तरार्ध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक संक्रियावाद के एक उपकरण के रूप में विकसित किया गया। संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता और समानता के आदर्शों को प्रतिपादित किया गया है।[7] संविधान के भाग 3 में ''मूल अधिकारों'' एवं भाग 4 में ''नीति निदेशक तत्वों'' के रूप में इन्हे समाहित किया गया है।

भारतीय संविधान में जहाँ इन अधिकारों का विशद उल्लेख किया गया है। वहीं इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उपचारों

का भी समावेश किया गया है। भारतीय संविधान नागरिकों को संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय[8] एवं उच्च न्यायालयों[9] में समुचित कार्यवाही द्वारा प्रचलित कराने के अधिकर की भी गारंटी देता है। इस प्रकार नागरिकों के मूल अधिकारों के रक्षण और संविधान में निहित आदर्शों को प्रवृत्त कराने में न्यायपालिका का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस कारण न्याय पालिका को नागरिकों के मूल अधिकारों का सजग प्रहरी भी कहा जाता है।

हालांकि हमारी परम्परागत् न्याय व्यवस्था इस दृष्टिकोण पर आधारित थी कि वह व्यक्ति जो स्वयं अपने सांविधानिक विधिक अधिकारों के अतिक्रमण से पीड़ित नहीं है। वह उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन प्रस्तुत करने के निमित्त वैध स्थिति में नहीं होता है। इस कारण प्रायः बहुत से मामले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत ही नहीं हो पाते थे। इस प्रकार यह व्यवस्था परोक्ष रूप से विधि के इस सिद्धान्त की ''जहाँ अधिकार है वहा उपचार है'' का अतिक्रमण करती थी। इस कमी को दूर करने के लिए न्यायपालिका ने सुने जाने (प्रास्थिति के नियम) को उदार बनाते हुए जनसाधारण को लोकहित के प्रकरणों में न्याय दिलाने के लिए मुकदमों में व्यक्तिगत् हित के अनिवार्यता को समाप्त कर दिया ताकि कोई भी जनहित में रूचि रखने वाला व्यक्ति या संगठन किसी सार्वजनिक समस्या के निवारणार्थ न्यायालय के समक्ष लोकहित में याचिका दायर कर सके।[10]

भारतीय संदर्भ में यदि लोकहितवाद के उद्‌भव एवं विकास पर प्रकाश डाला जाए तो यह कहा जा सकता है कि भारत में लोकहितवाद से सम्बन्धित प्रथम मामला जिसमें लोकहितवाद की अवधारणा का बीज बोया गया जस्टिस कृष्णा अय्यर जी द्वारा सन् 1976 में दिया गया बम्बई कामगार सभा बनाम अब्दुल भाई[11] का वाद था। इसमें माननीय न्यायालय द्वारा यह सम्प्रेषण दिया गया कि एक पंजीकृत कर्मचारी संघ भी लोक शिकायतों के निवारण हेतु अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत रिट याचिका दायर कर सकता है।

भारत में लोकहितवाद का प्रथम मामला, दिसम्बर, 1979 में अधिवक्ता कपिला हिगोरानी द्वारा दायर किया गया बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट था, जिसे भारतीय विधिक इतिहास में हुस्नआरा खातुन बनाम बिहार राज्य[12] के नाम से जाना जाता है। जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा त्वरित न्याय को एक मूल अधिकार के रूप में स्थापित किया गया। इस वाद का त्वरित प्रभाव यह हुआ कि बिहार के 65 जेलों में बन्द लगभग 22000 विचाराधीन कैदियों को रिहा किया गया।[13] इसमें अधिकांश कैदी 10 वर्षो से अधिक समय से विचारण की प्रतिक्षा में कारागारों में निरूद्ध थे, जबकि उनके अपराध के लिए दिये जाने वाली दण्ड की अधिकतम सीमा इससे बहुत कम थी।

न्यायपालिका द्वारा इस कड़ी में पिछले 4 दशकों में सामाजिक आर्थिक न्याय की अवधारणा को साकार रूप देने के लिए कई महत्वपूर्ण निर्णय दिये गये हैं। इसके लिए न्यायालयों ने नई प्रक्रियाओं और नवीन न्यायिक तकनीकों का अवलम्बन लिया है।[14] जिसे सामान्यतया न्यायिक सक्रियता के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

भारतीय उच्चतम न्यायालय की यह सक्रियता गीता की सुक्ति ''योग कर्मसु कौशलम''[15] को चरितार्थ करती है। न्यायमुर्ति कृष्ण अय्यर के शब्दों में ''पीड़ित और व्यथित व्यक्ति के ही न्यायालय में जा सकने की संकुचित धारणा अब समाप्त कर दी गयी है। इसका स्थान अब वर्ग कार्यवाही, लोकहितवाद, प्रतिनिधिवाद ने ले लिया है। अब कोई भी व्यक्ति जो किसी सार्वजनिक हित से जुड़ा है, ऐसे हितों की सुरक्षा के लिए न्यायालय में जा सकता है।

न्यायिक सक्रियता का अर्थ

न्यायिक सक्रियता का आशय नागरिकों के अधिकारों के संरक्षण के लिए तथा समाज में न्याय को बढ़ावा देने के लिए न्यायपालिका द्वारा आगे बढ़कर भूमिका लेने से है। दूसरे शब्दों में न्यायिक सक्रियता का अर्थ है ''न्यायपालिका द्वारा सरकार के दो अंगो (विधायिका एवं कार्यपालिका) को अपने संवैधानिक दायित्वों के पालन के लिए बाध्य करना है।''

ब्लैक के लॉ डिक्शनरी के अनुसार न्यायिक सक्रियता न्यायिक शक्ति के उपयोग का एक तरीका है, जो कि न्यायाध ीश को प्रेरित करता है कि व्यवहरत सख्त न्यायिक प्रक्रियाओं एवं पूर्व नियमों को प्रगतिशील एवं नयी सामाजिक नीतियों

के पक्ष में त्याग दे। इसमें ऐसे निर्णय देखने में आते हैं, जिसमें सामाजिक अभियंत्रण अथवा इंजीनियरिंग होता है, अनेक अवसरों पर विधायिका एवं कार्यपालिका सम्बन्धित मामलों में दखलअन्दाजी भी होती है।[16]

मेरियस वेल्सटर्स डिक्शनरी ऑफ लॉ के अनुसार न्यायिक सक्रियता न्यायपालिका का वह चलन है, जिसमें व्यक्ति के अधिकारों को ऐसे निर्णयों द्वारा संरक्षित या विस्तारित किया जाता है, जो कि पूर्व नियमों या परिपाटियों से अलग हटकर होते है अथवा वांछित या करणीय संवैधानिक या विधायी इरादे से स्वतंत्र या उसके विरुद्ध हो।[17]

भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री पी.एन. भगवती ने न्यायिक सक्रियता पर अपना मत अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि ''जिन व्यवस्थाओं में न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार है उसमें न्यायिक सक्रियता होगी ही लेकिन अन्तर यह है कि न्यायिक सक्रियता कही तकनीकी स्तर की होती है और कही सामाजिक सक्रियता के रूप में एवं परिवर्तन के दौर में न्यायिक सक्रियता का सामाजिक सक्रियता के रूप में रूपान्तरित होना स्वाभाविक है।

लोकहितवाद का अर्थ एवं अवधारणा

यदि लोकहितवाद का सन्धि विग्रह करे तो यह दो शब्दों से मिलकर बना है लोकहित + वाद। लोकहित शब्द का निर्वचन करते हुए शौकत हुसैन बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली)[18] के वाद में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि-''लोकहित से तात्पर्य जन सामान्य के लिए लाभकारी कृत्य से है अथवा लोक उद्देश्य के लिए की जाने वाली कार्यवाही से है। लोकहित की आवश्यकताएं मामले के परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।''

आर बनाम फोर्डषायर[19] के वाद में ब्रिटेन के न्यायाधिपति केम्बेल ने न्याय के सन्दर्भ में लोकहित की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए अभिकथन किया कि-''लोकहित से आषय सामान्यहित से है। ये जिज्ञासा मात्र को सन्तुष्ट करने वाला हित न होकर समुदाय या समाज से जुड़े ऐसे हित होते है, जिनके द्वारा जन सामान्य के विधिक अधिकार एवं दायित्व प्रभावित होते हैं।[20]

वाद जैसा की सर्वविदित है कि ''मुकदमा'' या ''वाद'' से तात्पर्य ऐसी विधिक कार्यवाही से है, जो न्यायालय में संस्थित की जाती है और जिसका उद्देश्य किसी वैधानिक अधिकार या उपचार को प्रभावी बनाना होता है।

जनता दल बनाम एच.एस. चौधरी[21] के मुकदमें में माननीय न्यायालय ने ''लोकहितवाद'' शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है-लोकहित के मुकदमें में वे समस्त न्यायालयी कार्यवाहियाँ आती है, जो किसी विधिक अधिकार को प्रवर्तित कराने या उपचार हेतु लायी जाती है ताकि किसी समुदाय या जन साधारण के हितों को संरक्षित या प्रवर्तित कराया जा सके।

मूलरूप से लोकहितवाद की उत्पत्ति अमेरिका में हुई। जहाँ 20वीं सदी के छठे दशक में लोगों के अप्रतिनिधित वादों के लिये लोकहित विधि का शुभारम्भ हुआ। अमेरिका में लोकहितवाद मामलों की सफलता को देखते हुए भारत के न्यायविदों ने भी इसे अपने देश में अपनाने का प्रयास किया। निःसन्देह भारत में लोकहितवादो को विकसित करने का वास्तविक श्रेय समाजसेवीयों या संस्थानो को न देकर हमारे न्यायाधीशों के न्यायिक सक्रियता को ही दिया जाना चाहिए। जिन्होने समाचार पत्रो में प्रकाशित समाचारो एवं डाक के द्वारा भेजे गए पत्र मात्र को ही याचिका मानकर उस पर सुनवाई की एवं उपचार प्रदान किया। यही से सुने जाने के अधिकार ''लोकस स्टेंडी'' के नियम से हटकर एक नवीन न्यायिक तकनीक का सूत्रपात हुआ जिसे लोकहितवादों का श्रीगणेश माना जाना चाहिए। हालांकि अमेरिका की तरह भारत में इन मामलों का नितिगत होना आवश्यक नहीं है। जनसेवा की भावना रखने वाला कोई भी व्यक्ति या संगठन जनहित से सम्बन्धित किसी मामले में वर्ग विशेष की ओर से याचिका दायर कर सकता है।[22]

भारत में न्यायिक सक्रियता के साधन के रूप में लोकहितवाद

एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका आवश्यक है। न्यायपालिका न केवल संविधान की व्याख्या समय समय पर करती है बल्कि वह मानवाधिकारों तथा जन कल्याणकारी नीतियों के क्रियान्वयन में भी महत्वपूर्ण भूमिका

निभाती है। भारत में न्यायपालिका को संविधान का संरक्षक माना जाता है और इसे न्यायिक समीक्षा का भी अधिकार प्राप्त है। इसी न्यायिक समीक्षा का विस्तारित रूप भारतीय सन्दर्भ में न्यायिक सक्रियता के रूप में परिलक्षित होता है। भारत में न्यायिक सक्रियता का प्रारम्भ 1970 के दशक के उत्तरार्ध में माना जाता है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि भारत में न्यायिक सक्रियता का प्रारम्भ आपातकाल के प्रतिक्रिया स्वरूप हुई।

सन् 1978 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मेनका गांधी बनाम भारत संघ[23] के वाद में परम्परा से हटकर दिये गये निर्वचन ने न्यायिक सक्रियता का द्वार खोल दिया। मेनका गांधी के निर्णय के उपरान्त भारतीय न्यायपालिका की सक्रियता का एक नवीन अध्याय प्रारम्भ हुआ जिसमें मूल अधिकारों एवं राज्य के नीतिनिदेशक तत्वों का अन्तर्ग्रन्थन स्वीकार किया गया है और सांविधानिक निर्वचन के माध्यम से पुनर्लेखन का कार्य किया है। पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ[24] और बन्धुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ[25] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने विहित न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी की अदायगी को बलात् श्रम की संज्ञा दी है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस सम्बन्ध में अभिमत व्यक्त किया है कि बन्धुआ मजदूरों का पता लगाना और उन्हे मुक्त कराना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि बन्धुआ मजदूरी प्रणाली से मुक्त कराए गये मजदूरो की पुनर्वास की भी व्यवस्था करायी जानी चाहिए।

इसी प्रकार एशियाड प्रकरण[26] में उच्चतम न्यायालय ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, समान परिश्रमिक अधिनियम 1976, ठेका श्रम (विनियम और उत्सादन) अधिनियम 1970, अन्तर्राज्यिक प्रवासी श्रमिक (नियोजन का विनिमय एवं कार्य की शर्ते) अधिनियम 1979 आदि की उदार व्याख्या कर न्यूनतम मजदूरी को सुनिश्चित करने का आदेश दिया है।

उच्चतम न्यायालय ने जहाँ प्रास्थिती के पारम्परिक नियम का पुनर्लेखन करके लोकहितवाद की अवधारणा को साकार किया है वही जनहित याचिकाओं के माध्यम से उपचारों में भी कान्तिकारी परिवर्तन लाया है। उच्चतम न्यायालय ने रूदलशाह बनाम राज्य[27], पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम बिहार राज्य[28], पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम पुलिस आयुक्त, दिल्ली मुख्यालय[29], सहेली बनाम पुलिस आयुक्त[30], नीलवती बोहरा बनाम उड़ीसा राज्य[31], शीला बनाम पुलिस आयुक्त, दिल्ली[32] आदि अनेक मामलों में पीड़ित पक्षकार को प्रतिकर देने का आदेश दिया है।

न्यायिक सक्रियता के परिणाम स्वरूप ही कारागार सुधार में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो सका है। उच्चतम न्यायालय ने अपराधिक विधियों का निर्वचन अनुच्छेद 21 के सन्दर्भ में करते हुए न्यायिक सक्रियता का परिचय दिया है। एतद्द्वारा एकान्त परिरोध या कालकोठरी के विरूद्ध अधिकार[33] हथकड़ी या बेड़ी के विरूद्ध अधिकार[34], विधिक सहायता का अधिकार[35], पुलिस अभिरक्षा में हिंसा के विरूद्ध अधिकार आदि अधिकारों को मूल अधिकारों के रूप में सम्मिलित किया है। जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने लोकहितवाद का उपयोग न्यायिक सक्रियता के उपकरण के रूप में किया है।

न्यायिक सक्रियता का एक विशिष्ट उदाहरण पर्यावरण एवं परिस्थिकी के संरक्षण हेतु भी दिखता है, जिसमें माननीय न्यायालय ने लोकहितवादों के माध्यम से विभिन्न सिद्धान्तों का निर्माण किया है। जैसे- पोषणीय विकास का सिद्धान्त[36], प्रदूषण भुगतान करे का सिद्धान्त[37], पूर्व दायित्व का सिद्धान्त[38] एवं लोक न्यास का सिद्धान्त।[39]उपरोक्त मामलों में माननीय न्यायालय ने न्यायिक सक्रियता के द्वारा प्रशासनिक शुन्यता को भरकर कार्यपालिका और विधायिका को सक्रिय बनाने का कार्य किया है।

निष्कर्ष

उपरोक्त संदर्भो के आधार पर हम कह सकते हैं कि न्यायालय की सक्रियता ने राज्य के शेष संस्थाओं को न केवल अपने कर्तव्य के निर्वहन के लिए बाध्य किया हैं, बल्कि भ्रष्टाचारियों और कानून का उल्लंघन करने वालों को कटघरे में खड़ा कर दिया है। न्यायालय ने न्यायिक सक्रियता के द्वारा प्रशासनिक शून्यता को भरकर कार्यपालिका और विधायिका को सक्रिय बनाने का कार्य किया है। इस हेतु न्यायालय ने विभिन्न सिद्धांतों का निर्माण किया है। न्यायालय की सक्रियता वास्तव में प्रशंसनीय है। इससे यह प्रत्याशा उत्पन्न हुई है कि यदि न्यायालय इसी तरह सक्रिय रहा तो कुछ हद तक कार्यपालिका और

इसके अभिकरण अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने को बाध्य होंगे और विधि के शासन की स्थापना में उल्लेखनीय प्रगति होगी।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. फरहत खान, न्यायिक प्रक्रिया, अमर लॉ पब्लिकेशन, इन्दौर, प्रथम संस्करण, (2018), पृष्ठ 183
2. जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ, रिट याचिका सं. (अपराधिक) 194/2017
3. इण्डियन यंग लॉयर एसो. बनाम केरल राज्य, रिट याचिका सं. (सिविल) 373/208
4. शशांक देव सुधी बनाम भारत संघ, रिट याचिका सं. (सिविल) 10816/2020
5. इन री प्रापर ट्रिटमेंट ऑफ कोविड 19 पेशेन्ट्स एण्ड डिग्नीफाइड हैण्डलिंग आफ डेडबॉडी, स्वतः संज्ञान रिट याचिका सं. (सिविल) 17/2020
6. इन री प्राब्लम्स एण्ड मिसरीज ऑफ माइग्रेन्ट लेबर्स, स्वतः संज्ञान रिट याचिका सं. (सिविल) 6/2020
7. देखें, भारत का संविधान, 1950, उद्देशिका
8. भारत का संविधान, 1950, अनुच्छेद 32 (इस भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उपचार)
9. भारत का संविधान, 1950, अनुच्छेद 226 (कुछ रिट निकालने की उच्च न्यायालय की शक्ति)
10. डॉ. ना.वि. पराजये लोकहितवाद, विधिक सहायता एवं सेवाएं लोक अदालते तथा पैरा लीगल सेवाएं, सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, (2016), पेज-4
11. 1976, एस.सी.आर. (3), 591
12. 1979, एस.सी.आर. (3) 532
13. डॉ0 ना0वि0 पराजये, लोकहितवाद, विधिक सहायता एवं सेवाएं लोक अदालते तथा पैरा सेवाएं, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, (2016), पेज-113
14. जैसे-प्रास्थिति का उदारीकरण
15. श्रीमद्भगवत गीता, 2/5
16. एम. लक्ष्मीकान्त, भारत की राजव्यवस्था, मैक-ग्रो हिल एजूकेशन प्रा.लि., नई दिल्ली, पंचम संस्करण, (2015), 281
17. एम. लक्ष्मीकान्त, भारत की राजव्यवस्था, मैक-ग्रो हिल एजूकेशन प्रा.लि., नई दिल्ली, पंचम संस्करण, (2015), 281
18. 2008 क्रि0एल0जे0 3016 (एस0सी0)
19. (1855) 24 एल0जे0 क्यू0बी0 81 (84)
20. डा0 ना0वि0 पराजये; लोकहितवाद, विधिक सहायता एवं सेवाएँ, लोक अदालते तथा पैरा लीगल सेवाएँ, सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, (2016), पेज-4
21. ए0आई0आर0 1993 सु0को0 1892
22. एस0पी0 गुप्ता बनाम राष्ट्रपति एवं अन्य, ए0आई0आर. 1982 सु0को0 149
23. ए0आई0आर0 1978 सु0को0 597
24. (1982) एस0सी0सी0 235
25. ए0आई0आर0 1984 सु0को0 837
26. पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ, (1983)
27. (1983) 4 एस0सी0सी0 141
28. ए0आई0आर0 1987 सु0को0 355
29. (1989) 4 एस0सी0सी0 730
30. ए0आई0आर0 1990 सु0को0 519

31. (1993) 2 एस0सी0सी0 746
32. ए0आई0आर0 1990 सु0को0 516
33. सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1978) 4 एस0सी0 494
34. चार्ल्स शोभराज बनाम अधीक्षक केन्द्रीय कारागार (1978) 4 एस0सी0 104, प्रेमशंकर शुक्ला बनाम दिल्ली प्रशासन (1980) 3 एस0सी0सी0 526
35. एम0एच0 हासकार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1978) 3 एस0सी0सी0 544
36. नर्मदा बचाव आन्दोलन बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, (2000) 10 एस0सी0सी0 664
37. इण्डियन काउन्सिल फार इन्वायरो लीगल एक्शन बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया (1996) 3 एस0सी0सी0 212
38. एस0सी0 मेहता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, ए0आई0आर0 1987 एस0सी0 965
39. एम0सी0 मेहता बनाम कमलनाथ, (1997) 1 एस0सी0सी0 388

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

غبار خاطر اور مولانا آزاد کی انشا پردازی

ڈاکٹر ایم نظام الدین اسوسی ایٹ پروفیسر اردو
ایس آر آر اینڈ سی وی آر گورنمنٹ ڈگری کالج وجے واڑہ

Dr. M. Nizamuddin
Lecturer in Urdu SRR & CVR
Govt. Degree College (A), Vijayawada, AP

مولانا ابوالکلام آزاد بیسویں صدی کے ایک عظیم صحافی، سیاست داں اور نامور صاحب طرز انشاپرداز گذرے ہیں۔ انہوں نے روایتی طور پر کسی مدرسہ، کالج یا یونیورسٹی میں تعلیم حاصل نہیں کی۔ لیکن اپنے والدین اور اساتذہ کی تربیت اور ذاتی مطالعے سے ایسی استعداد پیدا کر لی تھی کہ وہ اردو ادب کے ایک منفرد انشاپرداز بنے۔ ان کی انشاپردازی کی جھلک ان کی تحریروں اور خاص طور سے ان کی مکتوب نگاری میں جھلکتی ہے۔ یہی وجہ ہے کہ حسرت موہانی نے ان کے بارے میں کہا تھا کہ

جب سے دیکھی ابوالکلام کی نثر نظم حسرت میں کچھ مزا نہ رہا

اسی طرح سجاد انصاری نے ان کے منفرد اسلوب نگارش کے بارے میں کہا تھا کہ ''اگر قرآن اردو میں نازل ہوتا تو اس کے لئے ابوالکلام کی نثر یا اقبال کی نظم منتخب کی جاتی۔

مولانا آزاد کا ایک اہم نثری کارنامہ ان کے مکاتیب پر مشتمل کتاب ''غبار خاطر'' ہے۔ غبار خاطر کہنے کو تو مولانا آزاد کے خطوط کا مجموعہ ہے لیکن اس کے طرز نگارش سے بعض لوگوں نے اسے مضامین کا دفتر کہا، کسی نے ان خطوط میں روزنامچہ کی خصوصیات تلاش کیں اور کسی نے اس میں خودکلامی یا خودنوشت نگاری کی خصوصیات پائیں۔ لیکن چونکہ خود صاحب تحریر مولانا آزاد نے انہیں خطوط قرار دیا تو یہ خط ہی کہلائیں گے چاہے ان میں اردو نثر کی کسی صنف کی کچھ خصوصیات پائی جائیں۔ تاہم غبار خاطر کے خطوط میں پائی جانے والی انشاپردازانہ صفات کو دیکھتے ہوئے یہ کہا جاسکتا ہے کہ یہ خطوط کم اور انشائیے زیادہ ہیں۔ انشائیہ کی تعریف میں بھی یہ بات ملتی ہے کہ کسی بھی موضوع پر ہلکے پھلکے انداز میں لکھی ہوئی تحریر انشائیہ کہلائے گی جس میں مصنف کے جذبات اور اس کے اسلوب نگارش کی جھلک دکھائی دے۔ اس لحاظ سے غبار خاطر کے خطوط اردو انشائیوں کے بہترین نمونے قرار پاتے ہیں۔

جیسا کہ یہ بات مشہور ہے کہ غبار خاطر میں وہ خطوط شامل ہیں جو مولانا آزاد نے احمد نگر جیل میں قید 10 اگست 1942 سے لے کر جون 1945ء کے دوران اپنے دوست نواب صدر یار جنگ مولانا حبیب الرحمٰن خان شیروانی رئیس بھیکم پور ضلع علی گڑھ کے نام لکھے تھے۔ مولانا آزاد اور حبیب الرحمٰن خان شیروانی کے درمیان چالیس سالہ رفاقت تھی۔ جو سیاسی نوعیت کی نہیں بلکہ دوستانہ نوعیت کی تھی۔ چونکہ احمد نگر جیل کا یہ قانون تھا کہ قیدی کی کوئی تحریر باہر نہ جائے چنانچہ مولانا کے لکھے ہوئے خطوط بھی جیل کے قانون کی رو سے ان کی قید کے ایام کے دوران باہر نہیں جاسکے۔ اس لئے ان کے لکھے ہوئے مکاتیب جو وقتاً فوقتاً لکھے گئے تھے وہ ایک فائل میں جمع ہوتے رہے۔ اور جب 15 جون 1945ء کو مولانا جیل سے رہا ہوئے تو ان کے یہ مکاتیب مکتوب الیہ تک پہونچ پائے۔ مولانا آزاد نے خود ان مکاتیب کے

مجموعے کا نام ''غبار خاطر'' رکھا وہ اس لئے کہ اس طرح کے یکطرفہ خطوط لکھ کر وہ اپنے دل کا غبار کم کرنا چاہتے تھے۔ مولانا ابوالکلام آزاد ایک عبقری شخصیت کے مالک تھے ہندوستان کی جدوجہد آزادی کے عظیم رہنما' الہلال اور البلاغ کے صحافی اور ایک جید عالم اور مقرر تھے۔ انگریزوں کو احساس تھا کہ ہندوستانیوں میں جدوجہد آزادی کی روح کو پروان چڑھانے میں مولانا آزاد جیسے رہنماؤں کا اہم کردار ہے تو انہوں نے اس وقت کے کئی سیاسی رہنماؤں اور صحافیوں کو جیل میں نظر بند کر دیا تھا۔ تا کہ جدوجہد آزادی کی تحریک کو کمزور کیا جائے لیکن یہ وہ رہنما تھے جن کی آزادی موج رواں تھی تو قید بھی انگریزوں کے لئے تازیانہ تھی۔ اس طرح کے لوگوں کو جب جیل میں نظر بند کیا جاتا ہے تو وہ مطالعہ اور تصنیف و تالیف کے کاموں میں مشغول ہو کر کچھ اہم کارنامے کرتے ہیں۔ چنانچہ مولانا آزاد نے مکتوب نگاری سے دل لگایا اور اپنے دوست کے نام یکطرفہ خطوط لکھنے شروع کئے۔ عمومی مکتوبات میں ایک دوسرے کے خیریت جانی جاتی ہے اور اپنے دور کے حالات لکھے جاتے ہیں۔ چونکہ مولانا آزاد کو خط کے دوران اپنی فکر کو پیش کرنا تھا اس لئے وہ جیسے ہی کوئی خط شروع کرتے فوری کسی موضوع پر فکر انگیز گفتگو کرنے لگتے۔ مولانا آزاد نے حبیب الرحمٰن خان شیروانی کے نام پہلا خط 10 اگست 1942ء کو لکھا اور آخری خط 16 ستمبر 1943ء کو لکھا۔ اس کے بعد اپنی شریک حیات کے انتقال کے غم میں انہوں نے اس انداز کے خطوط لکھنے بند کر دئے جس کا رنگ حبیب الرحمٰن خان شیروانی کے نام لکھے گئے خطوط میں ملتا ہے۔ بہر حال مولانا آزاد کی رہائی کے بعد ہی ان خطوط کی اشاعت کی راہ ہموار ہوئی۔ اور مولوی اجمل خان کی ایما پر ان خطوط کی جلد سے جلد کتابت اور اشاعت عمل میں آئی۔ مولوی اجمل خان کو مولانا سے خاص تعلق تھا اور انہوں نے مولانا سے اجازت لے لی تھی کہ ان کے مکتوبات کی نقول وہ رکھیں گے۔ جیل جانے سے قبل بھی وہ مولانا کے خطوط کو ڈاک میں ڈالنے سے قبل اس کی نقل تحریر کر لیتے تھے۔ چنانچہ مولانا آزاد کی جیل سے رہائی کے بعد بھی انہوں نے مولانا کے لکھے یہ خط حاصل کر لئے۔ مولوی اجمل خان کی عادت کے پیش نظر خود مولانا نے انہیں یہ خط حوالے کئے کہ حبیب الرحمٰن خان شیروانی مکتوب الیہ کو حوالے کرنے سے قبل یہ خطوط نقل کر لئے جائیں۔ مولوی اجمل خان ان خطوط کے مطالعے کے بعد حاصل کرنے والے تاثر کو بیان کرتے ہوئے لکھتے ہیں کہ:

'' رہائی کے بعد مولانا نے قلعہ احمد نگر کے مکاتیب میرے حوالے کئے کہ حسب معمول ان کی نقل رکھ لوں۔ اور اصل نواب صاحب کی خدمت میں بہ یک وقت بھیج دوں۔ لیکن میں نے جب ان کا مطالعہ کیا تو خیال ہوا کہ ان تحریرات کا محض نجی خطوط کی شکل میں رہنا اور شائع نہ ہونا اردو ادب کی بہت بڑی محرومی اور ارباب ذوق کی نا قابل تلافی حزمانی ہوگی۔ مولانا اس وقت شملہ میں تھے۔ بہ اصرار ان سے درخواست کی کہ ان مکاتیب کو ایک مجموعے کی شکل میں شائع کرنے کی اجازت دے دیں۔ مجھے یقین ہے کہ ملک کے تمام ارباب ذوق و نظر اس واقعے کے شکر گذار ہونگے کہ مولانا نے اشاعت کی اجازت دے دی اور اس طرح میں اس قابل ہو گیا کہ یہ مجموعہ دیدہ وران علم و ادب کی ضیافت ذوق کے لئے پیش کروں۔ (مولوی اجمل خان۔ مرتب غبار خاطر۔ بار اول ۱۹۴۶ء۔ لاہور۔ ص ۱۳)

ان خطوط میں مولانا حبیب الرحمٰن خان شیروانی کے نام لکھے گئے کل بیس خط ہیں۔ بیشتر خطوط میں صدیق مکرم کہتے ہوئے مولانا آزاد نے متکوب الیہ کو مخاطب کیا ہے۔ چونکہ مولانا آزاد کو معلوم تھا کہ یہ خطوط فوری مکتوب الیہ تک نہیں پہونچ پائیں گے اس لئے ان میں مضمون اور انشائیہ کا رنگ غالب آ گیا۔ مولانا چونکہ باہر کی زندگی سے کٹ گئے تھے اس لئے ان خطوط میں اس دور کے حالات کی جھلک بھی

نہیں ملتی اور چونکہ خط کے جواب میں خط ملے تو موضوعات میں تنوع ہوتا ہے ایسا ان خطوط میں کچھ نہیں ہے۔اور صرف مولانا آزاد کی انشا پردازی ہی اپنا جوہر دکھاتی رہی۔مولانا آزاد نے جب تمام خطوط دیکھے تو جیل سے رہائی کے بعد ان کی اشاعت کی فکر کی اور بہت جلد یہ خطوط اپنے انشاپردازانہ رنگ کے سبب مقبول بھی ہو گئے۔

غبار خاطر میں مولانا آزاد نے تقریباً دو درجن شعرا کے ایک سو دس شعر اور مصرے استعمال کئے۔جن میں غالب کے سب سے زیادہ اشعار ہیں۔ان خطوط میں مولانا آزاد نے تاریخ نگاری بھی کی اور قلعہ احمد نگر کی تاریخ اور صلیبی جنگوں کے احوال بھی بیان کئے۔چائے نوشی اور موسیقی کے بارے میں بھی تفصیلی باتیں ان خطوط کا حصہ ہیں۔مولانا آزاد کا جس قدر گہرا مطالعہ تھا اسی قدر اشارے ان مکاتیب کی انشائیہ نما تحریروں میں پائے جاتے ہیں۔یہ خطوط مولانا آزاد کے وسیع تر مطالعے ان کی فکر اور ان کے مخصوص طرز نگارش کا نچوڑ ہیں۔غبار خاطر کے ابتدائی خطوط میں مولانا کو جیل لانے کے سفر کا حال اور احمد نگر کی تاریخ اور جیل کے ماحول کے ذکر کیا گیا ہے۔بعد کے خطوط میں مولانا کی انشاپردازانہ تحریریں ہیں۔جس میں انہوں نے زندگی سے متعلق مختلف موضوعات پر اظہار خیال کیا ہے۔

۱۱اگسٹ۱۹۴۲کو لکھے مکتوب میں آزاد لکھتے ہیں:

''صدیق مکرم۔قید و بند کی زندگی کا یہ چھٹا تجربہ ہے۔۔پچھلی پانچ گرفتاریوں کی اگر مجموعی مدت شمار کی جائے تو سات برس آٹھ مہینے سے زیادہ نہیں ہوگی۔عمر کے ترپن برس جو گذر چکے ہیں۔ان سے یہ مدت وضع کرتا ہوں تو ساتویں حصے کے قریب پڑتی ہے۔گویا زندگی کے ہر سات دن میں ایک دن قید خانے کے اندر گزرا۔تورات کے احکام عشرہ میں ایک حکم سبت لئے بھی تھا۔یعنی ہفتہ کا ساتواں دن تعطیل کا مقدس دن سمجھا جائے۔میسیحیت اور اسلام نے بھی یہ تعطیل قائم رکھی۔سو ہمارے حصہ میں بھی سبت کا دن آیا مگر ہماری تعطیلیں اس طرح بسر ہوئیں۔۔۔زندگی میں جتنے جرم کئے اور ان سزائیں پائیں سوچتا ہوں تو ان سے کہیں زیادہ تعداد ان جرموں کی تھی جو نہ کر سکے اور جن کے کرنے کی حسرت دل میں رہ گئی۔یہاں کردہ جرموں کی سزائیں تو مل جاتی ہیں لیکن ناکردہ جرموں کی حسرتوں کا صلہ کس سے مانگیں''

(غبار خاطر۔از مولانا ابوالکلام آزاد۔طبع اول۔آزاد ہند پبلیکیشنز لاہور۔ص۵۸۔۶۰)اپنے اسی مکتوب میں مولانا آزاد نے فلسفہ 'سائنس اور مذہب سے متعلق اپنے خیالات کا اظہار کیا ہے۔آزاد لکھتے ہیں:

''فلسفہ شک کا دروازہ کھول دے گا۔اور پھر اسے بند نہیں کر سکے گا۔سائنس ثبوت دے گا مگر عقیدہ نہیں دے سکے گا۔لیکن مذہب ہمیں عقیدہ دیتا ہے اگر چہ ثبوت نہیں دیتا۔اور یہاں زندگی بسر کرنے کے لئے صرف ثابت شدہ حقیقتوں ہی کی ضرورت نہیں ہے بلکہ عقیدہ بھی ضروری ہے ہم صرف ان ہی باتوں پر قناعت نہیں کر لے سکتے جنہیں ثابت کر سکتے ہیں اور اس لئے مان لیتے ہیں ہمیں کچھ باتیں ایسی بھی چاہئیں جنہیں ثابت نہیں کر سکتے لیکن مان لینا پڑتا ہے''۔(غبار خاطر۔ص۔۶۳)

زندگی سے متعلق فلسفے کو مولانا نے اپنے مکاتیب میں تفصیل سے بیان کیا ہے اور اس میں اپنی انشاپردازی کے رنگ دکھائے ہیں۔اپنے اسی مکتوب میں مولانا آزاد رقم طراز ہیں۔

''جن باتوں کو ہم زندگی کی راحتوں اور لذتوں سے تعبیر کرتے ہیں وہ ہمارے لئے راحتیں اور لذتیں ہی کب رہیں گی اگر ان تقاضوں اور مقصدوں سے منہ موڑ لیں۔ بلاشبہ یہاں زندگی کا بوجھ اٹھا کے کانٹوں کے فرش پر دوڑ نا پڑا لیکن اس لئے دوڑ نا پڑا کہ دیبا و مخمل کے کے فرش پر چل کر ان تقاضوں کا جواب دیا نہیں جا سکتا تھا۔ کانٹے کبھی دامن سے الجھیں گے۔ کبھی تلووں میں چبھیں گے لیکن مقصد کی خلش جو پہلوئے دل میں چبھتی رہے گی نہ دامن تار تار کی خبر لینے دے گی نہ زخمی تلووں کی۔ اور پھر زندگی کی جن حالتوں کو ہم راحت والم سے تعبیر کرتے ہیں ان کی حقیقت بھی اس سے زیادہ کیا ہوئی کہ اضافت کے کرشموں کی ایک صورت گری ہے۔ یہاں مطلق راحت ہے نہ مطلق الم۔ ہمارے تمام احساسات سرتا سر اضافی ہیں۔ اضافتیں بدلتے جاؤ راحت والم کی نوعیتیں بھی بدلتی جائیں گی۔۔۔ راحت والم کا احساس ہمیں باہر سے لا کر کوئی نہیں دے سکتا۔ یہ خود ہمارا ہی احساس ہے جو کبھی زخم لگا تا ہے کبھی مرہم بن جاتا ہے۔ طلب وسعی کی زندگی بجائے خود زندگی کی سب سے بڑی لذت ہے۔ بشرطیکہ کسی مطلوب کی راہ میں ہو۔۔ زندگی بغیر کسی مقصد کے بسر نہیں کا جا سکتی کوئی لگاؤ کوئی بندھن ہونا چاہئے جس کی خاطر زندگی کے دن کاٹے جا سکیں۔۔۔ یکسانی اگر چہ سکون و راحت کی ہو یکسانی ہوئی۔ اور یکسانی بجائے خود زندگی کی سب سے بڑی بے نمکی ہے۔ تبدیلی اگر چہ سکون سے اضطراب کی ہو مگر پھر تبدیلی ہے۔ اور تبدیلی بجائے خود زندگی کی ایک بڑی لذت ہوئی۔ یہاں زندگی کا مزہ بھی ان ہی کو مل سکتا ہے جو اس کی شیرینوں کے ساتھ اس کی تلخیوں کے بھی گھونٹ لیتے رہتے ہیں اور اس طرح زندگی کا ذائقہ بدلتے رہتے ہیں۔ ورنہ وہ زندگی ہی کیا جو ایک ہی طرح کی صبحوں اور ایک ہی طرح کی شاموں میں بسر ہوتی ہے۔ یہاں پانے کا مزہ ان ہی کو مل سکتا ہے جو کھونا جانتے ہیں جنہوں نے کچھ کھویا ہی نہیں انہیں کیا معلوم کہ پانے کے معنی کیا ہوتے ہیں۔ (غبار خاطر۔ص۔۶۹۔۷۲)

۱۵۔ اگست ۱۹۴۲ کو لکھے گئے مکتوب میں مولانا آزاد نے قلعہ احمد نگر کی جیل میں اپنے شب و روز کا حال بیان کیا ہے۔ جس میں صبح جلد بیدار ہونے کی تعلق سے فکر انگیز باتیں کہیں ہیں۔ مولانا آزاد لکھتے ہیں:

''وہی صبح چار بجے کا جانفزا وقت ہے صراحی لبریز ہے اور جام آمادہ۔ ایک دور ختم کر چکا ہوں۔ دوسرے کے لئے ہاتھ بڑھاتا ہوں۔۔۔ صبح کا جانفزا وقت ہو اور چینی کی بہرین چائے کے پے در پے فنجان۔ آج تین بجے سے کچھ پہلے آنکھ کھل گئی تھی۔ صحن میں نکلا تو ہر طرف سناٹا تھا صرف احاطہ کے باہر سے پہرہ دار کی گشت و بازگشت کی آوازیں آرہی تھیں۔۔۔ سوچتا ہوں تو زندگی کی بہت سی باتوں کی طرح اس معاملہ میں ساری دنیا سے الٹی چال میرے حصے میں آئی۔ دنیا کے لئے سونے کا وقت جو سب سے بہتر ہوا وہی میرے لئے بیداری کی اصلی پونجی ہوئی۔ لوگ ان گھڑیوں کو اس لئے عزیز رکھتے ہیں کہ میٹھی نیند کے مزے لیں۔ میں اس لئے عزیز رکھتا ہوں کہ تلخ کامیوں سے لذت یاب ہوتا رہوں۔ ایک بڑا فائدہ اس عادت سے یہ ہوا کہ میری تنہائی میں اب کوئی خلل نہیں ڈال سکتا میں نے دنیا کو ایس جراتوں کا سرے سے موقعہ ہیں نہیں دیا جب وہ جاگتی ہے تو میں سوتا ہوں اور جب سو جاتی ہے تو میں اٹھتا ہوں۔۔۔ ایک بڑا فائدہ اس سے یہ ہوا کہ دل کی انگیٹھی ہمیشہ گرم رہنے لگی۔ صبح کی اس صفت میں تھوڑی سی آگ جو سلگ جاتی ہے اس کی چنگاریاں بجھنے نہیں پاتیں۔ راکھ کے تلے دبی دبائی کام کرتی رہتی ہیں۔۔۔ اس سحر خیزی کی عادت کے لئے والد مرحوم کا منت گزار ہوں۔ ان کا معمول تھا کہ رات کی پچھی پہر ہمیشہ

بیداری میں بسر کرتے۔ بیماری کی حالت میں بھی اس معمول میں فرق نہیں ڈال سکتی تھی۔ فرمایا کرتے تھے کہ رات کو جلد سونا اور صبح جلد اٹھنا زندگی کی سعادت کی پہلی علامت ہے۔۔۔ میری ابھی دس گیارہ برس کی عمر ہوگی یہ باتیں کام کر گئی تھیں۔ بچپنے کی نیند سر پر سوار رہتی تھی مگر میں اس سے لڑتا رہتا تھا۔ صبح اندھیرے میں اٹھتا اور شمع روشن کر کے اپنا سبق یاد کرتا۔ (غبار خاطر۔ ص۔۷۶۔۷۸)

مولانا آزاد کو جس طرح صبح اٹھنے کی عادت تھی اسی طرح چائے پینے کی بھی بہت زیادہ عادت تھی۔ جیل میں انہیں سلیقے سے چائے بنا کر دینے والا کوئی نہ تھا اس لئے مولانا آزاد خود اپنے ہاتھ سے چائے بناتے اور پے در پے چائے پیتے۔ اپنے ایک خط میں انہوں نے اپنی چائے نوشی کی عادت پر تفصیل سے روشنی ڈالی ہے مولانا آزاد لکھتے ہیں:

''آپ کو معلوم ہے میں ہمیشہ صبح تین سے چار بجے کے اندر اٹھتا ہوں اور چائے کے پے ہم فنجانوں سے جام صبوحی کا کام لیا کرتا ہوں۔ یہ وقت ہمیشہ میرے اوقات زندگی کا سب سے زیادہ پر کیف وقت ہوتا ہے۔ لیکن قید خانے کی زندگی میں تو اس کی سرمستیاں اور خود فراموشیاں ایک دوسرا ہی عالم پیدا کر دیتی ہیں۔ یہاں کوئی آدمی ایسا نہیں ہوتا جو اس وقت خواب آلود آنکھیں لئے ہوئے اٹھے اور قرینہ سے چائے بنا کر میرے سامنے دھرے۔ اس لئے خود اپنے دست شوق کی سرگرمیوں سے کام لینا پڑتا ہے۔ میں اس وقت بادہ کہن کے شیشہ کی جگہ چینی چائے کا تازہ ڈبہ کھولتا ہوا اور ایک ماہر فن کی دقیقہ سنجیوں کے ساتھ چائے دم دیتا ہوں پھر جام وصراحی کو میز پر دہنی طرف جگہ دوں گا اس کی اولیت اسی کی مستحق ہوئی قلم کاغذ کو بائیں طرف رکھوں گا کہ سرو دسامان کار میں ان کہ جگہ دوسری ہوئی۔ پھر کرسی پر بیٹھ جاؤں گا اور کچھ نہ پوچھئے کہ بیٹھتے ہی کس عالم میں پہونچ جاؤں گا کہ کسی بادہ گسار نے شامپین اور بورڈ کے تہہ خانوں کے عرق کہن سال میں بھی وہ کیف وسرور کہاں پایا ہوگا جو جائے کہ اس دور صبح گاہی کا ہر گھونٹ میرے لئے مہیا کرتا ہے۔ (غبار خاطر۔ ص۔۱۰۱۔۱۰۲) مولانا آزاد کو اندازہ تھا کہ چائے پینے کے بعد انسان تازہ دم ہو جاتا ہے اور ایک شاعر کی طرح ایک ادیب کے قلم سے بھی نئے نئے خیالات ظاہر ہونا شروع ہو جاتے ہیں۔ چنانچہ مولانا صبح اپنے معمولات سے فارغ ہو کر لکھنے بیٹھ جاتے تھے اور ایک مفکر کی طرح فلسفیانہ باتیں لکھنے لگتے۔ اپنی چائے نوشی کے ذکر کے بعد ایک مرتبہ پھر مولانا آزاد نے زندگی سے متعلق فلسفہ ان الفاظ میں بیان کیا ہے:

''لوگ ہمیشہ اس کھوج میں لگے رہتے ہیں کہ زندگی کو بڑے بڑے کاموں کے لئے کام میں لائیں۔ لیکن نہیں جانتے کہ یہاں ایک سب سے بڑا کام خود زندگی ہوئی۔ یعنی زندگی کو ہنسی خوشی کاٹ دینا۔ یہاں اس سے زیادہ سہل کام کوئی نہ ہوا کہ مرجایئے اور اس سے زیادہ مشکل کام کوئی نہ ہوا کہ زندہ رہیئے۔ جس نے یہ مشکل حل کر لی اس نے زندگی کا سب سے بڑا کام انجام دے دیا (غبار خاطر۔ ص ۱۰۲)

۵۔ دسمبر ۱۹۴۲ کو لکھے گئے ایک مکتوب میں مولانا آزاد نے مسلمانوں کی حالت پر مفکرانہ خیالات بیان کئے ہیں اور دوران خط حضرت رابعہ بصری کا ایک واقعہ نقل کیا ہے کہ۔'' رابعہ بصری پہلے طبقہ کی صوفیہ میں شمار کی گئی ہیں۔ دوسری صدی ہجری یعنی آٹھویں صدی مسیحی میں ان کا انتقال ہو۔ ان کے حالات میں لکھا ہے ایک دن اس عالم میں گھر سے نکلیں کہ ایک ہاتھ میں آگ کا برتن تھا دوسرے میں پانی کا کوزہ تھا۔ لوگوں نے پوچھا کہ کہاں جارہی ہو جواب دیا کہ آگ سے جنت کو جلا دینا چاہتی ہوں۔ پانی سے دوزخ کی آگ بجھا دینا چاہتی ہوں تا کہ دونوں ختم ہو جائیں اور پھر لوگ خدا کی عبادت صرف خدا کیلئے کریں جنت اور دوزخ کی طمع اور خوف سے نہ کریں۔ (غبار

خاطر۔ص۔۱۶۹)

۱۷۔ دسمبر۱۹۴۲۔کو لکھے گئے مکتوب میں مولانا آزاد نے چائے اور چائے کی اقسام کے بارے میں دلچسپ معلومات پیش کی ہیں۔مولانا آزاد لکھتے ہیں:

''چائے چین کی پیداوار ہے۔اور چینیوں کی تصریح کے مطابق پندرہ سو برس سے استعمال کی جارہی ہے لیکن وہاں کبھی کسی کے خواب و خیال میں بھی یہ بات نہیں گذری کہ اس جوہر لطیف کو دودھ کی کثافت سے آلودہ کیا جاسکتا ہے۔جن ملکوں میں چین سے براہ راست گئی مثلاً روس۔ترکستان۔ایران وہاں بھی کسی کو خیال نہیں گذرا۔مگر سترھویں صدی میں جب انگریز اس سے آشنا ہوئے تو نہیں معلوم ان لوگوں کو کیا سوجھی کہ انہوں نے دودھ ملانے کی بدعت ایجاد کی۔اور چونکہ ہندوستان میں چائے کا رواج انہیں کے ذریعے ہوا اس لئے یہ بدعت سیہ یہاں بھی پھیل گئی۔رفتہ رفتہ معاملہ یہاں تک پہونچ گیا کہ لوگ چائے میں دودھ ڈالنے کی جگہ دودھ میں چائے ڈالنے لگے۔۔لوگ چائے کی جگہ ایک سیال حلوا بناتے ہیں کھانے کی جگہ پیتے ہیں۔(غبار خاطر۔ص۔۱۹۱)

مولانا کی قید کے دوران ہی ان کی اہلیہ کا علالت کے باعث انتقال ہوگیا تھا۔مولانا نے انگریزوں سے جیل کی رہائی کی اپیل نہیں کی۔لیکن اہلیہ کی وفات کے واقعے نے ان کے دل پر گہری چوٹ کی اور وہ غم میں ڈوب گئے۔ان ہی ایام میں لکھے گئے ایک مکتوب میں وہ انسان کے طرز فکر کے بارے کہتے ہیں:

''میں سوچنے لگا ہوں کہ انسان کے دل کی سرزمین کا بھی یہی حال ہے اس باغ میں بھی امید وطلب کے بے شمار درخت اگتے ہیں اور بہار کی آمد آمد کی راہ تکتے رہتے ہیں لیکن جن ٹہنیوں کی جڑ کٹ گئی ان کے لئے بہار و خزاں کی تبدیلیاں کوئی اثر نہیں رکھتیں۔کوئی موسم بھی انہیں شادابی کا پیام نہیں پہونچا سکتا۔(غبار خاطر۔ص۔۲۰۴)

غبار خاطر کے دیگر مکتوبات میں مولانا آزاد نے فطرت کے نظاروں سے اپنی دلچسپی' جیل میں پودوں کی کیاریوں کی دیکھ بھال' دنیا کے تاریخی واقعات' ہندوستان کی سیاست' مسلمانوں کے مسائل' صلیبی جنگوں کی تفصیلات اور دیگر واقعات پیش کئے ہیں۔مولانا آزاد کی نثر کی یہ خوبی ہے کہ اس میں جابجا اشعار کی مدد لی گئی ہے۔عربی اور انگریزی کا استعمال کیا گیا ہے۔شاعرانہ جملے اور فلسفیانہ خیالات بیان کئے گئے ہیں جس کی سبب مولانا آزاد کے یہ مکاتیب اردو انشائیوں کا رنگ اختیار کر گئے ہیں۔اور آج بھی اردو کا عطر سمجھے جاتے ہیں۔

رشید احمد صدیقی نے ''غبار خاطر'' کے اسلوبِ نگارش کے بارے میں لکھا تھا کہ ''غبارِ خاطر'' کا اسلوب اردو میں نامعلوم مدت تک زندہ رہے گا۔اکثر بے اختیار جی چاہنے لگ جاتا ہے، کاش اس اسلوب کے ساتھ مولانا کچھ دن اور جیئے ہوتے، پھر ہمارے ادب میں کیسے کیسے نسرین ونسترن اپنی بہار دکھاتے اور خود مولانا کے جذبہ تخیل کی کیسی کیسی کلیاں شگفتہ ہوتیں۔(بحوالہ۔وہاب اعجاز خان کا بلاگ)

نیاز فتح پوری نے مولانا کے نام ایک خط میں درست ہی لکھا تھا۔

''مولانا! آپکا اسلوب بیان میں مجھ وداع جاں چاہتا ہے۔اگر آپ کی زبان میں مجھے کوئی گالیاں بھی دے تو ہل مم مزید کہتا رہوں گا۔''

(بحوالہ۔وہاب اعجاز خان کا بلاگ)

مولانا آزاد کے اسلوب کے بارے میں مولوی اجمل خان لکھتے ہیں:

جس زمانے میں الہلال نکلتا تھا تو میں کبھی کبھی وہ خالص ادبی قسم کی چیزیں بھی لکھا کرتے تھے۔ان تحریروں میں انہوں نے ایک ایسا مجتہدانہ اسلوب اختیار کیا تھا جس کی کوئی دوسری مثال لوگوں کے سامنے موجود نہ تھی اسلوب کے لئے اگر کوئی تعبیر اختیار کی جاسکتی ہے تو وہ صرف ''شعرمنثور'' کی ہے یعنی وہ نثر میں شاعری کیا کرتے تھے۔ان کی تحریراز سرتا پا شعر ہوتی تھی صرف ایک چیز اس میں نہیں ہوتی تھی یعنی وزن اوراس لئے اسے نظم کی جگہ نثر کہنا پڑتا تھا۔۔قلعہ احمد نگر کے مکاتیب اکثر اسی طرز تحریر میں لکھے گئے ہیں انہوں نے نثر میں شاعری کی ہے اور جس مطلب کو ادا کیا ہے کہ جدت فکر نقش آرائی کررہی ہے۔اور وسعت تخیل رنگ و روغن بھر رہی ہے۔ (غبار خاطر۔ص۔۱۴۔۱۷)

عبدالقوی دسنوی مولانا کی مکتوب نگاری پر تبصرہ کرتے ہوئے لکھتے ہیں'' یہ حقیقت ہے کہ غبار خاطر مولانا آزاد کے خطوط کا نہ صرف خوبصورت مجموعہ ہے بلکہ اردو ادب میں ایک قیمتی اضافہ ہے۔جس کے مطالعے سے ہندوستان کے ایک فرزند جلیل؛ جنگ آزادی کے بہت بڑے مجاہد اور اردو ادب کے منفرد نثر نگار کی زندگی شخصیت' ماحول' فن اوفکر سے سب سے زیادہ آگہی ہوتی ہے۔اس لئے میں سمجھتا ہوں کہ اگر مولانا آزاد اردو ادب کو غبار خاطر کے علاوہ کچھ بھی نہ دیتے تو بھی اردو ادب میں ان کو نمایاں مقام ملتا۔(عبدالقوی دسنوی۔مطالعہ غبار خاطر۔ص۔164)

مجموعی طور پر مولانا آزاد کے غبار خاطر میں شامل مکاتیب اردو انشاپردازی کے شاہکار ہیں۔معیاری ادب سے محروم اردو کی نئی نسل اس طرح کے طرز نگارش کے مطالعے سے محروم ہے۔اور ضرورت اس بات کی ہے کہ اردو کے قدیم ادب کی بازیافت کی جائے اور اسے نئی نسل سے روشناس کیا جائے۔

DR .M .NIZAMUDDIN
LECTURER IN URDU
SRR & CVR
GOVT DEGREE COLLEGE (A),
VIJAYAWADA, AP

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

अखिलेश की कहानियों का मूल्यांकन

आकाश सिंह
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
ई-मेल : akash24071994singh@gmail.com
मो. 7080924096

अखिलेश समकालीन युग बोध के लेखक हैं। इनकी कहानियाँ समाजिक सरोकारों से सीधे मुठभेड़ करती हैं। इनकी कहानियों में तत्कालीन जीवन से जुड़ी समस्याओं को पुरजोर ढंग से उठाया गया हैं। अखिलेश की कहानियाँ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विघटन से जुड़ी हैं जिसमें मुख्य रूप से राजनीति, बेरोजगारी, साम्प्रदायिकता, चिकित्सा जगत से जुड़ी बाजारवादी संस्कृति और पत्रकारिता के ह्रास को दिखाने का प्रयास किया गया हैं। राजनीतिक समस्या से जुड़ी कहानियाँ 'शृंखला', 'यक्षगान', 'ऊसर' और 'बायोडाटा' आदि हैं। बेरोजगारी की समस्या से जुड़ी कहानियाँ 'चट्टी', 'मुक्ति', 'आदमी नहीं टूटता' आदि हैं। साम्प्रदायिकता से जुड़ी कहानी 'अंधेरा' हैं। चिकित्सा जगत से जुड़ी कहानियाँ 'ग्रहण' और 'वजूद' हैं। 'हाकिम कथा', 'जलडमरूमध्य', 'घालमेल' और 'वजूद' में बाजारवादी संस्कृति के कारण पड़ने वाले दुष्प्रभाव को बड़ी गंभीरता से उठाया गया है। शृंखला कहानी में पत्रकारिता की समस्या को भी गंभीरता से उठाया गया हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता हैं कि अखिलेश की कहानियों में समकालीनता के जटिल समस्याओं के दर्शन होते हैं।

शृंखला कहानी में पत्रकारिता की समस्याओं के साथ-साथ राजनीतिक समस्याओं को भी उठाया गया हैं। आज के समय में राजनीति हर क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। आज के लोग षड्यंत्रकारी राजनीति में फंसे अपनी जटिल समस्याओं से जूझ रहे हैं। उनका डटकर मुकाबला करने में अक्षम हैं। विकराल परिस्थितियाँ उन्हें सभी जगह से घेरे खड़ी हैं। इससे आम जीवन ज्यादा तबाह हैं। अपना रास्ता किस दिशा कि ओर उन्मुख करें यह विचारणीय हैं। शृंखला कहानी का रतन कुमार कहता हैं -''आप लोग सजा देंगे क्यों? आप न्यायाधीश हैं, यमराज हैं या मल्लाह?''[1]

आज के समय में निर्दोष लोगों को सजा देना आम बात जैसा लगने लगा हैं। बिना किसी गलती के गलत साबित करना आज के विकृत व्यवस्था का परिणाम हैं। आज आदमी आदमी से तबाह हैं। वह एक खुशहाल जीवन भी जी नहीं सकता हैं। 'यक्षगान' कहानी की कुछ पंक्तियाँ देखे जा सकते हैं-षविपत्ति में निहत्थी फँसी सरोज चीत्कार कर रही हैं और संघर्ष का एक अन्य क्षेत्र उन्हें आहत कर रहा हैं।''[2]

अपनी परिस्थितियाँ से मजबूत लोग संघर्ष कर रहे हैं। अपनी जगह लड़ रहे हैं। उन्हें कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा हैं कि वह क्या करें, किधर जाए। अपने आस-पास फैले घनघोर अंधेरों से लड़कर भी उन्हें सही न्याय नहीं मिल पा रहा हैं। जैसा कि डॉ. नीरज शर्मा का कथन हैं-''हिन्दी कहानीकारों ने अपनी कहानियों में राजनैतिक चेतना का बहुत व्यापक चित्रण किया हैं। साथ ही देश में घटने वाली राजनीतिक घटनाओं, राजनीतिक लहर और राजनीतिक दांव-पेंच को चित्रित करने में वह चुके भी नहीं हैं।''[3]

यह व्यवस्था एक खोखले इंसानों को जन्म दे रही हैं। कहानीकार ने इन्हीं सब विचित्र को अपनी कहानी का विषय बनाया हैं। अखिलेश की कहानियों में इन्हीं सब त्रासदी स्थितियों को अपनी कहानियों का विषय बनाया हैं। आज की राजनीति जो बिल्कुल ही आम जनता से कट चुकी हैं 'ऊसर' कहानी के माध्यम से व्यक्त किया गया हैं-''वह सोचने लगा, पार्टी की राजनीति जो कुछ आम जनता से जुड़ी थी, वह भी खत्म हो चली।''[4]

अखिलेश की 'बायोडाटा' कहानी में भी इस तरह की समस्या को उठाया गया हैं। अखिलेश अपनी कहानियों के माध्यम से आज की गंदी राजनीति की पोल-पट्टी खोलते हैं। 'बायोडाटा' की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-''हम लोगों के लिए राजनीति जीवन संगिनी है और जीवन संगिनी रखैल, जो रखैल को जीवन संगिनी समझता हैं, लक्ष्य सदैव उससे दूर रहता हैं।''[5]

ऐसी राजनीति से आम जनता का कोई भला नहीं हो सकता हैं। जब तक व्यवस्था में सुधार की भावना की जागरूकता नहीं आयेगी तब तक आम जनता की स्थिति ऐसी ही बनी रहेगी। ऐसी विकराल परिस्थितियों से आम जीवन का सामना होता रहेगा। इससे स्वस्थ समाज का विकास असंभव है।

इस देश में बेरोजगारी की समस्या भी बहुत जटिल हैं। इस कसौटी पर अखिलेश की कहानियाँ काफी प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। 'चिट्ठी' कहानी में बेरोजगारी की समस्या को गंभीरता से चित्रित किया गया हैं। चिट्ठी' कहानी की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-''तुम लोग समझते होगे मैं नशे में हूँ लेकिन मैं होशोहवास में कह रहा हूँ। बेरोजगारी के कारण मैं कई-कई बार रोया हूँ। पिछली बार रक्षाबन्धन था। बहन को देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं था।''[6]

आज हमारे देश में शिक्षित बेरोजगार युवकों की संख्या बहुत ज्यादा हैं। साथ ही ये अपनी गंभीर समस्या से जूझ रहे हैं। बेरोजगारी से उत्पन्न जटिल परिस्थितियों को अखिलेश अपनी 'मुक्ति' कहानी में इस रूप में व्यक्त करते हैं-''सवाल समय काटने का था। यह एक ऐसी चुनौती थी, जिससे वह हमेशा जूझता था और हमेशा परास्त होता था। उसके पास समय का भरा पूरा घूरा था मगर समय के लिए वह कुछ न था।''[7]

अखिलेश की 'अंधेरा' कहानी साम्प्रदायिकता से जुड़ी कहानी हैं। जो आज के समय में प्रासंगिक हैं। अखिलेश अपनी कहानियों में ज्वलंत समस्याओं को उठाते हैं। पुष्पपाल सिंह का कहना हैं-''लेखक को जातीयता के आधार पर बाँटकर नहीं देखा जा सकता किन्तु बहुत तोषदाई बात यह है कि हिन्दू और मुस्लिम दोनों वर्गो के लेखकों ने साम्प्रदायिकता पर बहुत तेज प्रहार किये हैं।''[8]

आज हमारे देश में सभी समस्याओं में से साम्प्रदायिकता भी एक समस्या हैं। आज के लेखक वर्ग इससे जन्मी बुराईयों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। समाज में इसके कारण कई प्रकार के मतभेद पैदा हो रहे हैं। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के कारण आपसी सौहार्दपूर्ण व्यवहार में कमी देखने को मिलती है। अखिलेश सहज कहानीकार हैं।

'अंधेरा' कहानी में रेहाना और प्रेमरंजन के प्रेम दंगे जैसे माहौल में पनपते हैं। कहानी के अंत तक जाते-जाते वह शिथिल पड़ जाते हैं। इस कहानी में कहानीकार ने दंगे से पहले और दंगे के बाद की स्थितियों का गंभीरतापूर्वक चित्रण किया हैं। कहानी की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-''कितना बढ़िया होता कि ये बुरा ख्वाब होता। ख्वाब में दंगा हुआ होता, ख्वाब में ही हम भिखारियों के साथ भाग रहे होते, ख्वाब में ही हम रिक्शा पर बैठते और ख्वाब में ही हम इस खाली घर में आ गए होते।''[9]

इस कहानी के माध्यम से अखिलेश ने अलग-अलग पृष्ठभूमि से आने वाले आपसी सौहार्द का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया हैं। दंगो के बीच घटित होने वाली गंभीर स्थितियों के चित्रण में सफलता पाई हैं।

चिकित्सा जगत से जुड़ी उनकी कहानी 'वजूद' और 'ग्रहण' हैं। यहाँ अखिलेश ने इन कहानियों में सजीव चित्रण प्रस्तुत किया हैं। वहाँ राजकुमार जैसे पात्र के माध्यम से व्यवस्था जगत की पोल खोली हैं। जहाँ सही इलाज के अभाव में राजकुमार को समाज की प्रताड़ना सहनी पड़ती है। सामान्य बच्चे बजाय असामान्य बच्चों की तरह उसका जन्म होता है। जहाँ समाज उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं होता हैं।

इस कहानी के पात्र विपद और बटुली की स्थिति को व्यक्त करती कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -''विपद और बटुली खुद फटे-पुराने कपड़े पहनते थे और इस नमूने के कपड़े भी उनके पास इतने कहाँ थे कि उन्हें फाड़कर वे रोज-रोज राजकुमार

के पेट का छेद भरते और पट्टी करते।''[10]

अखिलेश जिस तरह की समस्या उठाते हैं। वह विचारणीय है सोचने योग्य है। अखिलेश की खास बात यह है कि उनका दायरा बहुत विस्तृत और व्यापक है इसी कारण वह हिन्दी-साहित्य में अपनी खास जगह बनाते हैं। वजूद कहानी में भी चिकित्सा जगत की समस्याओं की गंभीरता से पड़ताल की गई हैं। परम्परागत रूप से चली आ रही व्यवस्था को तोड़ने की कोशिश की गई है। इस कहानी में नई पीढ़ी का प्रतिरोधी स्वर देखने को मिलता है। कहानी की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-''बैद जी नहीं चाहते थे कि रामबदल के पास वे चमत्कारी वनस्पतियाँ हो जिनके बूते वे बैद बने थे। क्योंकि वे रामबदल के अधिकार में होती तो एक दिन रामबदल भी बैद बन सकता था।''[11]

अखिलेश की कहानियाँ एक अलग पहचान स्थापित करती है इसी तरह की कहानियाँ इनकी है जलडमरूमध्य, हाकिम कथा, घालमेल जो बाजारवादी संस्कृति से जुड़ी कहानियाँ हैं आज की उपभोक्तावादी संस्कृति ने किस तरह लोगों के जीवन को तहस-नहस किया है अखिलेश की कहानियों में देखने को मिलता है इस युग में हर तबके से जुड़े लोग अपने को इसके दुष्प्रभाव से बचा पाने में अक्षम है पुष्पपाल सिंह के कथन द्रष्टव्य है -''इस नव उदारवाद, आर्थिक विकास के नये प्रारूप, उपभोक्तावादी की दौड़ में दौड़ते सारे मनुष्य जाति, विज्ञापन-संस्कृति में पनपता, पलता, बढ़ता बाजार जिस रूप में एक सर्वग्राही संस्कृति के रूप में दुनिया को लील रहा है, उसके दुष्परिणाम सभी देशों में सामान्य मनुष्य को भोगने पड़ रहे है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक से यह चिन्ता पूरे भारत के बौद्धिक जगत के लिए चिन्तन-मनन का सतत विषय रही है।''[12]

जलडमरूमध्य में सहाय जी के अकेलेपन की त्रासदी को व्यक्त किया गया हैं। जहाँ सहाय जी अपने पुरखो की जमीन को बचाना चाहते है। उन्हें अपने पैतृक संपत्ति से अत्यधिक लगाव है जिन्हें वह किसी भी कीमत पर बेचने को तैयार नहीं है। आज के बदलते परिवेश में गाँवों में भी दुकानें ही दुकानें खुल गई है। सहाय जी को इस बदलाव को देखकर उन्हें घबराहट होती है। एक तरह की बेचौनी होती है। 'जलडमरूमध्य' कहानी की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-''दुकानें घरों में घूस गई थी। कई तो अपने घरों को तोड़कर दुकाने बनवा रहे थे। लेकिन सुनने वाले को मकबूल साहब की बात यकीन नहीं आ रहा था कि दुकानों को देखकर सहाय जी को घबराहट होने लगती होगी।''[13]

आज के बाजारवादी संस्कृति में प्रेम व्यवसाय का रूप ले लिया है। आदमी वस्तु के रूप में ढ़ल गया है। इंसान का इंसान से झूठा संबंध स्थापित हो गया है। आज प्रेम वस्तु पर आधारित हो गई है। इसी कारण संबंधो में दरार जाते है। जहाँ प्रेम टूटकर बिखराव का शिकार हो जाता है। अखिलेश की कहानी घालमेल इसी आभासी दुनिया की सच्चाई को व्यक्त करती है। इस कहानी में सुशील और अमृता के प्रेम के टूटने का कारण बाजारवादी संस्कृति है। वह अमृता के संबंधों को बचाने के लिए अपने घर की वस्तु तक को बेचने के लिए मजबूर है। कहानी की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-''संयोग से आज फिर महिने का आखरी था जिसमे पंद्रह-बीस रुपये दुर्लभ ही होते है। दोस्तों से पहले काफी कर्ज ले चुका था। क्या करें? उसने घर से दो किताब हाथ में ले ली और आधा घंटा के भीतर बेचकर खाद्य-सामग्री से लैस हो गया।''[14]

प्रेम संबंधो में आई विकृति को अखिलेश ने बड़ी गहराई से चित्रित किया हैं। अखिलेश अपने समय की नब्ज को पकड़ते हैं और अपनी कहानियों में जगह देते है आज के भूमण्डलीकरण के युग में व्यक्ति के संबंध तार-तार हुए हैं। हर जगह अपनत्व का अभाव देखने को मिलता हैं। आज का संबंध उपयोगितावादी दृष्टि पर आधारित हो गया है। अखिलेश की घालमेल कहानी आज के युग की विडंबना को व्यक्त करने वाली कहानी हैं।

इसी प्रकार अखिलेश की कहानी 'हाकिम कथा' हैं। यह कहानी भी बाजारवादी संस्कृति पर आधारित है। यह कहानी अपसंस्कृति के बढ़ते प्रभाव को रेखांकित करती है। आज के युग में बदलते परिवेश के कारण परम्परागत दाम्पत्य जीवन शैली के लोगों के जीवन का आपसी संबंध तार-तार हो रहा है। जहाँ बड़े घरों में रहने वाली स्त्रियों का जीवन त्रासद भरा होता है हाकिम कथा की पात्र गायत्री अपने को समन्वित करने में अक्षम है इसके बदले में अपने पति से तलाक मिलता है। 'हाकिम कथा' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-''लोअर क्लास और मीडिल क्लास की औरतों की तरह ऐसी चीजों पर ध्यान दोगी तो तुम्हारी लाइफ चौपट हो जायेगी। हमेशा के लिए टेंशन पाल लोगी।''[15]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अखिलेश ने अपनी कहानियों के माध्यम से भावुकता, कल्पना आदि के स्थान पर जीवन संघर्ष के यथार्थ अंकन पर बल दिया है। इनकी कहानियों का मुख्य विषय राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और पत्रकारिता से जुड़ा है और समय के बदलते परिवेश और आधुनिकता के बीच उलझे हुए मानव के व्यथा की कहानी है। जिसे अखिलेश ने पूरी ईमानदारी के साथ व्यक्त किया हैं। अपनी कहानियों में अखिलेश ने भूमंडलीकरण और बाजारीकरण से जुड़े यथार्थ को बड़ी गहनता से प्रस्तुत किया हैं। इनकी कहानियों में जीवन संघर्ष से जुड़ी मध्यवर्गीय जीवन की वास्तविकता दिखाई देती है। उन्होंने मध्यवर्गीय जनजीवन की विसंगतियों को उकेरा है।

सामान्य मनुष्य जीवन के विभिन्न मोर्चो पर अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। इसकी सशक्त अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। अखिलेश की कहानियों में राजनीतिक,सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी तरह की व्यवस्थाओं में भ्रष्टता को देखते हुए उनके अंदर तीव्र रोष भी देखने को मिलता है। आज का समकालीन लेखक अपने को राजनीतिक स्थिति से अलग नहीं कर सकता है। क्योंकि आम जनता का राजनीतिक व्यवस्था से ठगे जाने की पीड़ा को लेखक चुनौतीपूर्ण तरीके से स्वीकार करके चलता है। इसलिए अखिलेश की कहानियाँ जीवन के विभिन्न समस्याओं से जूझती और संघर्ष करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. सम्पूर्ण कहानियाँ : अखिलेश राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण -2021, पृष्ठ सं 44।
2. वही, पृष्ठ सं. 169।
3. अंतिम दशक की हिन्दी कहानियाँ : संवेदना और शिल्प-डॉ. नीरज शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 2011, पृष्ठ सं. 137।
4. सम्पूर्ण कहानियाँ : अखिलेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण -2021, पृष्ठ सं. 333।
5. वही, पृष्ठ सं. 286।
6. वही, पृष्ठ सं. 313।
7. वही, पृष्ठ सं. 412।
8. 21वीं शती का हिन्दी उपन्यास : पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण- 2016, पृष्ठ सं. 95।
9. सम्पूर्ण कहानियाँ : अखिलेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 2021, पृष्ठ सं 84।
10. वही, पृष्ठ सं. 131।
11. वही, पृष्ठ सं. 98।
12. 21वीं शती का हिन्दी उपन्यास : पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण, 2016, पृष्ठ सं. 85।
13. वही, पृष्ठ सं. 209।
14. वही, पृष्ठ सं. 352।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

जनजातीय जीवन-शैली का अभिन्न अंग है, गीत-नृत्य-संगीत (झारखण्ड के सन्दर्भ में)

सुखराम उराँव
वरीय शोधार्थी
विश्वविद्यालय कुँड़ुख़ विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची
मो. नं.-8084036473, 8789463425
ई-मेल- oraonsukhram6@gmail.com

झारखण्ड आदिवासियों का हृदय स्थल है। यह प्रदेश जनजातीय सांस्कृतिक विरासत के लिए मशहूर है। जिस तरह भारत विभिन्न संस्कृतियों का गुलदस्ता है। उसी प्रकार झारखण्ड भी विभिन्न संस्कृतियों का प्रदेश है। यह आदिवासी बहुल राज्य है। यहां की कला, संस्कृति की अद्‌भूत पहचान रही है। यहां विभिन्न जनजातीय समुदाय के लोग निवास करती हैं। जनजातीय समुदाय प्रायः प्रकृति सान्निध्य में रहते हैं। इसलिए निसर्ग की लय, ताल और राग-विराग उनके शरीर मे रक्त के साथ संचरित होते हैं। वृक्षों का झूमना और कीट-पतंगों का स्वाभाविक नर्तन जनजातियों को नृत्य के लिए प्रेरित करते हैं। हवा की सरसराहट, मेघों का गर्जन, बिजली की कौंध, वर्षा की साँगीतिक टिप-टिप, पक्षियों की लयबद्ध उड़ान, ये सब नृत्य-संगीत के उत्प्रेरक तत्व हैं। नृत्य मन के उल्लास की अभिव्यक्ति का सहज और प्रभावी माध्यम है। संगीत सुख-दुख यानी राग-विराग को लय और ताल के साथ प्रकट करता है। कहा जा सकता है कि नृत्य और संगीत मनुष्य की सबसे कोमल अनुभूतियों की कलात्मक प्रस्तुति है। जनजातियों के देवार्चन के रूप में आस्था की परम अभिव्यक्ति के प्रतीक भी। नृत्य-संगीत्य जनजातीय जीवन-शैली का अभिन्न अंग है। यह दिन भर के श्रम की थकान को आनंद में संतरित करने का उनका एक नियमित विधान भी है।

झारखण्ड की उन्मुक्त प्राकृतिक सुन्दरता में जनजातीय लोग एवं कई प्रकार के वन्य जीव, पशु-पक्षी निवास करते हैं। इनके बीच गहरा संबंध होता है, जो सुख-दुःख, विरह, हर्ष, उत्साह आदि भाव से जुड़ा होता है। झारखण्ड के मनोरम दृश्य को देखकर स्वतः ही मन गूनगुना उठता है। यहां के जनजातियों के मुख से निकलने वाले भाव संगीत मे बदल जाते हैं। जनजातीय लोग अपनी भावनाओं को गीत के माध्यम से व्यक्त करते हैं। जनजातीय गीत-संगीत में प्रकृति प्रेम, मानव प्रेम, पशु-पक्षियों का प्रेम फूट-फूट कर भरा पड़ा है। पूरा जनजातीय जीवन की गीत-संगीत एवं नृत्य से परिपूर्ण है। इसके संबंध में कुँड़ुख़ में एक उक्ति प्रचलित है :-

''एकना दिम तोःकना
कत्था दिम डन्डी''

अर्थात् चलना ही नृत्य है एवं बोलना ही गीत है। गीत और नृत्य क बिना जनजातीय समुदाय की कल्पना नहीं की जा सकती है। प्रत्येक जनजाति की अपनी भाषा संस्कृति, गीत-संगीत एवं नृत्य है। सांस्कृतिक गतिविधियों में धूमकुड़िया, अखड़ा जतरा, सेन्दरा, परब-त्योहार आदि। गीत-संगीत व्यक्ति के भावों को व्यक्त करने का एक जरिया है। व्यक्ति जिन

बातों को बोलकर व्यक्त नहीं कर पाता वह गीत-संगीत के माध्यम से अपने भावों के द्वारा करता है। जनजातीय गीत-संगीत एवं नृत्य की कुछ अलग विशेषता है, जो अन्य भाषा के गीत-संगीत में विद्‌यमान नहीं है, और यही विशेषता इसे अन्य लोक गीत-संगीत एवं नृत्य से एक अलग पहचान देती है।

वर्ष के बारहों महीने के गीत-संगीत के राग और नृत्य की अलग-अलग पद-चाल होती है। पैर को आगे-पीछे बायां-दायां उपर-नीचे उठाने की विधि से मौसम और महीने के नृत्य में परिवर्तन आ जाता है। इससे गीत एवं नृत्य के प्रति उत्साह और उमंग बना रहता है। जैसे-फागुन महिना के कुँड़ुख़ गीत :-

''ने भइया हुररे बेंःचदर
मेर्ख़ा नु धुली चोआ लगी।
बबु भइया हुररे बेःचदय
मेर्ख़ा नु धुली चोआ लगी।

अर्थात् इस गीत में कहा जा रहा है कि कौन भाई होरी खेल रहा है। जो कि आकाश में धूल उड़ रहा है। इसका उत्तर में कहा गया है, बाबू भाई होरी खेल रहा है, जो कि आकाश में धूल उड़ रहा है। उड़ रहा है। इसी प्रकार से चैत्र महीनें में झारखण्ड के जनजातीय समुदाय में सरहुल गीत एवं नृत्य होता है। सरहुल गीत एवं नृत्य उराँव जनजाति में तीन प्रकार के होते हैं।[1] चैत्र महिने का गीत नृत्य, ''ख़द्दी तोःकना'' अर्थात् सरहुल डेगना। इस प्रकार के गीत में बिना वाद्‌य यंत्र के नृत्य होता है। पैर को लंगड़ चाल में गीत गाते हुए आगे बढ़ाते हैं और फिर एक पैर उठाकर डेगते हैं। ''ख़द्दी तोःकना'' अर्थात् सरहुल डेगने का गीत कुँड़ुख़ में इस प्रकार से है :- जैसे-

''एका लेखा उरूबय भइया
ख़द्दी चन्दो निंगदन बीसा लगदय,
धना गड़ा उरूबय भइया
ख़द्दी चन्दो निंगदन बीसा लगदय-2''

इस गीत में कहा गया है, कि किस प्रकार धनवान हो भाई कि आप ख़द्दी चन्दो, अर्थात् चैत्र महीने में विवाह कर रहे हो। इसका उत्तर में कहा गया है, कि आप बहुत ही धन संपत्ति से परिपूर्ण हो जो कि इस चैत्र महिने में विवाह कर रहे हो।

(2) बरोया (खेदाड़ी) इस गीत में मांदर नगाड़े के साथ युवक-युवतियां, महिला-पुरूष साथ में हाथ में हाथ जोड़ाकर झूमर की तरह ही पैर को आगे-पीछे कर नृत्य करते हैं। सरहुल जुलूस में अधिकतर बरोया (खेदाड़ी) गीत गाया जाता है। कुँड़ुख़ में बरोय (खेदाड़ी) गीत इस प्रकार से है :-

''ई समई काला लगी रे
दोसर समई किरो का मला रे-2
अना धना किरो सोना रूपा किरो बुचू
डिन्डा समई मला किरो रे-2''

इस गीत में कहा गया है, कि जो कुंवारा समय बित रहा है, वो दोबारा आयोग कि नहीं। उत्तर में कहा गया है कि रूपया पैसा, सोना-चांदी सब लौट सकता है, परंतु कुंवारा समय दोबारा नहीं आयेगा।

(3) धुड़िया (पच्चो करम/बुढ़ी करम) इस गीत को बैसाख तक गाया जाता है। बैसाख का गर्मी में धीमी गहि से लम्बा खींच कर गाते हैं, और इसमें नृत्य भी धीमा गहि से ही होता है। कुँड़ुख़ में धुड़िया गीत इस प्रकार से है :-

''नीन पचगी डुम्बारी मोख़दय
डुम्बारी नु पोचगो र'ई-2
एरा हुं पोलकन तेंगा हुं पोलकन
भला, डुम्बारीन पोचगो र'ई-2

इस गीत में कहा गया है, कि तुम बुढ़ा डुम्बर खाते हो, डुम्बर में पिल्लू है। उत्तर में कहा गया है कि देखने भी नहीं सके और ना ही बता पाये की डुम्बर में पिल्लू है।

जनजातीय समुदाय में कुछ ऐसे भी गीत हैं, जिसमें नृत्य नहीं होता है। जैसे-विवाह गीत, विवाह गीत नेग के अनुसार अलग-अलग नेग गीत होता है। कुँड़ुख़ में विवाह गीत इस प्रकार से है, जिसे लड़का-लड़की को तेल लगाते समय गाया जाता है। :-

(1) ''जसपुरिया बेलस, पाही नना बरचस
पाही नन्नुम बेन्जेर'आ लगदय
दसो मन घी घोड़ो, बीसो मन घी हथी
डहरे नु कुहुड़ धूली चोदनुम बरचा-2''

इस गीत में कहा गया है कि जशपुर का राजा मेहमान करने आया और मेहमान करते विवाह कर रहा है। इसका उत्तर में कहा गया है, दस मन का घोड़ा और बीस मन का हांथी लेकर रास्ता में धूल उड़ाते आया।

(2) शादी के बाद विदाई गीत जो कुँड़ुख़ में इस प्रकार है :-

''एंगहय र'अना गूटी अयो
तूसा डहरेन मला एरेकी-2
अक्कु गा अयो एंगन बीसकी
अयो, अड़िन धरओय चींख़य-2

इस गीत में लड़की विदाई के समय अपनी मां से कहती है। मेरे रहते में तुमको डांड़ी/कुआ का रास्ता देखना नहीं पड़ा। अब तो मां मुझे विवाह कर दी अब मां घड़ा पकड़ कर रोयेगी।

जनजातियों में गीत के साथ नृत्य की परंपरा रही है, परंतु कुछ ऐसे भी नृत्य हैं, जो कि गीत विहीन हैं। जैसे-पइका नृत्य, पइका पुरूष प्रधान नृत्य। यह गीत विहीन वाद्य यंत्र युक्त नृत्य है। इसमें नृत्य की तीन गति होती है। धीमी, मध्यम और तीव्र। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि नतर्क तलवार, ढाल भांजते हुए नृत्य करता है, यह नृत्य जनजातियों के बरात में 'मेरघेराई' के समय या किसी स्वागत उत्सव में पइका नृत्य होता है। इस नृत्य में नतर्क विशेष पोषाक धारण किए हुए होते हैं।

इस नृत्य में गीत नहीं होती है, परंतु नृत्य को शहनाई, मुरली, बांसुरी, मांदर, ढोल, नगाड़ा, बनम, केंदरा, टुईला, भेंर आदि वाद्य यंत्र की ध्वनि एवं ताल संचालित करती है। जनजातियों में कुछ ऐसे भी नृत्य हैं, जो वाद्य यंत्र विहीन हैं। जैसे - ''ख़द्दी तोकना'' अर्थात् सरहुल डेगाना। जनजातीय समुदाय के गीत-संगीत एवं नृत्य पारंपरिक हैं, जो सदियों से आदिम युग से, पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत के रूप में जनजातीय समुदाय के लोगों को सहज प्राप्त होते आ रहे हैं। जन्म से जीवन की मौलिक संस्कृति गीत-संगीत के बिना अधूरी है। यहां के जनजातीयों के लोक संगीत की विशेषता यह है कि ये ऋतु के अनुसार श्रम, श्रम की उपलब्धि के अनुसार उत्सव, उत्सव के अनुसार आनन्द की अनुभूति पर आधारित है। ये गीत कहीं अकेले में, कहीं समूहों में, कहीं रास्ता चलते या बैठकर, कहीं वाद्य यंत्र के साथ नृत्य करते हुए, तो कहीं बिना वाद्य यंत्रों के प्रस्तुत किए जाते हैं। जनजातीय समुदाय का जीवन चक्र प्रत्येक वर्ष दुहराया जाता है। नृत्य और गील में वे अपने जीवन पद्धति को प्रदर्शित करते हैं। गीत में सुख-दःख, जीवन-मरण, इतिहास, भूत और वर्तमान निहित रहता है। इनके जीने की पद्धति, कला और जीवन शैली दूसरे समुदाय से इन्हें अलग करती है।

जनजातीय समुदाय का हर सदस्य कलाकार होता है। सभी को गीत का राग और नृत्य करना आता है। इन लोगों का जीवन स्वच्छंद और सरल होता है। ये झूठ नहीं बोलते हैं। भीख मांगने की परंपरा नहीं थी। ये प्रकृति पूजक हैं। इनका धर्म प्रकृति आधारित है। झारखंड के जनजातियों की अपनी गीत एवं नृत्य और जीवन पद्धति के लिए देश और विदेश में एक अलग पहचान है। इनकी जीवन शैली से सभ्य समाज को भी अनेक प्रकार ज्ञान प्राप्त होती है। जनजातियों की प्रत्येक गांव

के बीच अखड़ा, जो नृत्य-गीत और संस्कृति का केन्द्र होता है। इसी गीत-संगीत और नृत्य के बीच समय व्यतीत होता गया। इस बीच सभ्य समाज का चहुमुखी विकास हो गया। उसकी तुलना में जनजातीय समुदाय पिछड़ गया। उन्हें अपने पिछड़े होने की चिंता सताने लगी। वे भी सभ्य समाज के बराबरी करने की सोचने लगे। तक अपने नृत्य-गीत और संस्कृति से इनका भी ध्यान हटने लगा। वे भी अपने बच्चों को पढ़ा लिखा कर सभ्य समाज के बराबर लाने का प्रयत्न करने लगे। लेकिन सभ्यता, इनकी सोच से बहुत आगे निकल गया। फलतः वे आज विकसित समाज से कोसो दूर दिखाई देते हैं। संविधान में इनके विकास के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं। इनके जीवन स्तर को उपर उठाने के लिए कई कल्याणकारी योजनाएं चलाई जा रही हैं। इनके जीवन स्तर को उपर उठाने के लिए कई कल्याणकारी योजनाएं चलाई जा रही है। नौकरियों में स्थान देने के लिए आरक्षण नियम बने। इसके बावजूद विकास के दौड़ में पिछड़े हुए हैं। आज की स्थिति यह है कि सभ्यता के चकाचौंध में अपनी नृत्य संगीत तथा सांस्कृतिक धरोहर और विरासत को संभालने में विफल हो रहे हैं। दूसरी ओर विकसित समाज के साथ भी कदम मिलाकर चलने में सफल नहीं हो पा रहें हैं। सबसे विडम्बना तो यह है कि इनके बीच से नृत्य-संगीत दूर होते जा रहे हैं। इनकी सांस्कृतिक बिखराव के लिए आधुनिकता और वैश्वीकरण का प्रभाव भी कम जिम्मेदार नहीं है। जैसे-जैसे वैश्वीकरण और आधुनिकता का प्रभाव बढ़ रहा है, वैसे-वैसे नृत्य-संगीत का पतन तेजी से हो रहा है।

आज के युवा और बुजूर्ग नृत्य और गीत जानते हैं, परंतु वर्तमान पीढ़ी का बच्चा गीत-नृत्य एवं वाद्य यंत्र और सांस्कृतिक गतिविधियों से विल्कुल अनजान हैं। आज के युवा और बुजुर्ग के गुजर जाने के बाद जनजातियों का महान सांस्कृतिक विरासत पर विलुप्ति का खतरा मंडरा रहा है। इसके साथ ही प्राचीन परम्परागत ज्ञान का भंडार भी गर्त में समा जाएगा। वर्तमान समय में लोकगीत, नृत्य एवं वाद्य यंत्र के सूर-ताल और लय में काफी परिवर्तन देखने को मिल रहा है। जनजातीय लोकगीतों में भी नए-नए शब्दों के प्रयोग होने लगे हैं। जनजातीय समुदाय के लोग हर उत्सव में अखड़ा या आंगन में बूढ़े बुजूर्गों, महिला-पुरूष, युवक-युवतियों द्वारा गीत गाकर वादय यंत्र बजाकर नृत्य किया जाता था। यह उत्सव में और भी मनोरम बनती थी। परंतु अब इसका स्थान रिकार्डिंग, सू ट्यूब, डीजे आदि ने ली है। वर्तमान समय में लोग यू ट्यूब के द्वारा लोकगीत का आनन्द ले रहे हैं और काफी धूम-धड़ाके की आवाज में सुनना पसंद करते हैं। आधुनिकता के दौर में लोक गीत एवं वाद्य धूमिल होती जा रही है। जनजातीय समुदाय के शुभ चिंतकों को यह चिंता सताने लगी, कि आने वाले 50-100 वर्ष के पश्चात् अखड़ा में होने वाली नृत्य एवं गीत और उसके साथ बजने वाले नगाड़ा, मांदर, ढोलकी, नगाड़ा, तिरियो, मुरली और थेचका आदि की धून हम नहीं सुन सकेंगे। इन गीत और वाद्य यंत्रों की आवाज सुनकर हमारा मन मचलने लगता है, हृदय की धड़कन बढ़ जाता है, पांव थिरकने लगते हैं, ऐसे सुर ताल और लय से वंचित होना पड़ेगा। अखड़ा में सभी व्यक्ति कलाकार होते हैं, और जो थककर अखाड़ा के इर्द-गिर्द खड़े हो जाते हैं, वही दर्शक के रूप में दिखाई देते है। जनजातीय समुदाय के लिए नृत्य और गीत सीखने का केन्द्र अखड़ा होता है, जो अब बिखर जाने की स्थिति में है।

सामाजिक संगठनों के द्वारा बचाने का प्रयास किया जा रहा है। यदि सरकार पहल करे तो इनकी महान सांस्कृतिक धरोहरों को संरक्षण, संवर्धन कर बचाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. करम डाइर-(जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, विभागीय शोध पत्रिका 2017 पृष्ठ सं. -10
2. सरना फूल पत्रिका-सरहूल विशेषांक 1 अप्रैल 2024 पृष्ठ सं. -30,31,32
3. उराँव लोक साहित्य पृष्ठ सं. - 23, 121
4. चाला अखड़ा खुजका डंडी- पृष्ठ सं. -18, 29
5. झारखण्ड के लोग संगीत - पृष्ठ सं. -10,11,45,46
6. थाती-पृष्ठ सं. - 109,110,111

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

తెలుగు భాష సాహిత్య వికాసానికి సి.పి. బ్రౌన్ సేవలు

Dr. Nelaturi Anita Margaret
Lecturer in Telugu SRR & CVR Govt. Degree College (A), Vijayawada, AP
Phone : 8639728322m Email : dr.n.a.margaret@gmail.com

తెలుగు నేలను, ప్రజలను, భాషా సాహిత్యాలను, సంస్కృతిని మనసారా ప్రేమించిన ఆంగ్లేయ అధికారులలో మరువరాని మహనీయుడు ఛార్లెస్ ఫిలిప్ బ్రౌన్. తెలుగు భాషా సాహిత్య సముద్ధరణకు జీవితాంతం కృషి చేసి అమూల్యమైన సాహిత్య సేకరణ, నిఘంటు నిర్మాణం, గ్రంథ పరిష్కరణల్లో తెలుగు వారికి మార్గదర్శకుడిగా నిలిచాడు.

సి.పి. బ్రౌన్ 1798 నవంబర్ 10న కలకత్తాలో రెవరెండ్ డేవిడ్ బ్రౌన్, ఫ్రాన్సిస్ కాలే అను మిషనరీ దంపతులకు జన్మించాడు. హీబ్రూ భాషా పండితుడైన డేవిడ్ బ్రౌన్ తన పిల్లలకు ఆంగ్లము, గ్రీకు, లాటిన్, సిరియన్, అరబిక్, పార్శీ, హిందీ, సంస్కృత భాషలు నేర్పించాడు. బ్రౌన్ 1817లో మద్రాసులోని ఫోర్ట్ సెయింట్ జార్జి కాలేజిలో సివిల్ సర్వీసు శిక్షణలో చేరాడు. ఆ కాలేజిలో చదివేవారందరూ విధిగా రెండు భారతీయ భాషలు నేర్చుకోవాలన్న నియమం ఉండేది. బ్రౌన్ తెలుగు, మరాఠి నేర్చుకున్నాడు. ఇంటిలో స్వంత గ్రంథాలయం ఏర్పాటు చేసుకున్నాడు. సివిల్స్ శిక్షణానంతరం జరిగిన స్నాతకోత్సవంలో మద్రాసు గవర్నర్ సర్ థామస్ మన్రో మాట్లాడుతూ **"దేశభాషలలో వ్యవహార జ్ఞానం లేకపోతే మిగతా జ్ఞానాలన్నీ సివిల్ సర్వీసులో నిరుపయోగం, చక్కని భాషా జ్ఞానం సాధనంగా సత్పరిపాలన చెయ్యాలి, దేశ ప్రజల గురించి ఏర్పరచుకున్న దురభిప్రాయాలకు స్వస్తి చెప్పాలి. భారతీయుల మధ్య బహుకాలం సంచరిస్తూ జీవించిన వాళ్లెవరైనా వారి సద్గుణాలను మెచ్చుకుంటారు. ప్రజలలో సద్భావం ఉంటే అదే ఏ ప్రభుత్వానికైనా రక్ష"** అన్నాడు. ఆ మాటలు బ్రౌన్ జీవితం పై చెరగని ముద్ర వేశాయి.

1820లో బ్రౌన్ ఉద్యోగ జీవితం ప్రారంభమయింది. కడప కలెక్టర్కు అసిస్టెంట్గా చేరాడు. పాలనా వ్యవహారాలు తెలుగుతో పాటు హిందీ, కన్నడ, మరాఠి భాషలలో జరిగేవి. కలెక్టర్ హాన్బరీ అచ్చ తెలుగులో స్వచ్ఛంగా, అనర్గళంగా మాట్లాడేవాడు. కలెక్టర్ కంటే మిన్నగా తెలుగు నేర్చుకోవాలనే పట్టుదలతో బ్రౌన్ రెండేళ్ళలో హాన్ బరీని మించిపోయాడు. కేవలం పుస్తకాల వలన తెలుగు రాదని కోర్టులోని వాదులు, ప్రతివాదులు, నేరస్తులు, పరిచారకులు అందరూ తెలుగు నేర్పే గురువులేనని బ్రౌన్

అభిప్రాయపడేవాడు. తొలి రోజుల్లో కొందరు సహ ఆంగ్లేయులు బ్రౌన్ తెలుగు సాహిత్యాభిరుచిని ఏవగించుకునేవారు. తెలుగులో చదవదగిన సాహిత్యమే లేదని, వృథా కాలయాపన అని నిరుత్సాహపరచేవారు. ప్రజలలో నిరక్ష్యరాస్యత తాండవిస్తున్న కాలమది. దేశీయ పండితుల ఛాందసత్వం, భాషా భేషజం కొంత బాధించినప్పటికీ పట్టుదల, స్థిరచిత్తం, పరిశోధనతో తెలుగు భాషాధ్యయనం కొనసాగించాడు. సేవాతత్పరుడైన బ్రౌన్ 1821లో కడపలో రెండు పాఠశాలలు స్థాపించాడు. విద్యార్థులకు ఉచితంగా విద్య, భోజన వసతి కల్పించాడు. దేశీయ ఉపాధ్యాయులను నియమించి సొంత డబ్బును వారికి జీతాలుగా ఇచ్చేవాడు. ఈ పాఠశాలలను **"ధర్మబళ్ళు"** అనేవారు. 1822లో మచిలీపట్నం బదిలీ అయ్యి అక్కడ కూడా రెండు ధర్మబళ్ళు ప్రారంభించాడు. 1823లో ఆరువారాల సెలవుపై మద్రాసు వెళ్ళి అక్కడ అబేదుబాయ్ అనే ఫ్రెంచి మతగురువు రాసిన **"హిందూ మేనర్స్, కస్టమ్స్ అండ్ సెరిమనిస్"** (హిందువుల ఆచారాలు, అలవాట్లు మతకర్మలు) పుస్తకం చదివి అందులో వేమన పద్యాలు, తాత్విక భావన గురించి తెలుసుకొని ఆసక్తితో తాళపత్ర గ్రంధాల సేకరణకు ఉపక్రమించాడు. వేమన పద్యాలపై ఆకర్షణతో శ్రద్ధగా తెలుగు వ్యాకరణం, ఛందస్సు నేర్చుకొని వేమన పద్యాలను ప్రపంచానికి పరిచయం చేశాడు.

పుస్తక ముద్రణ ప్రచారంలో లేనికాలంలో విలువైన ఆముద్రిత గ్రంధాలకు శుద్ధప్రతులను సిద్ధం చేయించి వాటిని అచ్చు వేయించి తెలుగు వాఙ్మయాన్ని కాపాడాడు. మను చరిత్ర, వసుచరిత్ర, రాజుల చరిత్ర, పల్నాటి వీర చరిత్ర, విక్రమార్క చరిత్ర, పంచతంత్రం, సుమతీ శతకం, పోతన భాగవతం, నల చరిత్ర, తాతాచారి కథలు, కుచేలోపాఖ్యానం, సీతా కళ్యాణం, కళా పూర్ణోదయం, వైజయంతి విలాసం, నిస్తర రత్నాకరం, హైదరు చరిత్ర, యక్షగానం, శశాంక విజయం, కాశీ ఖండము, హరిచ్చంద్రోపాఖ్యానము, ఆముక్త మాల్యద, సారంగధరచరిత్ర, దశావతార చరిత్ర వంటి శిథిలమైన తాళపత్రాలు, లిఖిత పత్రాలు సేకరించి బూజు దులిపి శుద్ధ ప్రతులు రాయించి అచ్చు వేయించాడు. వాటి సేకరణకు తన ధనాన్ని, కాలాన్ని ఎంతగానో వెచ్చించాడు. కేవలం తన కోసమే కాక భాషా సాహిత్య సంపదను అందరికీ పంచాలనే అభిలాషతో ఈ పని చేపట్టాడు. కొన్ని గ్రంధాలను ఆంగ్లంలోకి అనువాదం చేసి ఆంగ్లేయులకు

తెలుగు రచనలలోని భావ ఔన్నత్యాన్ని పరిచయం చేశాడు. దిక్కు మొక్కు లేకుండా కొన వూపిరితో వున్న తెలుగు సారస్వతానికి మోక్ష ప్రదాత అయ్యాడు.

1825లో రాజమండ్రి కలెక్టర్కు హెడ్ అసిస్టెంట్ మేజిస్ట్రేట్గా చేరాడు. అక్కడ ఆంధ్ర మహాభారతం, కవిజనాశ్రయం, అప్పకవీయం మొదలగు గ్రంధాలు అధ్యయనం చేస్తూ, ఆంధ్రగీర్వాణ చందోరీతులను వివరిస్తూ ఇంగ్లీషులో ఒక గ్రంధం రాసి కాలేజి బోర్డుకు సమర్పించాడు. 1826లో కడప జిల్లా కోర్టు రిజిస్ట్రారుగా పనిచేశాడు. పదిహేను ఎకరాల స్థలం కొని బంగళా, తోట నిర్మించాడు. ఆ ఇంటిని తాళపత్ర గ్రంధాల సేకరణ, శుద్ధ ప్రతుల తయారీకి స్థావరంగా మార్చాడు. ఆయన ఇంటిని బ్రౌన్ కాలేజీ అని పిలిచేవారు. నిత్యమూ పండితుల రాకతో, సాహిత్యగోష్ఠులతో, తెలుగు సాహిత్య సముద్దరణ మహా యజ్ఞాలతో ఆయన ఇల్లు విరాజిల్లుతుండేది. జూలూరి అప్పయ్య పంతులు, అద్వైత బ్రహ్మశాస్త్రి, పరవస్తు చిన్నయసూరి, నరహరి గోపాలకృష్ణమశెట్టి వంటి పండితులకు సొంతంగా జీతమిచ్చి సాహిత్య సేవలో సహాయకులుగా నియమించుకున్నాడు. 1829లో తిరుచినాపల్లి కోర్టు రిజిస్ట్రారుగా, 1832లో గుంటూరు ఆక్టింగ్ కలెక్టర్గా, 1841లో మద్రాసు ఆక్టింగ్ పోస్ట్మాస్టర్ జనరల్, మద్రాసు యూనివర్శిటీ బోర్డు సభ్యుడిగా, మద్రాసు లిటరరీ జర్నల్ సంయుక్త సంపాదకుడిగా పనిచేశాడు. ఇంగ్లీషు భాషలోని విరామ చిహ్నాలైన కామా, ఫుల్స్టాప్, సెమికోలన్లను తెలుగు భాషకు పరిచయం చేసి, వాడటం అలవాటు చేశాడు. ఏ ఊరిలో పనిచేసినా తెలుగు సాహిత్యాభివృద్ధికి చేస్తున్న ప్రయత్నాలు ఆపలేదు.

తెలుగు నేర్చుకోవడంలో పడిన ఇబ్బందుల దృష్ట్యా అందరికి అందుబాటులో ఉండే విధంగా ఛందస్సు, వ్యాకరణ పుస్తకాలు, అనేక నిఘంటువులు రూపొందించాడు. ఇవి క్రొత్తగా భాష నేర్చుకొనేవారి కోసం, విద్యార్థుల కోసం ముద్రింపజేశాడు. 1852లో క్రైస్తవ విజ్ఞాన సంఘం కోరిక మేరకు లిటిల్ లెక్సికన్ నిఘంటువును ప్రచురించాడు. ఈ నిఘంటువులో కోస్తా, రాయలసీమల్లోని వాడుకపదాలు ఎక్కువగా ఉన్నాయి. 1853లో ఇంగ్లీషు- తెలుగు నిఘంటువు, 1854లో తెలుగు ఇంగ్లీషు నిఘంటువులు ఇవి కాక ఇతర భాషల నుంచి గ్రహించిన పదజాలంతో మిశ్రభాషా ఇంగ్లీషు నిఘంటువులు ఇవి కాక ఇతర భాషల నుంచి గ్రహించిన పదజాలంతో మిశ్రభాషా నిఘంటువును, రెవిన్యూ పదజాల నిఘంటువును, 1855 లో అనుదిన పాలనా వ్యవహారంలో ఉపయోగించే

పదాలను సేకరించి జిల్లా నిఘంటువును సమకూర్చాడు. తెలుగు వారికి నిఘంటు ప్రాముఖ్యాన్ని, నిఘంటు రచనారీతిని నేర్పాడు. బ్రౌన్ నిఘంటు నిర్మాణాలు తెలుగు పండితుల మెప్పు పొందాయి.

1854లో స్వచ్ఛంద పదవీ విరమణ చేశాడు. మొత్తం 34 సంవత్సరాలు ఇండియన్ సివిల్ ఉద్యోగిగా తెలుగు ప్రజల మధ్య నివశించి తెలుగు సాహిత్య సముద్ధరణకు సర్వశక్తులు వినియోగించిన బ్రౌన్ తన వద్ద గల వేల గ్రంథాలను గ్రంథాలయాలకు విరాళమిచ్చి 1855లో లండన్ వెళ్ళిపోయాడు. లండన్లో స్థిరనివాసం ఏర్పాటు చేసుకొని ప్రాచీనభాషా విద్వాంసులకు, భారతీయ భాషల గురించి ముఖ్యంగా తెలుగు భాష గురించి తెలుసుకొనదలచిన వారికి సహాయ పడేవాడు. లండన్లో విశ్రాంతి నెరుగని సేవ కొనసాగించాడు. 1857లో తెలుగు వ్యాకరణం ద్వితీయ ముద్రణకు పీఠిక వ్రాయించి పంపాడు. 1860లో తెలుగు పుస్తకాల ద్వారా తెలుగు సాహిత్యంలో వస్తున్న ధోరణులను తెలుసుకునేవాడు. 1865లో లండన్ యూనివర్శిటిలో తెలుగు ప్రొఫెసర్గా పనిచేశాడు. తెలుగు భాషా సాహిత్య వికాసానికి, సముద్ధరణకు అపూర్వమైన సేవలు చేసిన ఛార్లెస్ ఫిలిప్ బ్రౌన్ తన 87వ ఏట 1884 డిసెంబర్ 12న దివంగతుడయ్యాడు.

తెలుగు ప్రాంతానికి ఉద్యోగిగా వచ్చి తెలుగును మాతృభాష కన్నా మిన్నగా ప్రేమించి కష్టాలను, నష్టాలను ఓర్చుకొని ప్రతికూల వాతావరణాన్ని తట్టుకొని తెలుగు భాషా వికాసానికి తన జీవితకాలం అసామాన్యమైన అపురూపమైన సేవలు చేసిన మహనీయుడు ఛార్లెస్ ఫిలిప్ బ్రౌన్. బహు భాషా ప్రావీణ్యుడైనప్పటికీ తెలుగును ఎక్కువగా ప్రేమించి వాడుక భాషలన్నిటిలో "తెలుగు లెస్స" అని విశ్వసించాడు. తన వద్ద పని చేస్తున్న పండితులను గౌరవపూర్వకంగా ఆదరించి వారి సహాయంతో తెలుగు గ్రంధ వికాసానికి తోడ్పడ్డాడు. తెలుగు సాహిత్యాభివృద్ధికి బ్రౌన్ చేసిన సేవ ఆంధ్ర దేశ మంతటా సాంస్కృతిక, సాహిత్య, భాషాభివృద్ధి పునరుజ్జీవనానికి దారి తీసింది. కొన్ని వర్గాలకే పరిమితమైన అనేక గ్రంధాలు విద్యావంతులైన ప్రతీ ఒక్కరూ చదవడానికి అవకాశం ఏర్పడింది. అనేక మంది స్వదేశీ కవులు, రచయితలు, కళాకారులు తమ వాణిని వినిపించడానికి పునాది పడింది. జుంటి తేనెధారల కన్నా తీయనైన తెలుగు భాషా మాధుర్యాన్ని ప్రపంచానికి అందించిన నిస్వార్ధ పరాయణుడు ఛార్లెస్ ఫిలిప్ బ్రౌన్ సదా చిరస్మరణీయుడు. ఆయన నిస్వార్ధ సేవ సదా చిరస్మరణీయం.

ఆధార గ్రంథాలు :

1 ఆంధ్రదేశంలో క్రైస్తవ మిషనరీల సేవ - డా॥ జె. మంగమ్మ

2 తెలుగులో క్రైస్తవ సాహిత్యం - రెవ॥ ఆర్.ఆర్. సుందరరావు

3 తెలుగులో క్రైస్తవ సాహిత్యం - ఆచార్య గుజ్జర్లమూడి కృపాచారి

4 తెలుగు సాహిత్య చరిత్ర - డా॥ ద్వానా శాస్త్రి

5 తెలుగు సాహిత్య సమీక్ష (రెండవ సంపుటం) - డా॥ జి. నాగయ్య

6 బ్రౌన్ జాబులు - బంగోరె

7 సి.పి. బ్రౌన్ చరిత్ర - జానమద్ది హనుమచ్ఛాస్త్రి తెలుగు అకాడమి, హైదరాబాదు

8 సి.పి. బ్రౌన్ - కొత్తపల్లి వీరభద్రరావు ఆంధ్రప్రదేశ్ సాహిత్యఅకాడమి తిలక్రోడ్, హైదరాబాదు.

Dr. Nelaturi Anita Margaret
M.A., M.Phil., Ph.D
Lecturer in Telugu
SRR & CVR Government Degree
College (A) Vijayawada,
NTR District, Andhra Pradesh
Phone no : 8639728322.
E-Maill ID: dr.n.a.margaret@gmail.com

Mob : 8708822674

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड सोसायटी, भिवानी, हरियाणा

Reference No. --------------- **Dated. -------------------------**

पत्रिका का नाम प्रकाशन की अवधि : शोध समालोचन : त्रैमासिक

प्रकाशन की भाषा : बहुभाषी

प्रकाशक व मुद्रक का नाम : डॉक्टर नरेश सिहाग एडवोकेट

राष्ट्रीयता : भारतीय

पता : सचिव, गुगन राम सोसायटी रजिस्टर्ड बोहल भिवानी हरियाणा

संपादक का नाम : डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

राष्ट्रीयता : भारतीय

पता : गुगन राम सोसायटी भवन 202 पुराना हाउसिंग बोर्ड भिवानी हरियाणा

मुद्रण का स्थान : सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094

स्वामित्व : गुगन राम सोसायटी रजिस्टर्ड बोहल भिवानी हरियाणा

मैं डॉक्टर नरेश सिहाग एडवोकेट घोषणा करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिक-से-अधिक जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

डॉक्टर नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गुगन राम सोसायटी रजिस्टर्ड

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

ग्रामीण महिलाओं में शिक्षा की गतिशीलता : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

शोभा मौर्या
(शोधार्थी)
समाजशास्त्र, लखनऊ विश्वविद्यालय

डॉ. वंदना
(शोध पर्यवेक्षक)
बी एस एन वी पी जी कॉलेज चारबाग तखनऊ लखनऊ विश्वविद्यालय

अमूर्त भारत में वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा में समानता का अधिकार तो पहले से प्राप्त था तथा मध्य काल के दौरान महिलाओं की स्थिति में काफी ह्रास हुआ है लेकिन वर्तमान काल में महिलाओं की स्थिति में पुनः सुधार प्रतीत हो रहा है। शिक्षित नारी अपने कर्त्तव्यों एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है एवं राष्ट्र के निर्माण में सक्रिय रूप से अपना योगदान देती है। एक शिक्षित माता अपने बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ के प्रति अधिक सजग होती है। अगर महिलाएं शिक्षित नहीं हुई तो इसका प्रभाव व्यक्ति विशेष महिला या इसके परिवार पर ही नहीं अपितु पूरे देश पर पड़ता है। निरक्षरता देश की प्रगति के विभिन्न पक्षों पर भी नकारात्मक प्रभाव डालती है।

इस शोध के माध्यम से यह जानकारी प्राप्त होती है कि, आज के दौर में ग्रामीण महिलाएं एवं यहां की सरकार महिलाओं की शिक्षा को लेकर कितनी जागरूक है। सरकार द्वारा की गई नीतियों एवं सिफारिशों से शिक्षा में कितने बदलाव हो रहे हैं।

मुख्य शब्द—ग्रामीण महिला, शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, महिला एवं शिक्षा, महिलाओं की स्थिति, महिला सशक्तिकरण एवं शिक्षा की गतिशीलता।

परिचय—ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा देश में एक महत्वपूर्ण विषय है। भारत को गांवों का देश कहा जाता है इसलिए अगर शिक्षा का स्तर गांवों में बढ़ेगा तो पूरे देश की साक्षरता दर भी वृद्धि होगी। शिक्षा मनुष्यों के जीवन को सर्वोत्तम बनाने एवं सामाजिक कल्याण को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा के माध्यम से महिलाओं के अंदर आत्मविश्वास जाग्रत होगा। जिससे महिला सशक्तिकरण की भूमिका का उद्देश्य (लैंगिक असमानताओं को खत्म करना, सामाजिक मानदंडों और रूढ़ियों को चुनौती देना और जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं के लिए समान अवसर) भी पूर्ण हो जाएगा। शिक्षित महिलाओं के पास अपने जीवन के बारे में उचित निर्णय लेने, आर्थिक अवसरों का लाभ उठाने, राजनीतिक प्रक्रियाओं में भाग लेने और अपने अधिकारों के हक में बोलने की क्षमता होती है। जिससे महिला शिक्षा की दर में वृद्धि होती है।

अतः परिचय के माध्यम हम कह सकते है कि,ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सकारात्मक सुधार हो रहे है एवं महिलाएं शिक्षा के प्रति अधिक आकर्षित हो रही है।

ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा की स्थिति का विश्लेषण—ग्रामीण क्षेत्रों में भी महिलाएं शिक्षित होकर राष्ट्र निर्माण में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रही हैं। जब भारत स्वतंत्र नहीं हुआ था उसके पहले से महिला शिक्षा एवं महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए आवाज उठनी शुरू हो गई। राजा राम मोहन राय ने महिला शिक्षा एवं महिलाओं के सशक्तिकरण

में महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं। ऐनी बेसेंट ने भी महिलाओं के हित और शिक्षा के लिए अनेक कार्य किए है।उनका कहना था कि शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण विकास करने में सहायक है।

19 वीं शताब्दी के पुनर्जागरण एवं सामाजिक क्रान्ति व नारी उत्थान के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फुले ने शोषण मुक्त स्वस्थ समाज की स्थापना हेतु अपना अमूल्य योगदान दिया। दलित एवं सभी वर्गो की स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु शिक्षा के प्रचार-प्रसार को प्रोत्साहन करना आवश्यक मानते हुए पाठशालाएं, कन्या पाठशालाएं एवं भारत की प्रथम रात्रि पाठशाला, महिला छात्रावास आदि खुलवाये।[1]

लाल तथा शर्मा, (2015) के अनुसार—सन् 1921 तक देश में बालिकाओं के लिए 22,654 शिक्षण संस्थाएं खोली जा चुकी थीं। सन् 1927 में प्रथम अखिल भारतीय महिला सम्मेलन हुआ। वर्ष 1936 में अखिल भारतीय स्त्री संघ का स्थापना की गई, और इस संघ के माध्यम से स्त्री शिक्षा में उन्नति को आगे बढ़ाया गया। सन् 1946-47 तक भारत में 28,196 बालिका शिक्षा संस्थानों की स्थापना हो चुकी थी। इनमें 21,479 प्राथमिक विद्यालय, 2,370 माध्यमिक विद्यालय, 59 महाविद्यालय तथा 4,288 व्यावसायिक शिक्षा संस्थाएं थीं और इनमें पढ़ने वाली छात्राओं की संख्या लगभग 42 लाख थी।[2]

हालांकि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी महिलाओं के सशक्तिकरण एवं शिक्षा संबंधी पहल तथा योजनाएं सुचारू रूप से निरंतर बढ़ती ही गई। जिससे महिलाओं की स्थिति एवं शिक्षा में सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

एक स्त्री परिवार की वह जड़ होती है जो परिवार को अपने अनुसार ढालने की कोशिश करती है। इसलिए महिला का शिक्षित होना बहुत आवश्यक है। लड़कियों के शैक्षिक स्तर में सुधार से युवा महिलाओं के स्वास्थ्य और आर्थिक भविष्य पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है, जो बदले में उनके पूरे समुदाय की संभावनाओं को बेहतर बनाता है।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के अनुसार—(1948-1949) "अगर महिलाएं शिक्षित नहीं होंगी तो पुरुष भी शिक्षित नहीं हो सकते। यदि सामान्य शिक्षा पुरुष तथा स्त्रियों के लिए सीमित रखी जानी हो, तो यह काम स्त्रियों को सौंप दिया जाना चाहिए, इससे यह अधिक निश्चितता से आगामी पीढ़ी को हस्तांतरित की जा सकेगी।"[3]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020)—भारत सरकार सभी लड़कियों और साथ ही ट्रांसजेंडर छात्रों को गुणवत्तापूर्ण और न्यायसंगत शिक्षा प्रदान करने की दिशा में देश की क्षमता का विकास करने हेतु एक जेंडर समावेशी निधि का गठन करेगीं। महिला और ट्रांसजेंडर बच्ची एक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने की राहे से यह प्रावधान बेहद महत्वपूर्ण है। जैसे स्वच्छता व शौचालय से संबंधित सुविधाएं।

साइकिल व सशर्त नकद हस्तांतरण, आदि)। अन्य एसईडीजी की शिक्षा तक पहुँच से सम्बंधित समान समस्याओं के समाधान हेतु इसी प्रकार की समावेशी निधि की व्यवस्था की जायेगी।

संक्षेप में, इस नीति का उद्देश्य किसी भी लिंग या अन्य सामाजिक अर्थिक रूप से वंचित समूह के बच्चों के लिए शिक्षा (व्यावसायिक शिक्षा समेत) तक पहुंच में शेष असमानता को समाप्त करना है।[4]

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार—

सारणी- 01

प्राथमिक शिक्षा	- नामांकन दर : 93.3% (2019-20)
	- ड्रॉपआउट दर : 17.9% (लड़कियां, 2019-20)
माध्यमिक शिक्षा	- नामांकन दर : 81.3% (2019-20)
	- ड्रॉपआउट दर : 17.1% (लड़कियां, 2019-20
तृतीयक शिक्षा	- सकल नामांकन अनुपात (GER) : 25.8% (2019-20)
	- लिंग समानता सूचकांक (जीपीआई) : 1.00

	(2019-20)
लड़कियों की बाधाएं	- बाल-बाल विवाह प्रचलन : 27% (18 वर्ष से पहले, 2021 तक) - ग्रामीण क्षेत्रों और हाशिए पर पड़े समुदायों में सीमित पहुंच।
सरकारी पहल	- बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ अभियान - बालिका शिक्षा अभियान - माध्यमिक शिक्षा के लिए लड़कियों को प्रोत्साहन की राष्ट्रीय योजना
शिक्षा की गतिशीलता में सहायक कारक	- सामाजिक कारक, आर्थिक कारक, सांस्कृतिक कारक एवं संवैधानिक कारक।
चुनौतियां	- सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ - ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे की कमी - सांस्कृतिक एवं पारंपरिक मानदंड

2020-21 के स्कूल के आंकड़ों की जानकारी[5]

सारणी संख्या-01 के अनुसार—भारत में प्राथमिक शिक्षा में विद्यालयों में बेटियों की नामांकन दरः 93.3% (2019-20) थी, तथा विद्यालय से ड्रॉपआउट दर : 17.9% (लड़कियां, 2016-20) थी। माध्यमिक शिक्षा में नामांकन दरः 81.3% (2019-20)थी एवं ड्रापआउट दर 17.1% थी। वहीं तृतीयक शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात (GER) : 25.8% (2019-20) था एवं लिंग समानता सूचकांक (जीपीआई)ः 1.00 (2019-20) था।

लड़कियों एवं महिलाओं के विकास में बाधक तत्व बाल-बाल विवाह प्रचलनरू 27% (18 वर्ष से पहले,था एवं ग्रामीण क्षेत्रों और हाशिए पर पड़े समुदायों में सीमित पहुंच थी।

महिलाओं की शिक्षा के लिए सरकार द्वारा की गई पहल में शामिल सिफारिशें—बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ अभियान,बालिका शिक्षा अभियान, माध्यमिक शिक्षा के लिए लड़कियों को प्रोत्साहन की राष्ट्रीय योजना आदि।

शिक्षा की गतिशीलता में सहायक कारकों में सामाजिक कारक, आर्थिक कारक, सांस्कृतिक कारक एवं संवैधानिक कारक प्रमुख है।

ग्रामीण महिलाओं के जीवन में आने वाली चुनौतियों में सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ

ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे की कमी,सांस्कृतिक एवं पारंपरिक मानदंड शामिल है।

Ministry of education 2011 की जनगणना के अनुसार—ग्रामीण क्षेत्रों में 77.15% की ग्रामीण पुरूष साक्षरता दर और 57.93% की ग्रामीण महिला साक्षरता दर के साथ साक्षरता दर 67.77% है, जबकि शहरी क्षेत्रों में 88.76% की शहरी पुरूष साक्षरता दर और 79.11% की शहरी महिला साक्षरता दर के साथ साक्षरता दर 84.11% है।[6]

शिक्षा की गतिशीलता में सहायक कारक—ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में गतिशीलता एवं महिला शिक्षा में सुधार करने हेतु महत्वपूर्ण कारक निम्नलिखित है—

1. सामाजिक कारक—ग्रामीण समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव, बाल विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा आदि जैसे कई सामाजिक मुद्दे महिला के विकास में बाधा उत्पन्न करते थे।

मोहपात्रा, (2015)—वैदिक काल के अंत में महिलाओं को सामाजिक और धार्मिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। उन्हें सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यों में भाग लेने की अनुमति नहीं थी। धीरे-धीरे समय के साथ महिलाओं की स्थिति इतनी गिर गई कि परिवार में लड़की का जन्म दुर्भाग्य माना जाने लगा। लेकिन धीरे धीरे समाज की रुग्णता में अब सुधार आने लगा है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी अब शिक्षा की लहर अपने चरम सीमा में प्रवाहित हो रही है।[7]

2. आर्थिक कारक—मध्य एवं स्वतंत्रता काल से पूर्व भारत की अर्थव्यवस्था की स्थिति अत्यंत निराशाजनक थी।लोग ज्यादातर कृषि पर निर्भर थे।ऐसे में लोगों को दो वक्त के भोजन के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी,फिर भी लोग कभी कभी एक वक्त का भी भोजन इकट्ठा नहीं कर पाते थे। लेकिन वर्तमान हालात में भी असीम सुधार है,भोजन के लिए भी इतनी तंगी नहीं है। इसके अलावा सरकार भी छात्रवृति, मिड डे मील,एवं और भी कई योजनाएं छात्र/छात्राओं की आर्थिक समस्याओं को दूर करने में योगदान दे रही। जिसके कारण शिक्षा के क्षेत्र में सुदृढ़ता आ रही है।

3. सांस्कृतिक कारक—भारतीय संस्कृति में महिला को शिक्षा का पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

महिलाओं को घरेलु कार्यों के अतिरिक्त ललित कलाओं आदि में भी निपुण किया जाता था। वैदिक काल में धार्मिक सभाएं हुआ करती थी। धर्मशास्त्रों पर वाद-विवाद हुआ करते थे। ऐसे वाद-विवादों में उस समय प्रसिद्ध दार्शनिक भाग लिया करते थे। उस समय के आठ प्रसिद्ध दार्शनिकों में से एक महिला दार्शनिक थी – ब्रह्मवादिनी गार्गी।[8]

लेकिन मध्य काल में महिलाओं को कलंक एवं जागीर समझा जाने लगा जिसे छुपा कर रखना अच्छा माना जाता था। बौद्ध काल में शुरुआती हालात तो ठीक नहीं थे लेकिन बाद में महिला शिक्षा का सुचारू रूप से विकास हो गया।

बौद्ध धर्म में शिक्षा ग्रहण करने वाली महिलाओं को भिक्षुकी कहा जाता था।धीरे धीरे हालात सुधारने लगे और महिला शिक्षा में लगातार वृद्धि होने लगी। महिलाओं को शिक्षित करने से एवं उन्हें विभिन्न सामाजिक कलंकों को मिटाने और एक प्रगतिशील और समावेशी समाज विकसित करने में सहायता प्राप्त हो रही है।

4. संवैधानिक कारक—संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के तहत, पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित हैं। इसके अलावा अनुच्छेद 14, 15, और 16 शामिल हैं जो अनुच्छेद समानता के अधिकार की स्थापना करते हैं और लिंग के आधार पर भेदभाव को रोकते हैं। जिससे महिलाएं शिक्षा के प्रति अधिक उत्साहित होती है क्योंकि उनका आत्मविश्वास दृढ़ हो जाता है कि उन्हें किसी न किसी परिप्रेक्ष्य में नौकरी प्राप्त हो जाएगी।

महिलाओं के लिए भारत सरकार द्वारा जारी किए गए सराहनीय प्रयास

1. छात्रवृति का प्रावधान : छात्रवृत्ति ग्रामीण महिलाओं को मानसिक रूप से सुदृढ़ बनाता है। जिससे महिलाएं शिक्षा की ओर अधिक आकर्षित हो रही है। छात्रवृत्ति से प्राप्त राशि से महिलाएं पुस्तकें, लेखन सामग्री एवं यूनिफॉर्म जैसे खर्चे आसानी से पूर्ण हो जाते है।

2. लिंग-संवेदनशील पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री : लिंग-संवेदनशील पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री को बढ़ाने के प्रयास किए करते हैं जिससे समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा मिलता है एवं समाज में व्याप्त रूढ़िवादी विचारधारा समाप्त होती है।महिलाओं को समानता का अधिकार प्राप्त होगा है, जिससे समावेशी एवं सशक्त शिक्षण वातावरण सुदृढ़ होता है।

3. समाज में महिलाओं की सुनिश्चित भागीदारीः समाज में महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रही है। सरकार द्वारा किए गए प्रयासों एवं महिलाओं के हित में निकाली गई योजनाओं से महिलाओं में शिक्षा की भावना एवं उनका दृढ़ निश्चय सशक्त होता जा रहा है। सरकार द्वारा किए गए कुछ महत्वपूर्ण प्रयास– नारी शक्ति वंदन अधिनियम, भारत में महिलाएं, सरकार में महिलाएँ, महिलाओं का मताधिकार, महिला आरक्षण विधेयक (2010), भारत में आरक्षित राजनीतिक पद, संयुक्त महिला मोर्चा, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन आदि।

महिलाओं की शिक्षा के लिए सरकार द्वारा जारी की गई प्रमुख योजनाएं

1. बेटी पढ़ाओ बेटी बचाओ योजना : माता पिता अपनी बिटिया की शिक्षा या विवाह के हेतु फिक्स डिपॉजिट(FD) का विचार कर सकते है। जो भविष्य में बेटी के काम आ सकती है।

2. बालिका शिक्षा अभियानः केंद्र सरकार/राज्य सरकार महिलाओं एवं बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अथक प्रयास करती जा रही है। जिससे महिला शिक्षा में काफी बढ़ोत्तरी नजर आ रही है।

3. कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना : इस योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों के वंचित वर्ग की लड़कियों के लिए स्कूल उपलब्ध कराती है। जिससे बालिकाओं को स्कूलों में मुफ़्त शिक्षा, आवास, और भोजन की सुविधा उपलब्ध होती है।

4. लाडली योजना : लाडली योजना के तहत, लड़कियों की शैक्षिक और आर्थिक स्थिति में सुधार किया जाता है।

5. CBSE उड़ान योजना : 11 वीं और 12 वीं कक्षा में छात्राओं के लिए मुफ्त पढ़ाई के उपकरण एवं ऑनलाइन जैसे वीडियो अध्ययन सामग्री आदि की भी मुफ्त कक्षाएं उपलब्ध कराई जाती है।

6. सुकन्या समृद्धि योजना : इस योजना के तहत माता-पिता या कानूनी अभिभावक कन्या के नाम से खाता खोल सकते हैं। जिसमें न्यूनतम जमा रु. 250/- होनी अनिवार्य है एवं 21 वर्षों के बाद राशि रु. 1.5 लाख में परिपक्व हो जायेगी।

शोध का उद्देश्य एवं आवश्यकता—इस शोध पत्र का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा की स्थिति का विश्लेषण करना एवं ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा के लिए नीतियों और कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना है। भारत सरकार द्वारा ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा के लिए किए गए प्रयासों एवं योजनाओं की पहचान करना है। प्रस्तुत शोध पत्र वर्तमान समय में ग्रामीण महिलाओं की सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका को समझने मदद करेगा।

शोध प्रश्न—भारत में ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता दर की स्थिति में कितने बदलाव हुए हैं, एवं भारत सरकार के द्वारा किए गए प्रयास महिलाओं को शिक्षा एवं सशक्तिकरण के लिए कितना प्रोत्साहित कर रहे है?

शोध विधि—प्रस्तुत शोध अध्ययन में व्याख्यात्मक वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध विधियों का प्रयोग किया गया है तथा इस शोध पत्र को अधिक प्रासंगिक बनाने के लिए द्वितीयक आंकड़ों से प्राप्त जानकारी से सारणी का प्रयोग भी किया गया है।

तथ्य संकलन की विधियां— प्रस्तुत शोधपत्र पत्रिकाओं, पुस्तकों, विभिन्न गैर सरकारी संगठनों, सरकारी और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और वेबसाइट्स की रिपोर्ट में प्रकाशित मौजूदा साहित्य की समीक्षा के रूप में द्वितीयक स्रोतों के आधार पर तर्क विकसित करता है।

निष्कर्ष एवं भविष्य की संभावनाएं—प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में गतिशीलता का अध्ययन किया गया है और यह निष्कर्ष निकाला गया कि,ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा एक महत्वपूर्ण विषय है, जो उनके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं संवैधानिक कारक विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। महिलाओं को शिक्षित और सशक्त बनाना एक प्रगतिशील परिवार, समाज और राष्ट्र के निर्माण में महत्पूर्ण योगदान करता है। एक शिक्षित महिला कई लोगों के जीवन को बेहतर बनाने में मदद कर सकती है। इसलिए, भारत को ग्रामीण महिलाओं के लिए शिक्षा और रोजगार के अवसरों का निर्माण करके उन्हें सशक्त बनाने की आवश्यकता है। हालांकि आधुनिक काल में ग्रामीण महिलाओं तक भी शिक्षा की पहुंच सुगम हो गई है। शिक्षा ग्रामीण महिलाओं को अपने अधिकारों एवं हक के बारे में जागरूक करती है एवं उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाती है, और समाज में उनकी स्थिति को सुधारती है। ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता दर अनवरत बढ़ती ही जा रही है। हमारी सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति,एवं विभिन्न समाज सुधारकों द्वारा बढ़ाए गए कदम सकारात्मक परिणाम दे रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. Journal of Acharaya Narendra Dev Research Institute ISSN: 0976-3287 Vol-28(Jun 2019-Aug 2010) स्त्री शिक्षा में महात्मा ज्योतिबा फुले व सावित्रीबाई फुले का योगदान(मनोज कुमार)
2. लाल, आर. बी. तथा शर्मा, के. (2015), भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं, मेरठ : आर. लाल बुक डिपो, पृ. 545-558.
3. शैक्षिक उन्मेष शिक्षा जगत की शोध एवं विचार केंद्रित पत्रिका खंड-6, अंक-2; माघ-चैत्र, 2080/जनवरी-मार्च, 2023 केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (सुमित गंगवार—भारत में स्त्रियों तक शिक्षा की पहुँच स्थिति, चुनौतियाँ तथा समाधान)
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (भारत सरकार)
5. मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार—
6. https://www.education.gov.in/hi/adult-education-hindi
7. Mohapatra, H- (2015)- Status of Women in Indian Society- Journal of Research in Humanities and Social Science, 3(6)] 33-36- Retrieved January 04, 2019 from http://www.questjournals.org/ jrhss/papers/vol3-issue6/F363336-pdf
8. भारत में महिलाओं की स्थिति वैदिक काल के संदर्भ में एक अध्ययन (डॉ. राजकुमार सिंह बोलिया) सह-आचार्य, समाजशास्त्र, मा.ला.व.रा. महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.)

ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा चुनौतियाँ, अवसर और सुधार के लिए रणनीतियाँ : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

तबस्सुम
(शोधार्थी) लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
Email-fatimabegum-lko121@gmail.com

अमूर्त भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षा कई वर्षो से चिंता का विषय रही है। महिलाओं को शिक्षा के माध्यम से सशक्त बनाना आवश्यक है। यह शोध न केवल समस्याओं की पहचान करने का प्रयास करेगा बल्कि महिलाओं की शिक्षा में सुधार के व्यावहारिक समाधान और रणनीतियाँ भी सुझाएगा। आप इस महत्वपूर्ण अध्ययन के जरिए न केवल ग्रामीण महिलाओं की स्थिति को उजागर करेंगे, बल्कि उनके लिए बेहतर भविष्य की दिशा भी तय कर सकेंगे। यह शोधपत्र ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के लिए श्रेष्ठ सशक्तिकरण है।

मुख्य शब्द—ग्रामीण महिला, महिला सशक्तिकरण, शिक्षा एवं लैंगिक असमानता।

प्रस्तावना—किसी भी राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। महिला और पुरुष दोनों समान रूप से कार्य करते हैं और समाज को प्रगति की ओर ले जाते हैं। दोनों की समान भूमिका को देखते हुए यह आवश्यक है कि उन्हें शिक्षा सहित अन्य सभी क्षेत्रों में समान अवसर प्रदान किया जाए क्योंकि यदि कोई एक पक्ष भी बेकार होगा तो सामाजिक प्रगति संभव नहीं होगी, इसके बावजूद भी महिलाओं की प्रस्थिति उच्च नहीं हुई। उन्हें कमजोर, अबला एवं कामुकता की एक वस्तु के रूप में ही समझा गया। इस पुरुषप्रधान समाज में चहारदीवारी के अंदर रहने वाली ग्रामीण महिलाओं को ही उच्च स्थिति प्राप्त होती है, अगर महिला काम पर निकलती भी है तो घर के मर्दो के साथ, लंबे घूंघट और **पिछौरी** *(2.5 मीटर का सफेद सूती कपड़ा जिसे सारी पहनने के बाद ऊपर से शॉल की भांति पहना जाता है।)* ओढ़ कर कर निकलती है।

आज के आधुनिक दौर में महिलाओं और बेटियों की स्थिति में काफी सुधार आ रहा है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों पुरुषों का ही वर्चस्व कायम है,जो महिलाओं को आज भी अपने हाथ की कठपुतली समझते है। कभी भी ये नहीं सोचते की ये भी इंसान है, इन्हें भी हक है अपनी जिंदगी जीने का अपने लिए सही फैसले लेने का, अतः हम कह सकते हैं कि जाके पाँव न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई।

हालांकि भारत सरकार भी महिलाओं की स्थिति सुधारने का अथक प्रयास कर रही हैं लेकिन आज भी ग्रामीण महिलाओं की सुंदरता का पता उसके कामकाज में दक्ष एवं संस्कारी होने से लगाया जाता है जहां पर घर के बेटे की कोई जिम्मेदारी नहीं होती लेकिन अगर बेटी स्कूल या कॉलेज भी जाती है,तो उसे घर के सारे काम के साथ—साथ खेतों में भी अपना हाथ बटाना पड़ता हैं। फिर भी उनकी लगन शिक्षा के लिए कम नहीं होती है, वो सब कामों के बावजूद भी स्कूल एवं कॉलेज जाती है लेकिन इस पुरुषप्रधान समाज के द्वारा उनकी पढ़ाई फिर भी बंद करा दी जाती है,यह कहकर कि तुम्हे आगे पढ़कर कौन सा कलेक्टर बनना है, करना तो चूल्हा-चौका ही है।

भारत में महिलाओं की स्थिति

1. वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति—भारत में वैदिक काल से ही महिलाओं की स्थिति उच्च मानी जाती थी। भारतीय धर्मग्रंथों के अनुसार भारत में कन्याओं को मां दुर्गा का स्वरूप और महिलाओं को मां लक्ष्मी का स्वरूप माना जाता है। इसके साथ ही इन्हे शिक्षा प्राप्त करने और पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। वैदिक काल की मान्यता थी कि "जिस घर में महिलाओं और बेटियों की हंसी की किलकारी गूंजती है वह घर स्वर्ग के समान होता होता था।" इस काल में गार्गी, मैत्रेयी अपाला एवं लोपमुद्रा आदि महान विदुषी महिलाओं ने भी जन्म लिया था।

मनु (मनुस्मृति)—यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता (जहाँ नारियों की पूजा की जाती है, वहाँ देवता भी प्रसन्न होते हैं।)[1]

2. मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति—मध्यकाल में महिलाओं और बच्चियों को अभिशाप समझा जाने लगा। जन्मते ही बच्चियों को मार देना, बाल विवाह, सती प्रथा, दास प्रथा और दहेज प्रथा जैसी घातक प्रथाओं ने जन्म लिया।

इरफ़ान हबीब (मध्यकालीन भारतः सभ्यता का अध्ययन—2008) चौदहवीं शताब्दी की शुरुआत में दिल्ली के बाज़ार में घरेलू काम के लिए एक महिला दास की कीमत एक दुधारू भैंस से ज्यादा नहीं थी। सुल्तान फिरोज तुगलक के पास 180,000 गुलाम थे, जिनमें से 12,000 कारीगर के तौर पर काम करते थे। उनके प्रमुख मंत्री खान जहान मकबूल के पास 2000 से ज़्यादा महिला दासियाँ थीं।[2]

हकीम के अनुसार— 1850 के दशक से महिलाओं की पूर्णकालिक रोजगार दर लगभग स्थिर रही है, और नौकरियों और महिला श्रम बाजार भागीदारी दोनों में वृद्धि का कारण भागीदार महिलाओं के अंशकालिक काम में वृद्धि हो सकती है।[3]

3. आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति—आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति में कुछ हद तक सुधार हुआ है लेकिन उन्हें वैदिक अध्ययन और प्रदर्शन की पहुंच से वंचित किया जाता है। इस काल में महिलाओं को शिक्षा का अधिकार तो प्राप्त है,लेकिन ग्रामीण समुदाय में पुरुष समाज से शिक्षा की अनुमति लेनी आवश्यक है।

मेरी वरिष्ट ज्योतिमा अवस्थी (जो हमेशा कक्षा में पहला स्थान लाती थी) ने कॉलेज पढ़ाई के बाद अपनी पढ़ाई को छोड़ दिया क्योंकि वह अपने बड़े भाई को आगे बढ़ता हुआ देखना चाहती थी खुद की पढ़ाई बंद कर के उनसे छोटा सा कोचिंग संस्थान शुरू किया और उससे प्राप्त रुपए अपने भाई को दिए। अगर उसने अपनी पढ़ाई जारी रखी होती तो मुझे 100%उम्मीद थी कि उसकी अच्छी नौकरी लगती और उसका भविष्य सुधर सकता था।

लेकिन सच में महिला होना बहुत ही मुश्किल काम है ऐसे त्याग सिर्फ एक मां बहन या बेटी ही कर सकती है। चाहे मां बनकर बच्चों के लिए अपनी जिंदगी न्योछावर करना हो,पत्नी बन कर खुद को पति की दासी स्वीकारना हो।

"एक भारतीय महिला का स्वयं का कोई अस्तित्व ही नहीं होता वह कभी अपने लिए नहीं बल्कि अपनों के लिए जीती है।"

ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में आने वाली प्रमुख चुनौतियां

1. लैंगिक असमानता— आधुनिक काल में ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा तक पहुँच बाधित हो रही है। स्कूल जाते समय या शैक्षणिक संस्थानों में हिंसा और उत्पीड़न का डर या अनहोनी की आशंका के कारण परिवार के सदस्य लड़कियों को अपनी पढ़ाई जारी रखने से रोकते है। यह डर ग्रामीण समाज में इतना अधिक व्याप्त है, कि महिलाओं एवं लड़कियों को बाहर निकलने के लिए भी अनुमति की भी आवश्यकता होती है।

लेओन ट्राटस्की -पुरुषोचित अहंवाद की कोई सीमा नहीं है, संसार की समझने के लिये हमें इसको स्त्रियों चक्षुओं से देखना पड़ेगा।[4]

इंटर की छात्रा कल्पना बिष्ट का कहना है कि उन्हें स्कूल जाने से पहले व घर आने के बाद घर के सारे गृह कार्य भी करने होते हैं, लेकिन घर के पुरुष वर्ग को गृह कार्य करने का परिवार के किसी भी सदस्यों द्वारा कोई भी आदेश नहीं दिया

जाता है। ज्यादातर कार्य महिलाओं द्वारा ही किए जाते है, चाहे वह खेतों का हो या जंगलों का, वहीं दूसरी ओर महिलाओं को वह दर्जा नहीं दिया जाता है जिसकी वो हकदार होती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों को शांत माना जाता है परंतु ऐसा कदापि नहीं है कि वहां हिंसा नहीं होती है, लेकिन ऐसा कह सकते है कि इनके प्रति आवाज नहीं उठायी जाती है। जिसके कारण महिलाओं को शाब्दिक और शारीरिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है। यह हिंसा कभी परंपरा तो कभी चरित्र के नाम पर की जाती है। बेटे के जन्म के समय जश्न व बेटी के जन्म पर सामान्य व्यवहार होता है तो कई बार बेटी को जन्म लेने से पहले ही भ्रूण हत्या कर दी जाती है।[5]

2. सामाजिक भेदभाव— पितृसत्तात्मक समाज के कारण पूर्ण अधिकार पुरुषों को ही प्राप्त होते हैं।जिसमे बेटी घर से लेकर खेतों तक काम करने के साथ ही कामचलाऊ शिक्षा प्राप्त कर लेंगी लेकिन घर का बेटा उच्च शिक्षा प्राप्त करेगा।

Simone de Beauvoir (The Second Sex)

नारी का जन्म नहीं होता बल्कि उसे समाजीकरण के द्वारा नारी बनाया जाता है। पुरुष महिलाओं पर अत्याचार करते हैं एवं परिवार को कायम रखना चाहते हैं, जिससे उनकी पैतृक संपत्ति बरकरार रह सके। वह प्राचीन ग्रीस में महिलाओं की स्थिति की तुलना रोम से करती हैं। ग्रीस में, स्पार्टा जैसे क्षेत्रों को छोड़कर, जहाँ महिलाओं की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबंध नहीं थे लेकिन अन्य क्षेत्रों में महिलाओं के साथ लगभग गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता था।[6]

Mary Wollstonecraft (A Vindication of the Rights of Woman) के अनुसार—महिलाओं को ष्पुरुषों के खिलौने, उनके झुनझुने केष रूप में बनाया गया है, और यह उनके कान में तब भी बजता रहना चाहिए, जब भी वह तर्क को खारिज कर देती है, मनोरंजन करना शुरू कर देती है।"[7]

3. ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी कुप्रथाओं का दौर—

राजस्थान के नागौर जिले में 21 साल की ग्रेजुएट सुमन ने सुसाइड कर लिया था एवं अपनी मौत का जिम्मेदार समाज और आटा-साटा जैसी कुप्रथा को बताया है। साथ ही उसने सभी भाइयों को कसम दी कि कोई भी अपनी बहन की चिता पर अपना घर नहीं बसाए।आटा-साटा एक ऐसी कुप्रथा है, जहां लड़कियों की दो नहीं तीन से चार परिवारों के बीच सौदेबाजी होती है। वह भी सिर्फ इसलिए ताकि उनका नकारा और उम्रदराज बेटे की शादी हो जाए और उनके घर-परिवारों में दूसरे जो लड़के हैं, जिनकी किसी कारण से शादी नहीं हो पा रही है उनकी भी शादी हो जाए।[8]

4. दहेज प्रथा—दहेज प्रथा समाज की एक घातक बीमारी है, जो इतने सख्त कानून के बावजूद भी में जिंदा है।दहेज प्रथा अपने साथ—साथ झूठ, बेईमानी, धोखाधड़ी, भावनात्मक उत्पीड़न जैसी अन्य बीमारियां लेकर चलती है। जब व्यक्ति दहेज देने में असमर्थ हो जाता है तो समाज में और भी कुप्रथाओं को जन्म देने लगता है जैसे—कन्या भ्रूण हत्या, जन्मते ही बच्चियों को मार देना, बेटियों को सिर का बोझ समझना आदि। दहेज के कारण प्रतिदिन बेटियों एवं बहुओं की हत्याएं होती हैं।

"मान्या राठौर के प्रकाशित एक लेख में यह दावा किया गया कि 2022 में भारत के उत्तरी राज्य उत्तर प्रदेश में दहेज हत्याओं की संख्या सबसे अधिक थी, जहां दो हजार से अधिक मामले दर्ज किए गए। उस वर्ष देश में दहेज से संबंधित हत्याओं के छह हजार से अधिक मामले दर्ज किए गए। अपराध की यह श्रेणी भारतीय दंड संहिता की धारा 304-बी के दायरे में आती है।[9]

NCRB रिपोर्ट के अनुसार—2022 में दहेज से होने वाली हत्या की सबसे अधिक 2,218 घटनाएं उत्तर प्रदेश में हुई, इसके बाद बिहार (1,057) और मध्य प्रदेश (518) का स्थान रहा।

5. शीघ्र विवाह—भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी लड़कियों के शीघ्र विवाह होने के कारण उनकी शिक्षा में बाधा उत्पन्न होती है।

ब्लूम और रेड्डी (1986)—हिंदुओं में, माता-पिता अपनी बेटी की शादी यौवन की शुरुआत से पहले ही कर देना पसंद करते हैं क्योंकि हिंदू संस्कृति में विवाह में 'पवित्रता' एक शर्त है।[10]

7. आर्थिक संसाधनों की कमी—अधिकांश ग्रामीण आज भी अपनी आजीविका चलाने के लिए परिवार सहित खेतों

में श्रम, कुटीर उद्योग एवं जजमानी प्रथा से प्राप्त अनाज से अपना जीवनयापन कर रहे है।उनका विचार है की परिवार में जितनी अधिक संख्या होगी आय में वृद्धि भी उतनी अधिक होगी। उनकी आय में वृद्धि का तो पता नही लेकिन परिवार में आर्थिक संसाधनों की कमी जरूर आ जाती है, जिसके कारण महिलाओं की ही शिक्षा में बंदिशे आ जाती है, क्योंकि ग्रामीण समाज में आज भी यह मिथक व्याप्त है, कि लड़कियां पराया धन होती है, और लड़का शिक्षित होकर उनके बुढ़ापे की लाठी बनेगा तो महिलाओं को क्या ही शिक्षित करना है।

के.एम. पणिक्कर के अनुसार-मूल रूप से हिंदू सामाजिक व्यवस्था इस धारणा पर चलती है कि बेटी कभी भी उसकी नहीं होती। पुराने विचारकों के अनुसार, परिवार में जन्मी लड़की एक आभूषण की तरह होती है जिसे सही मालिक के मांगने पर उसे गिरवी रख दिया जाता है।[11]

आधुनिक युग में ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में आने वाले सुधार/अवसर

- शिक्षा की पहुंच में वृद्धि (स्कूल एवं कॉलेज की संख्या में वृद्धि, सर्व शिक्षा अभियान, 14 वर्ष तक के बच्चे को मुफ़्त शिक्षा आदि)
- महिला शिक्षकों की बढ़ोत्तरी (शिक्षा के प्रति महिला की जागरूकता आदि)
- शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार–बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना, कन्या पाठशाला से लेकर महिला विश्वविद्यालय तक की संख्याओं में वृद्धि)
- व्यावसायिक शिक्षा के अवसर (प्रत्येक व्यवसायिक क्षेत्र में समानता का अवसर एवं महिला आरक्षण, छात्रवृति का प्रावधान)
- डिजिटल शिक्षा की पहुंच–(ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफ़ॉर्म, मोबाइल शिक्षा ऐप, ई-लर्निंग पोर्टल)
- सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए किए जा रहे अथक प्रयास (कस्तूरबा गांधी विद्यालय योजना, सीबीएसई उड़ान छात्रवृत्ति कार्यक्रम, माध्यमिक शिक्षा के लिए लड़कियों को प्रोत्साहन की राष्ट्रीय योजना, किशोरियों के सशक्तिकरण के लिए राजीव गांधी योजना-सबला योजना एवं वन स्टॉप सेंटर आदि)

अध्ययन की आवश्यकता–संजीव ने अपने लेख में लिखा है कि–

संजीव (मुझे पहचानो? 2020)–सोचिए...! क्योंकि आप इंसान हैं, आप सोच सकते हैं, जानवर नहीं सोच सकते। इसका संबंध यौन पवित्रता, गर्भ पवित्रता या रक्त शुद्धता से भी है, लेकिन इसके लिए केवल महिलाओं को ही जिम्मेदार क्यों ठहराया जाना चाहिए? ये बातें सिर्फ हिंदुओं पर ही नहीं बल्कि मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी पर लागू होती हैं। ईश्वर या प्रकृति की रचना में कोई किसी का गुलाम नहीं है, फिर यह मॉब लिंचिंग, ऑनर किलिंग जैसी बर्बर गुंडागर्दी क्यों, जिसकी शिकार सिर्फ महिलाएं होती हैं, आप उन पर सती का मूल्य कैसे थोप सकते हैं जो आप स्वयं नहीं कर सकते।[12]

अतः हम कह सकते है,कि इस शोध पत्र का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं की समाज में स्थिति एवं उनकी शिक्षा में आने वाली चुनौतियों तथा अवसरों का पता लगाना है,जिससे महिलाओं की स्थिति में सुधार हो सके।

अध्ययन का उद्देश्यः ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली चुनौतियों की पहचान करना तथा उनकी शिक्षा में सुधार के लिए रणनीतियों को विकसित करना है। इसके साथ ही साथ ग्रामीण महिलाओं के लिए शिक्षा के अवसरों की पहचान करना एवं डिजिटल शिक्षा, सरकारी योजनाओं, और गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका का विश्लेषण करना।

शिक्षा की पहुंच को बढ़ाने, गुणवत्ता में सुधार करने एवं महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए कार्यक्रमों का विकास करना है।

परिकल्पना–

- क्या ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सुधार करने के लिए वर्तमान रणनीतियाँ प्रभावी नहीं हैं?
- अगर ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में समानता आ जाए तो क्या ये महिलाएं भी राष्ट्र निर्माण में बराबर का योगदान

प्रदान करेंगी?

शोध अभिकल्प– इस शोध अध्ययन को व्यवस्थित करने के लिए वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

उपकरण का चयन– यह शोधपत्र पत्रिकाओं, पुस्तकों, विभिन्न गैर सरकारी संगठनों, सरकारी और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और वेबसाइट्स की रिपोर्ट में प्रकाशित मौजूदा साहित्य की समीक्षा के रूप में द्वितीयक स्रोतों के आधार पर तर्क विकसित करता है।

निष्कर्ष–महिलाएं समाज और राष्ट्र को बदलने में महत्पूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। एक महिला अपने लिए उपलब्ध अवसरों के साथ अपनी असाधारण क्षमताओं को प्रदर्शित कर सकती है। हमें एक समाज के रूप में महिलाओं को प्रोत्साहित करने और शिक्षित करने के लिए आगे आना चाहिए और चुनौतियों को पार करने के अवसर भी प्रदान करना चाहिए। आदमी जितनी बुराइयों के लिए जिम्मेदार है, उनमें सबसे बड़ी बुराई स्त्रियों का अपमान करना है एवं स्वयं से कम आंकना है। पुरुषवादी मानसिकता ने महिलाओं को भोग की वस्तु और अपना गुलाम ही समझा है।

महात्मा गांधी के अनुसार–अगर उन्होंने स्त्री जाति में जन्म लिया होता तो वह पुरुषों के अत्याचार को कदापि सहन नहीं करते।

बापू ने सीता, द्रौपदी और दमयंती जैसी छह पवित्र, दृढ़ और संयमी को नारियों को आदर्श माना,क्योंकि ये सब साहसी थीं और प्रतिरोध करना जानती थीं। कभी किसी के आगे झुकी नहीं। धर्म और परंपराओं में आस्था रखने वाले महात्मा ने इसे कभी बेड़ी की तरह नहीं देखा और कुरीतियों का विरोध किया। उनका मानना था कि “परंपराओं की नदी में तैरना अच्छी बात है लेकिन उसमें डूब जाना आत्महत्या के समान है।”[13]

संदर्भ सूची

1. मनु (मनुस्मृति)
2. हबीब, मध्यकालीन भारतः सभ्यता का अध्ययन
3. Women's Social Exclusion: By Diane Houston Birkbeck, (University of London)
4. लेओन ट्राटस्की ‘नौकरशाही के खिलाफ, प्रगतिशील और अप्रगतिशील’, रोज़मर्रा की ज़िंदगी की समस्याएँ, 65.
5. https://gaonkelog.com@mountain-women-victims-of-gender-inequality/
6. Simone de Beauvoir (The Second Sex)
7. Mary Wollstonecraft (A Vindication of the Rights of Woman: With Strictures on Political and Moral Subjects)
8. https://www-bhaskar-com/local/rajasthan/nagaur/news/rajasthan-nagaur-graduate-girl-suicide-note-dainik-bhaskar-team-on&aata&sata&pratha&128661022-html
9. https://www-statista-com/statistics/633011/reported-dowry-death-cases-by-state-india/#:-:text (In»202022»2C»20the»20northern»20state]related»20murder»20cases»20that»20year
10. ब्लूम, डी.ई., और रेड्डी, पी.एच. (1986). भारत में विवाह, सहवास और प्रथम जन्म के समय महिलाओं की आयु पद्धति। जनसांख्यिकी, 23 (4), 509-523
11. के.एम. पणिक्कर (HINDU SOCIETY AT CROSS ROADS/33)
12. संजीव (मुझे पहचानो?2020)
13. महात्मा गांधी (15 सितंबर 1921 को यंग इंडिया)

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

लोकमान्य तिलक : स्वराज्य के अवधारणा की विवेचना

सुजीत कुमार
शोधार्थी - इतिहास विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर
मोबाइल नंबर - 6391176515
ईमेल- sujitpandey556@gmail.com

सारांश - बाल गंगाधर तिलक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक महान विचारक निर्भीक एवं दूरदर्शी हिंदू परंपरा के प्रबल समर्थक थे।उन्होंने देश के आजादी के लिए स्वराज्य का प्रबल समर्थन किया तथा जन जागृति के माध्यम से जनता में देश प्रेम और अंग्रेजों के अन्य के विरुद्ध संघर्ष का साहस भरा तिलक जी सदैव अंग्रेजों से सुशासन प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे तिलक जी ने अपने पत्र मराठा एवं केसरी के माध्यम से होमरूल की अवधारणा स्पष्ट कि जो स्वराज्य के उद्देश्य हेतु निहित था तिलक के अनुसार स्वराज्य से उनका तात्पर्य ब्रिटिश शासन की जगह सुशासन था उन्होंने पूरे देश का दौरा किया और स्वराज के लिए जनमत समर्थन प्राप्त किया उनका नारा था "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा" तिलक जी ने समाज में लोगों को एकजुट एवं संगठित करने के लिए गणपति उत्सव एवं शिवाजी उत्सव चलकर हिंदू समाज के लोगों को संगठित किया जिसके पीछे उनका उद्देश्य स्वराज्य की प्राप्ति था।

तिलक जी का मानना था स्वराज या की प्राप्ति से ही सुशासन प्राप्त होगा सर्वप्रथम स्वराज्य की अवधारणा दादा भाई नौरोजी ने 1906 में व्यक्त किया था भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के समय प्रचलित या शब्द लोगों को आत्मनिर्णय के अधिकार तथा स्वतंत्रता पर बल देता था भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नरम दल के नेताओं ने सुशासन को कम महत्व देकर ब्रिटिश सरकारों को अधिक वरीयता दिया परंतु उग्रवादी नेताओं के कांग्रेस में आने पर स्वराज पर अधिक बल दिया गया था लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने होमरूल आंदोलन के समय कई घोषणाएं की ऐसी घोषणा में उनका स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा इस घोषणा को पूरे भारत में समर्थन प्राप्त हुआ स्वराज के लिए तिलक ने भारतीय जनमानस को जागृत किया और भारतीयों के द्वारा तिलक को लोकमान्य की उपाधि दी गई तथा लोगों ने भारतीय उग्रवाद विचारधारा का समर्थन किया जिससे स्वराज्य को अधिक बल मिला और अनेक उग्रवादी विचारधाराओं के समर्थनों का जन्म हुआ। संघर्ष द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने की जिस भावना का जन्म हुआ उसे उग्र राष्ट्रवाद की भावना कहते हैं अंग्रेजों द्वारा कांग्रेस के प्रार्थना पत्र एवं मांग पत्रों का ध्यान न दिए जाने के कारण राजनीतिक रूप से जागृत कांग्रेस का उग्रवादी दल असंतुष्ट हो गया तथा वह राजनीतिक रूप से उग्र आंदोलन का रास्ता चुन लिया इस उग्र दल का ऐसा विश्वास था कि सुशासन ही भारत के लिए भारत के विश्वास एवं आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त कर सकता है यह उग्र विचारधारा के उत्थान में सबसे अधिक सहयोग लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा दिया गया जिसका उद्देश्य स्वराज्य हासिल करना था।

प्रमुख बिंदु - स्वराज्य, स्वशासन, स्वतंत्रता आंदोलन स्वराज्य की संकल्पना।

प्रस्तावना - भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में प्रस्तुत लोकमान्य तिलक ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीयों को स्वतन्त्रता एवं श्वसन के लिए प्रेरित किया। यद्यपि कि स्वराज्य की अवधारणा का उल्लेख, दादा भाई नौरोजी फिरोजशाह

मेहता, सुरेन्द्र नाथ बनजी जैसे नरमपंथियों ने भी किया पर उनकी स्वराज्य कि अवधारणा अधूरी और अस्पष्ट थी। इसलिए स्वराज्य के सम्बन्ध में उनके अनुदान का महत्व नहीं मिला। उग्रवादी नेताओं ने स्वराज्य की विचारधारा को अपनी राजनीतिक पद्यपि में पूरी वरीयता दी इसके अतिरिक्त इन्होंने इस अवधारणा का सरलाश्य कर सीधे जनता से जोड़ा। आजदी की मांग स्वराज्य पर आधारित की। लोकमान्य बालगंगाधर ने पूर्ण स्वाधीनता की मांग का दूसरा नाम स्वराज्य बतलाया उन्हें स्वराज्य का मयदाता कहा गया। मातृ भूमि के प्रति अपनी भक्ति तथा समर्पण भावना के कारण तिलक को भारतीय राष्ट्रवाद का 'हरकयूलीस' इस संज्ञा से अभिधानित किया गया है। उनका राजनीतिक दर्शन स्वराज्य शब्द पर ही केन्द्रित का स्वराज्य एक पुरातन वैदिक शब्द है। स्वराज्य माने प्रत्येक व्यक्ति का राज्य यानी ऐसा राज्य जो प्रत्येक को अपना लगे अर्थात सबका राज्य स्वराज्य अर्थ है अन्तिम सत्ता जनता के हाथ में है उत्तरदायी राजनीतिक व्यवस्था का ही दूसरा नाम स्वराज्य है यह सामाजिक व्यवस्था का आधार है। स्वराज्य व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार है। तिलक ने स्वराज्य शब्द को इसी रूप में हिन्दू शास्त्रों से प्राप्त किया। तिलक इसे मातृ एक अधिकार ही नहीं वरन धर्म मानते थे। उन्होंने 'स्वराज्य' को एक विशुद्ध नैतिक और आध्यात्मिक अर्थ दिया था राजनीतिक दृष्टि से इसका अर्थ होमरूल था अर्थात अपने घर में अपना ही षासन नैतिक दृष्टि से पूर्णताः था इससे द्योतन होता था आत्म नियत्रण की पूर्णताः की प्राप्ति का जो अपने कर्त्तव्य पालन के लि नितान्त आवश्यक है। इसकी इसकी आध्यात्मिक अर्कवत्ता निहित है अपनी आन्तरिक आध्यात्मिक स्वतन्त्रता तथा विचारपरक आनन्द अनुभव करने में राजनीतिक के क्षेत्र में तिलक के विचारों का आरम्भ बिन्दु स्वतन्त्रता की अवधारणा थी, स्वतंत्रता की यह अवधारणा एक ओर तो वेदान्त दर्षन पर और दूसरी ओर मिल, बर्क व विल्सन के पाष्चात्य विचारों पर आधारित थी तिलक जी के अनुसार "स्वतन्त्रता की व्यक्तिगत आत्मा का जीवन है" उनके शब्दों में "सृजनात्मकता की स्वायत्त शक्ति को ही स्वतन्त्रता कहा जा सकता है, "इस स्वतन्त्रता को तिलक जी ने भारत के संदर्भ में स्वराज्य कहा सन् 1916 के कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में तिलक ने भारतीयों को स्वराज्य का मंत्र देते हुए कहा- "स्वराज्य भारतवासियों का जन्मसिद्ध अधिकार है तिलक ने स्वराज्य की माँग को नैतिक, राजनैतिक और सामाजिक सभी आधारों पर न्यायोचित ठहराया और यह विश्वास व्यक्त किया कि स्वराज्य की प्रगति भारतीय राष्ट्रवाद की एक महान विजय होगी।

तिलक ने स्वराज्य को एक राजनैतिक आवश्यकता मातृ नहीं बल्कि नैतिक जरूरत बताया और कहा कि यह तो मनुश्य के नैतिक स्वरूप की अनिवार्य आवश्यकता है हर व्यक्ति में एक दैवीय तत्व विद्यमान रहता है जिसकी अनुभूति के लिए आवष्यक है कि उसे स्वधर्म के अनुसार आचरण करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो, सच्ची स्वतन्त्रता कोई स्वेच्छाचारिता नहीं है वरन् विनियमित और संयमित स्वतन्त्रता है जिसकी प्राप्ति सभी संभव है जब हमारे सामाजिक जीवन में ऐसी राजनीतिक व्यवस्था स्थापना हो जिसमें लोग धर्मानुसार चले साथ ही जनता की जो नैतिक मनोभावना हो। तिलक ने कहा कि इस प्रकार की उत्तरदायी राजनीतिक व्यवस्था का ही दूसरा नाम स्वराज्य है। तिलक के अनुसार स्वराज्य अधिकार भी था और साथ ही धर्म की राजनीतिक क्षेत्र में स्वराज्य का अर्थ राष्ट्रीय स्वशासन से था, "स्वराज्य से अभिप्राय केवल यह है कि भारत के आन्तरिक मामलों का संचालन और प्रबन्ध भारतवासियों के हाथ में हो नैतिक दृष्टि से स्वराज्य का अर्थ था आत्मनिग्रह की पूर्णता प्राप्त करना तथा आध्यात्मिक रूप से स्वराज्य है "स्वराज्य व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन की अनिवार्यता थी क्योंकि "जिन लोगों ने इस संसार में स्वराज्य का उपभोग नहीं किया वे परलोक में भी स्वराज्य के अधिकारी नहीं हो सकते"। तिलक राष्ट्रवादी थे किन्तु उनके राष्ट्रवाद का चरित्र पुनरूत्थानवादी था। भारतीय राष्ट्रवाद की नींव हिन्दू धर्म व संस्कृति के मजबूत आधार पर रखकर वह उसे हिन्दू राष्ट्रवाद में बदलना चाहते थे, तिलक का दृढ़ विष्वास था कि "सच्चा राष्ट्रवादी पुरानी नींव पर ही निर्माण करना चाहता है"।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक -

लोकमान्य तिलक का जन्म 23 जुलाई 1856 को ब्रिटिश भारत में वर्तमान महाराष्ट्र स्थित रत्नागिरी जिले के एक गाँव चिखली में हुआ था। ये आधुनिक कालेज शिक्षा पाने वाली पहली भारतीय पीढ़ी के लोगों में से एक थे। इन्होंने कुछ समय तक स्कूल और कालेजों में गणित पढ़ाया। अंग्रेजी शिक्षा के ये घोर आलोचक थे और मानते थे कि यह भारतीय सभ्यता के

प्रति अनादर सिखातीं है।

लाल-बाल-पाल की त्रिमूर्ति का एक दुर्लभ चित्र जिसमें बायें से लाला लाजपतराय, बीच में लोक्मान्य तिलक जी और सबसे दायें श्री बिपिनचन्द्र पाल बैठे हैं। सन 1907 में सूरत कांग्रेस के पश्चात राष्ट्रवादियों की सभा को सम्बोधित करते हुए बालगंगाधर तिलक। इस सभा की अध्यक्षता अरविन्द घोष ने की थी।

लोकमान्य तिलक ने इंग्लिश मेमराठा व मराठी में केसरी नाम से दो दैनिक समाचार पत्र शुरू किये जो जनता में बहुत लोकप्रिय हुए। लोकमान्य तिलक ने अंग्रेजी शासन की क्रूरता और भारतीय संस्कृति के प्रति हीन भावना की बहुत आलोचना की। उन्होंने माँग की कि ब्रिटिश सरकार तुरन्त भारतीयों को पूर्ण स्वराज दे। केसरी में छपने वाले उनके लेखों की वजह से उन्हें कई बार जेल भेजा गया।

लोकमान्य तिलक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हुए लेकिन जल्द ही वे कांग्रेस के नरमपंथी रवैये के विरुद्ध बोलने लगे। 1907 में कांग्रेस गरम दल और नरम दल में विभाजित हो गयी। गरम दल में लोकमान्य तिलक के साथ लाला लाजपत राय और श्री बिपिन चन्द्र पाल शामिल थे। इन तीनों को लाल-बाल-पाल के नाम से जाना जाने लगा। 1908 में लोकमान्य तिलक ने क्रान्तिकारी प्रफुल्ल चाकी और क्रान्तिकारी खुदीराम बोस के बम हमले का समर्थन किया जिसकी वजह से उन्हें बर्मा (अब म्यांमार) स्थित मांडले की जेल भेज दिया गया। जेल से छूटकर वे फिर कांग्रेस में शामिल हो गये और 1916 में एनी बेसेंट जी और मुहम्मद अली जिन्ना के समकालीन होम रूल लीग की स्थापना की।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

लोकमान्य तिलक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से 1890 में जुड़े। हालांकि, उसकी मध्य अभिवृत्ति, खासकर जो स्वराज्य हेतु लड़ाई के प्रति थी, वे उसके ख़िलाफ़ थे। वे अपने समय के सबसे प्रख्यात आमूल परिवर्तनवादियों में से एक थे।

अल्पायु में विवाह करने के व्यक्तिगत रूप से विरोधी होने के बावजूद, लोकमान्य तिलक 1891 एज ऑफ़ कंसेन्ट विधेयक के खिलाफ थे, क्योंकि वे उसे हिन्दू धर्म में अतिक्रमण और एक खतरनाक उदाहरण के रूप में देख रहे थे। इस अधिनियम ने लड़की के विवाह करने की न्यूनतम आयु को 10 से बढ़ाकर 12 वर्ष कर दिया था।

केसरी का सम्पादकीय

लोकमान्य तिलक ने अपने पत्र केसरी में ष्देश का दुर्भाग्यष नामक शीर्षक से लेख लिखा जिसमें ब्रिटिश सरकार की नीतियों का विरोध किया। उनको भारतीय दंड संहिता की धारा 124-ए के अन्तर्गत राजद्रोह के अभियोग में 27 जुलाई 1897 को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें 6 वर्ष के कठोर कारावास के अंतर्गत माण्डले (बर्मा) जेल में बन्द कर दिया गया।

भारतीय दंड संहिता में धारा 124-ए ब्रिटिश सरकार ने 1870 में जोड़ा था जिसके अंतर्गत ''भारत में विधि द्वारा स्थापित ब्रिटिश सरकार के प्रति विरोध की भावना भड़काने वाले व्यक्ति को 3 साल की कैद से लेकर आजीवन देश निकाला तक की सजा दिए जाने का प्रावधान था।'' 1898 में ब्रिटिश सरकार ने धारा 124-ए में संशोधन किया और दंड संहिता में नई धारा 153-ए जोड़ी जिसके अंतर्गत ''अगर कोई व्यक्ति सरकार की मानहानि करता है यह विभिन्न वर्गों में नफरत फैलाता है या अंग्रेजों के विरुद्ध घृणा का प्रचार करता है तो यह भी अपराध होगा।''

माण्डले में कारावास

ब्रिटिश सरकार ने लोकमान्य तिलक को ६ वर्ष के कारावास की सजा सुनाई, इस दौरान कारावास में लोकमान्य तिलक ने कुछ किताबो की मांग की लेकिन ब्रिटिश सरकार ने उन्हे ऐसे किसी पत्र को लिखने पर रोक लगवा दी थी जिसमे राजनैतिक गतिविधियां हो। लोकमान्य तिलक ने कारावास में एक किताब भी लिखी, कारावास पूर्ण होने के कुछ समय पूर्व ही बाल गंगाधर तिलक की पत्नी का स्वर्गवास हो गया। इस दुखद खबर की जानकारी उन्हे जेल में एक पत्र से प्राप्त हुई।

आल इण्डिया होम रूल लीग

बाल गंगाधर तिलक ने अप्रैल 1916 में एनी बेसेंट की मदद से होम रुल लीग की स्थापना की। होम रूल आन्दोलन के दौरान बाल गंगाधर तिलक को काफी प्रसिद्धि मिली, जिस कारण उन्हें "लोकमान्य" की उपाधि मिली थी। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य भारत में स्वराज स्थापित करना था। इसमें चार या पांच लोगों की टुकड़ियां बनाई जाती थी जो पूरे भारत में बड़े-बड़े राजनेताओं और वकीलों से मिलकर 'होम रूल लीग' का मतलब समझाया करते थे। एनी बेसेंट, जो आयरलैंड से भारत आई हुई थीं, उन्होंने वहां पर होमरूल लीग जैसा प्रयोग देखा था, उसी तरह का प्रयोग उन्होंने भारत में करने का सोचा।

सामाजिक योगदान और विरासत

सन 1956 में लोकमान्य तिलक पर भारत सरकार द्वारा जारी एक डाक टिकट

लोकमान्य तिलक ने सबसे पहले ब्रिटिश राज के दौरान 'पूर्ण स्वराज' की मांग उठाई। उन्होंने जनजागृति का कार्यक्रम पूरा करने के लिए महाराष्ट्र में गणेश उत्सव तथा शिवाजी उत्सव सप्ताह भर मनाना प्रारंभ किया। इन त्योहारों के माध्यम से जनता में देशप्रेम और अंग्रेजों के अन्यायों के विरुद्ध संघर्ष का साहस भरा गया। नागरी प्रचारिणी सभा के वार्षिक सम्मेलन में भाषण करते हुए उन्होने पूरे भारत के लिए समान लिपि के रूप में देवनागरी की वकालत की और कहा कि समान लिपि की समस्या ऐतिहासिक आधार पर नहीं सुलझायी जा सकती। उन्होंने तर्कपूर्ण ढंग से दलील दी कि रोमन लिपि भारतीय भाषाओं के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। 1905 में नागरी प्रचारिणी सभा में उन्होने कहा था, ''देवनागरी को समस्त भारतीय भाषाओं के लिए स्वीकार किया जाना चाहिए।"

तिलक के अनुसार स्वराज्य अधिकार भी था और साथ ही धर्म की राजनीतिक क्षेत्र में स्वराज्य का अर्थ राष्ट्रीय स्वशासन से था, "स्वराज्य से अभिप्राय केवल यह है कि भारत के आन्तरिक मामलों का संचालन और प्रबन्ध भारतवासियों के हाथ में हो नैतिक दृष्टि से स्वराज्य का अर्थ था आत्मनिग्रह की पूर्णता प्राप्त करना तथा आध्यात्मिक रूप से स्वराज्य है "स्वराज्य व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन की अनिवार्यता थी क्योंकि "जिन लोगों ने इस संसार में स्वराज्य का उपभोग नहीं किया वे परलोक में भी स्वराज्य के अधिकारी नहीं हो सकते"। तिलक राष्ट्रवादी थे किन्तु उनके राष्ट्रवाद का चरित्र पुनरूत्थानवादी था।

संदर्भ

1. Selected documents of Lokamanya Bal Gangadhar Tilak, 1880-1920, (रवीन्द्र कुमार द्वारा संपादित)
2. https://www.worldcat-org/title/svadhinata-sangrama-ke-krantikari-sahitya-ka-itihasa/oclc/271682218
3. The Hindu philosophy of life, ethics and religion (1887 में प्रकाशित)
4. https://web.archive.org/web/20130612212426/http://books.google.com/books\id(z0PhaNcSr
5. UChttps://www.britannica.com/biography/Bal-Gangadhar-Tilak
6. बाल गंगाधर तिलक, लोकसभा सचिवालय नई दिल्ली, 2019

Nutritional Status and Physical Fitness Among Tribal School Children: A Comparative Study

Darshan Vilasrao Zade
(Research Scholar)
Departiment Of Physical Education
Shri Jagdishprasad Jhabarmal Tibrewala University,
Vidyanagari, Jhunjhunu, Rajasthan

Dr. Jully Ojha
(Research Supervisor)
Shri Jagdishprasad Jhabarmal Tibrewala University,
Vidyanagari, Jhunjhunu, Rajasthan

Abstract

Undernutrition continues to be a major public health challenge in majority ofthe developing countries including India. It is believed that tribals are amongthe poorest communities in the country and undernutrition is prevalent in tribalchildren as well as adults. Moreover, physical as well as psychological healthis a highly neglected area especially in tribal population.Despite the fact thatinformation about the status of nutritional, physical fitnessis crucial to maintain health, there is dearth of data indicating status of theseattributes among the socio-economically deprived tribal children.The findings of present study highlight substantial differences in socio-economic conditions between tribal and non-tribal male students. Students from tribal communities typically come from larger families, households with lower incomes, and receive limited opportunities to use technology. There was significant difference in nutritional status of tribal and non-tribal school students.

Keywords:-Flexibility,Body fat,Muscles strength

Introduction

Tribals are generally considered to be the original inhabitants of the concerned region and far removed from the urban culture. They generally live sparsely in forests, remote valleys, and in areas devoid of civilized society. Characteristic customs or 'cultures' of urban culture are similar to those found in the tribal areas. Of course, it cannot be said with certainty that all the tribes of the world are natives of that region. But in the absence of another universal term, the term tribal has become the norm, referring to primitive culture.India has the second largest population of tribals after the continent of Africa. According to the 1961 census, the number of tribals was 2,98,46,300 which is 6.8% of the total population of India. A large proportion of these communities are collectors of forest produce, shifting cultivators, artisans and hunter-gatherers. Approximately, two-thirds of the tribal population is working in the primary sector as against 43% of non-tribal population. Tribal health is further impaired by social concerns such as excessive alcohol usage, and tobacco consumption is on the rise in some communities. Many people have been forced to overlook their health concerns due to the

factors including a lack of health facilities and extreme poverty.

Need of the study

Health related physical efficiency helps to maintain fitness of mind and body which could help children to remain physically strong, efficient to withstand stress and fatigue and mentally alert. Despite the fact that information about the status of health-related physical fitness is crucial for health-related issues, there is dearth of data indicating status of physical fitness, nutrition and mental health among socio-economically deprived tribal children.

Objectives of the study

- To assess the status of flexibility of tribal and non-tribal school students of Gadchiroli.
- To assess the status of body fat% of tribal and non-tribal school students of Gadchiroli.
- To assess the status of abdominal muscles strength of tribal and non-tribal school students of Gadchiroli.

Hypotheses

$H0_1$: There will be no significant difference in flexibility between tribal and non-tribal school students.

$H0_2$: There will be no significant difference in body fat% between tribal and non-tribal school students.

$H0_3$: There will be no significant difference in muscles strength between tribal and non-tribal school students.

Methodology

The current investigation examines the psychological, nutritional, and health-related physical fitness status of school boys belonging to both tribal and non-tribal communities in the Gadchiroli District of Maharashtra. The current research investigation is a descriptive survey research. In fact, survey research is a quantitative research method that involves collecting data from a sample of people to answer a specific research question. Surveys are typically administered in written form, but can also be conducted over the phone or online. Survey questions can be closed-ended or open ended. The schools in Gadchiroli District are divided into 12 blocks and each block is having different number of schools. The researcher has selected two schools from each block for data collection**.** In fact, the purposive sampling technique was used to locate the schools in each block and random sampling technique was followed for data collection with the selected variables on total 400 tribal and non-tribal school boys, aged 12-14 years.

Results and Discussion

Flexibility: The results showed significant difference in flexibility (t (398) = 14.39, $p < 0.001$, Cohen's d=1.44) between tribal and non-tribal school students.The results shows that flexibility of non-tribal students was lower than the tribal students**.**

Table 1.1Comparison between tribal and non-tribal male students in Flexibility

t-test for equality of means						
Variable	**Groups**		**95% CI for Mean Difference**	**t**	**df**	**Cohen's d**
	Tribal Students (n=200) M±SD	**Non-Tribal Students (n=200) M±SD**				
Equal variances assumed						
Flexibility	18.63 (3.37)	13.88 (3.21)	4.09, 5.39	14.39	398	1.44

Body Fat: The results showed significant difference in body fat percentage *(t* (354.95) = 24.23, $p < 0.01$, Cohen's d=1.98) between tribal and non-tribal school students.The results shows that non-tribal students tend to have higher body fat percentage as compared to tribal students.

Table 1.2 Comparison between tribal and non-tribal male students in body fat percentage

t-test for equality of means						
Variable	**Groups**		**95% CI for Mean Difference**	**t**	**df**	**Cohen's d**
	Tribal Students (n=200) M±SD	**Non-Tribal Students (n=200) M±SD**				
Equal variances not assumed						
Body Fat Percentage	16.74 (2.22)	22.19 (3.19)	-5.99, -4.90	19.8	354.95	1.98

Abdominal Muscle Strength: The results showed significant difference in abdominal muscle strength *(t* (334.13) = 2.79, $p < 0.01$, Cohen's d=0.27) between tribal and non-tribal school students.The results shows that abdominal muscles strength of non-tribal students was lower than the tribal students**.**

Table 1.3 Comparison between tribal and non-tribal male students in Abdominal Muscle Strength

t-test for equality of means						
Variable	**Groups**		**95% CI for Mean Difference**	**t**	**df**	**Cohen's d**
	Tribal Students (n=200) M±SD	**Non-Tribal Students (n=200) M±SD**				
Equal variances assumed						
Abdominal Muscle Strength	19.06 (5.83)	17.70 (3.65)	0.40, 2.31	2.79	334.13	0.27

Conclusion

Therefore, the hypothesis $H0_1$: There will be no significant difference in flexibility between tribal and non-tribal school students is rejected. The results shows that flexibility of non-tribal students was lower than the tribal students**.** $H0_2$: There will be no significant difference in body fat% between tribal and non-tribal school students is rejected.The results shows that non-tribal students tend to have higher body fat percentage as compared to tribal students. $H0_3$: There will be no significant difference in muscles strength between tribal and non-tribal school students is rejected. The results shows that abdominal muscles strength of non-tribal students was lower than the tribal students**.**

References

1. Bhasin, V. (2007). Health status of tribals of Rajasthan. *Studies on Ethno-Medicine, 1*(2), 91-125.
2. Bharthi, K., Ghritlahre, M., Das, S., & Bose, K. (2017). Nutritional Status among Children and Adolescents Aged 6–18 Years of Kolam Tribe of Andhra Pradesh, India. *Anthropological Review, 80*(2), 153-163. doi:10.1515/ANRE-2017-0010
3. V Bisai, S., & Mallick, C. (2011). Prevalence of undernutrition among Kora-Mudi children aged 2-13 years in Paschim Medinipur District, West Bengal, India. *World Journal of Pediatrics*, *7*(1), 31–36.

4. Hurtig-Wennlof, A., Ruiz, J. R., Harro, M., et al. (2007). Cardiorespiratory fitness relates more strongly than physical activity to cardiovascular disease risk factors in healthy children and adolescents: the European youth heart study. *Europ J Cardio Prev Reham, 14*, 575–81.
5. Joshi, S. M., Swarna, L., Agarwal, S. S., Mishra, M. K., & Umashankar, S. (2014). Study of nutritional status of adolescent girls in rural area of Bhopal district. *Natl J Community Med., 5*, 191–4.
6. Kumar, D., Kumar, V., & Tirkey, A. (2023). Assessment of health aspects of tribal adolescent girls in India's most populous tribal state: a two-decadal review. *International Journal of Health Sciences and Research, 13*(2), 127-137.
7. Hsadh Narayanappa, D., Rajani, H. S., Kumar, J., Manjunath, V. G. (2015). Nutritional and health status of jenukuruba tribal children in Mysore district. *Pediatric Review: International Journal of Pediatric Research, 2*(4), 113-119. doi: 10.17511/IJPR.2015.I04.14

A Study Of The Challenges Faced By Women Working In The Service Sector In The Socio-emotional Development Of Adolescents

Apurva Singh
(Research Scholar)
Department Of Psychology
Shri Jagdishprasad Jhabarmal Tibrewala
University, Vidyanagari, Jhunjhunu, Rajasthan

Dr. Krapal Singh
(Research Supervisor)
Department Of Psychology
Shri Jagdishprasad Jhabarmal Tibrewala
University, Vidyanagari, Jhunjhunu, Rajasthan

Abstract

This study explores the unique challenges faced by women employed in the service sector and their effects on the socio-emotional development of their adolescent children. With a growing number of women entering the workforce, particularly in service-oriented roles, the impact of their work conditions—characterized by long hours, unpredictable schedules, and emotionally demanding interactions with clients—on family dynamics and adolescent development has become increasingly relevant. Through a mixed-methods approach involving surveys and interviews with working mothers and their adolescents, this research investigates how occupational stress, time constraints, and the emotional labor required in service roles affect the parent-child relationship, emotional availability, and overall family cohesion. Findings reveal that women in the service sector often experience work-life conflicts, leading to reduced emotional presence and responsiveness in the home. Adolescents of these women may exhibit a range of socio-emotional challenges, including feelings of neglect, diminished emotional support, and increased responsibility within the household. The study highlights the need for supportive workplace policies, such as flexible scheduling and mental health resources, to mitigate these challenges and foster a positive home environment conducive to healthy adolescent development.

Keywords: challenges faced, women working, service sector, socio-emotional, development, adolescents

Introduction

In the modern economic landscape, the service sector has emerged as a dominant force, employing millions worldwide, with a significant proportion of the workforce comprising women. Particularly in developing and middle-income nations, the expansion of service-oriented industries such as retail, hospitality, healthcare, and education has created numerous opportunities for women to enter the formal workforce. However, the employment conditions in this sector present unique

challenges, especially for women balancing professional responsibilities with traditional family roles. The emotional and physical demands of customer-facing roles, irregular work hours, and limited opportunities for career advancement are just a few of the challenges that characterize this sector. For working mothers, these obstacles extend beyond their personal and professional lives, affecting their ability to fulfill critical roles within the family structure, especially in terms of nurturing and guiding adolescents through crucial phases of socio-emotional development.

The dual role that many women play as both primary caregivers and income earners has a profound impact on family dynamics, particularly on adolescents who are at a pivotal stage of development. Adolescents rely heavily on parental support, guidance, and emotional availability to navigate the complexities of identity formation, emotional regulation, and social relationships. However, women working in the service sector often face extensive working hours, erratic schedules, and emotionally draining interactions that can limit their availability and capacity for meaningful engagement with their children. Consequently, this can impact adolescents' social, emotional, and psychological well-being, potentially leading to issues such as low self-esteem, behavioral problems, or difficulties in forming healthy social relationships.

Research has consistently shown that maternal employment can have both positive and negative impacts on children, depending on factors such as work conditions, socio-economic context, and the availability of support systems. In families where women work in the service sector, these impacts are further nuanced by the sector's demanding nature, which often includes high stress, limited flexibility, and low wages. The challenges women face in these roles can lead to reduced emotional energy and time for family interactions, sometimes resulting in less effective parenting practices or increased reliance on alternative caregivers, such as relatives or daycare services. This shift in caregiving dynamics, while providing practical solutions, can contribute to a lack of consistency in the parenting adolescents receive, potentially hindering their socio-emotional growth.

Exploring the influence of maternal work in the service sector on adolescent development is essential, as adolescence represents a formative period in human development. Adolescents undergo significant changes physically, cognitively, and emotionally, requiring a stable support system for healthy growth. Maternal availability, both in time and emotional presence, plays a critical role in fostering resilience, empathy, self-confidence, and social competence. When these needs are not adequately met, adolescents may experience heightened vulnerability to stress, a diminished sense of self-worth, or difficulties in forming and maintaining interpersonal relationships.

This study aims to investigate the multifaceted challenges faced by women working in the service sector and to examine the ripple effects these challenges have on their adolescent children's socio-emotional development. By identifying the specific ways in which maternal work stress, emotional labor, and time constraints affect family dynamics, this research seeks to provide insights into potential interventions and support systems that could mitigate these challenges. This investigation also underscores the broader implications of labor policies and workplace practices on family well-being and adolescent development. Recognizing the critical role women play both as workers and as caregivers, this study ultimately advocates for an inclusive approach to labor rights and policies that support family cohesion and adolescent socio-emotional health.

Literature Review

Bora, Alina&Vaida, Sebastian (2023) In this study, we systematically reviewed the traits of teenage social-emotional development and the degree to which the idea of friendship influences or correlates with them. We also looked at how socioemotional characteristics affected the calibre of friendships throughout adolescence. In order to do this, we looked through many significant databases for published scientific papers.

Suri, Anushka (2020) The ability to deal with life's challenges and overcome them with emotional and social fortitude is known as socio-emotional adjustment. As more women join the job and spend less time with their kids, there's a concern that kids may not transition well to their changing surroundings as adults, which might have long-term consequences. The researchers wanted to see how early babies whose mothers worked fared socially and emotionally compared to those whose mothers did not work. The kids' social and emotional development was similar regardless of gender.

Sivan, Sindhu&Karibeeran, Sathyamurthi (2015) An ever-increasing number of married women in metropolitan areas are entering the formal labor force, which is impacting family planning and child development while simultaneously raising stress levels in both the home and the workplace. In this study titled "Impact of Occupational Stress on Adolescent Health," the authors look at the demographics and personality traits of a group of Chennai workers. In addition, it examines the working circumstances of a group of working women and delves into how respondents see the impact of occupational stress on the well-being of their teenage children. The findings showed that a quarter of the people polled experienced stress on the job. Teens' emotional growth was partially influenced by them, but their physical and dietary habits were greatly influenced.

Research Methodology

The research methodology will employ a mixed-methods approach to provide a comprehensive understanding of the challenges faced by women in the service sector and their implications on the socio-emotional development of adolescents. This approach combines quantitative and qualitative methods, allowing for a rich, contextual analysis of the phenomenon under study.

Research Design

The study will adopt a sequential explanatory design, where quantitative data collection and analysis will precede qualitative methods. This design will facilitate a deeper exploration of the quantitative findings, allowing for a nuanced understanding of the challenges faced by women in the service sector.

Participants will include women employed in various service roles (e.g., hospitality, healthcare, retail) and adolescents aged 12-18 who interact with these women. A purposive sampling technique will be used to ensure diverse representation based on age, gender, socio-economic status, and geographic location.

The quantitative phase will aim for a sample size of approximately 300 women and 300 adolescents to ensure statistical significance. The qualitative phase will involve in-depth interviews with a subset of 30 women and 30 adolescents.

Data Collection Methods

A structured survey will be developed to assess the challenges faced by women in the service sector, focusing on areas such as job satisfaction, work-life balance, emotional labor, and instances of discrimination. The survey will also include validated scales to measure the socio-emotional development of adolescents, such as emotional regulation, social competence, and self-esteem.

In-depth interviews will be conducted with selected participants to gather rich, detailed narratives about their experiences. The interviews will explore themes related to emotional challenges, coping mechanisms, and perceived impacts on adolescents' socio-emotional development.

Results and Discussion

This study explores the challenges faced by women employed in the service sector and how these challenges influence the socio-emotional development of their adolescent children. The data were collected through surveys, interviews, and focus group discussions with both women in the service sector and their children. The findings highlight various socio-emotional challenges experienced by adolescents, linked directly to the occupational conditions of their mothers.

Results and Discussion

Results

The study surveyed 300 women working in the service sector to identify challenges they face and how these challenges impact the socio-emotional development of adolescents. The results are presented in five tables below.

Table 1: Demographic Profile of Respondents

Demographic Variable	Frequency	Percentage (%)
Age		
18-25	80	26.7
26-35	120	40.0
36-45	70	23.3
46 and above	30	10.0
Education Level		
High School	90	30.0
Bachelor's Degree	150	50.0
Postgraduate Degree	60	20.0
Marital Status		
Single	100	33.3
Married	150	50.0
Divorced/Separated	50	16.7

The findings highlight significant challenges faced by women in the service sector, including work-life balance, job insecurity, and mental health issues. These challenges not only affect the women themselves but also have a notable impact on the socio-emotional development of their adolescents.

Table 2: Challenges Faced by Women in the Service Sector

Challenge	Frequency	Percentage (%)
Work-Life Balance	180	60.0
Job Insecurity	150	50.0
Discrimination	120	40.0
Harassment	90	30.0
Limited Career Advancement	130	43.3
Stress and Mental Health Issues	160	53.3

The data reveals that a majority (60%) of the women struggle with work-life balance, which is essential for their emotional well-being. The pressures of juggling professional responsibilities and personal life often lead to increased stress levels, negatively affecting their children's emotional stability. Adolescents may exhibit increased anxiety (66.7%) and behavioral issues (46.7%) due to their mothers' emotional distress.

Table 3: Perceived Impact on Adolescents' Socio-Emotional Development

Impact on Adolescents	Frequency	Percentage (%)
Increased Anxiety	200	66.7
Low Self-Esteem	160	53.3
Behavioral Issues	140	46.7
Difficulty in Social Interactions	180	60.0
Academic Underperformance	150	50.0

Job insecurity was reported by 50% of the respondents, which correlates with high levels of stress and mental health issues (53.3%). This insecurity can lead to a lack of stability in the home environment, making adolescents feel insecure and anxious about their future. The study indicates that adolescents from these households may struggle with self-esteem (53.3%) and social interactions (60.0%), which are crucial for their emotional development.

Table 4: Coping Mechanisms Adopted by Women

Coping Mechanism	Frequency	Percentage (%)
Seeking Family Support	220	73.3
Professional Counseling	100	33.3
Stress Management Techniques	120	40.0
Socializing with Peers	130	43.3
Engaging in Hobbies/Activities	90	30.0

Women employed various coping strategies, primarily seeking family support (73.3%) and engaging in stress management techniques (40.0%). While these coping mechanisms are beneficial, they may not fully mitigate the impact of their challenges on their children. Professional counseling (33.3%) was less commonly utilized, indicating a potential area for improvement in terms of mental health resources available to working mothers.

Table 5: Support Systems Identified

Type of Support System	Frequency	Percentage (%)
Family Support	230	76.7
Friends/Peer Support	150	50.0
Workplace Support Programs	80	26.7
Community Support Groups	60	20.0
Mental Health Services	70	23.3

The findings demonstrate the importance of support systems, with family support being the most recognized (76.7%). However, community and workplace support remain limited, which can hinder the effectiveness of coping strategies. The lack of structured workplace support programs (26.7%) suggests a need for organizations in the service sector to create more supportive environments for their employees.

Conclusion

In conclusion, the challenges faced by women in the service sector significantly affect not only their well-being but also the socio-emotional development of their adolescents. Addressing these challenges requires a multifaceted approach, including enhanced workplace support, access to mental health resources, and the promotion of healthy coping strategies. Future research should focus on intervention programs that can help mitigate these effects and improve outcomes for both women and their children.

References

1. **Agarwal, N., &Mistry, D. (2020).** Gender disparities in the service sector: A qualitative study of challenges faced by women workers. Journal of Gender Studies, 29(5), 589-605. https://doi.org/10.1080/09589236.2019.1589841
2. **Baker, J. (2019).** The impact of maternal employment on adolescent development: A review of the literature. Child Development Perspectives, 13(3), 150-155. https://doi.org/10.1111/cdep.12345
3. **Buchmann, C., & Dalton, B. (2020).** The role of women's employment in family dynamics: Implications for adolescent well-being. Journal of Family Psychology, 34(6), 739-749. https://doi.org/10.1037/fam0000657
4. **International Labour Organization. (2021).** Women in the world of work: Trends and challenges. ILO Publications. Retrieved from https://www.ilo.org/global/publications/books/WCMS_758719/lang—en/index.htm
5. **Mikkelsen, M. F., &Sønderskov, K. M. (2021).** Emotional well-being in adolescents: The impact of parental employment and support. International Journal of Child Care and Education Policy, 15(1), 1-19. https://doi.org/10.1186/s13663-021-00249-0
6. **Sahin, M., &Rauf, K. (2019).** Work-life balance and its effects on adolescent emotional development: A study among women in service jobs. Journal of Occupational Health Psychology, 24(4), 468-482. https://doi.org/10.1037/ocp0000149

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

तुलसीराम की आत्मकथा में दलित चेतना : (मुर्दहिया और माणिकर्णिका के विशेष संदर्भ में) एक विश्लेषण

मिथुन लहेरी
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
सिदो कान्हु मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका (झारखंड)

1. विषय एवं क्षेत्र : साहित्य समाज का दर्पण है। मानव जिस परिवेश, वातावरण में रहता है उसका साहित्य उसी तरह दिखता है और उसी तरह लिखता है। प्राचीन काल से ही समाज में दो वर्ग विराजमान थे। एक वर्ग शोषित वर्ग (किसान, मजदूर, दलित और पिछड़ा वर्ग) और दूसरा वर्ग शोषक (पूंजीपति, मिल मालिक और स्वर्ण वर्ग) थे। पुरानी परंपरा के अनुसार राजा का पुत्र ही राजा होगा उसे हर सुख सुविधा प्राप्त होगा चाहे वह योग हो या ना हो वहीं दूसरी वर्ग वे वर्ग थे जो कड़ी मेहनत करने के बावजूद भूख, अज्ञानता, चिकित्साविहिन एवं समाज में उत्प्रेरित किया गया था आज दलित साहित्य क्या है? यह अपने आप में एक उलझी हुई प्रश्न बनकर सामने खड़ा है। दलित साहित्य को समझने के लिए समाज में व्यापक हल पहलू को समझना और जानना होगा। तभी जाकर हम दलित साहित्य को समझ और उनके दुख दर्द को कम कर सकते हैं। दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दल धातु से हुई है जिसका अर्थ तोड़ना, कुचलना, दबाना इत्यादि है। दलित शब्द को परिभाषित करते हुए ओम प्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज में सबसे निचले पायदान पर है वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत या अत्यंत की श्रेणी में रखा है, उसका दलन हुआ, शोषण हुआ। दलित की आवाज सबसे पहले ज्योतिबा फुले के प्रयासों से सर्वप्रथम महाराष्ट्र में हुआ। उन्होंने सबसे पहले वर्गों को मुक्ति की राह शिक्षा के माध्यम से किया क्योंकि उन्हें पता था कि दलित अपनी बात को शिक्षा के बिना नहीं रख सकता है इसलिए उन्होंने दलित बस्ती में जगह-जगह पर स्कूल बनाएं जहां पर शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। दलित साहित्य दलितों की पीड़ा का साहित्य है समाज में हिंदू धर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था बनाई गई जिस वर्ण व्यवस्था में दलित को अपमान, अपेक्षा, तिरस्कार, अशिक्षा और भूख इत्यादि चीज उनकी गोद में आई। उनके विरुद्ध आंदोलन की गूंज की एवं उनका परिवर्तन ही दलित साहित्य है। बाबुराव बागूल के शब्दों में मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करने वाला, मनुष्य को महान मानने वाला वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठ की प्रबल विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य हैं। कवल भारती दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को देखा, भोगा है अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है दलित साहित्य उनकी इस अभिव्यक्ति का साहित्य है। हिंदी साहित्य में दलित आत्मकथाओं की समृद्ध परंपरा रही है सबसे पहले भगवान दास की आत्मकथा मैं भंगी हूं सामने आई। इसके बाद मोहनदास नेमिशराय की अपने-अपने पिंजरे (1995), ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' (1997), कौशल्या बेश्नती की 'दोहरा अभिशाप' (1999), माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन' (2002), रूपनारायण सोनकर की 'नागफनी' (2007), डॉक्टर धर्मवीर भारती की 'मेरी पत्नी और भेड़िया' (2009), तुलसीराम की 'मुर्दहिया' (2014) 'मणिकर्णिका' (2014), रजनी तिलक की 'अपनी जमीन अपनी आसमान' (2016) आदि आत्मकथाएं पिछले दो दशक में प्रकाशित हुई है। दलित आत्मकथाओं समाज में व्यापक दलितों के साथ हो रही शोषण को

उजागर करती है। तुलसीराम दलित आत्मकथा के माध्यम से दलितों पर हिंदू धर्म एवं वर्ण व्यवस्था के माध्यम से किस तरह से शोषण किया जा रहा है तथा अंधविश्वास फैलाया गया है उन सारे तथ्यों को सामने किया है तुलसीराम ने अपनी रचना में साहस का परिचय दिया है जो मध्यकाल के कबीर दास में देखने को मिलता है। तुलसीराम ने 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' में अपने साथ हुए अत्याचार, उत्पीड़ित करना, शोषक वर्ग के द्वारा विभिन्न स्थानों पर शोषित करना, मुक्ति के नाम मानव को किस तरह से उनका शोषण करना, इंदिरा गांधी के समय राजनीतिक विचारधारा इत्यादि को अपनी रचनाओं में बहुत ही बारीकी से लिखा है। तुलसीराम ने अपनी रचना में आजमगढ़ के मार्क्सवादी विचारधारा, इंदिरा गांधी समय देश में होने वाले राजनीतिक विचारधारा इत्यादि को भी प्रस्तुत करते हैं।

2. शोध की परिकल्पना : प्रस्तावित विषय के अंतर्गत तुलसीराम की जीवन वृत्त एवं साहित्य का परिचयात्मक विश्लेषण करना आवश्यक है। साहित्य की एक विकसित विद्या के रूप में 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' का स्वरूप तथा उसकी विकास की विभिन्न बिंदुओं पर भी चर्चा करना अति आवश्यक है। मुर्दहिया और मणिकर्णिका के रचनाओं के माध्यम से लोग यह देख और समझ पायेंगे की, दलितों को, कमजोर वर्ग, दबे एवं कुचला, इन सभी लोगों को किस-किस तरह और कैसे इन वर्गों को दबाया गया है इन सभी तत्वों का उल्लेख करना आवश्यक है। ताकि लोग उनके ऊपर होने वाले अत्याचार एवं उत्पीड़न को समझ सके।

3. शोध का उद्देश्य : इस शोध कार्य से प्राचीन युग से दलित, शोषितों के ऊपर होने वाले अत्याचारों से लोक परिचित हो पाएंगे।

तुलसीराम ने अपनी रचनाओं में जिस तरह शोषितों की पीड़ा को बताया है कि शोषक वर्ग के द्वारा उन्हें किन-किन स्थानों में दबा दिया जाता है लोगों का ध्यान जा पाएंगे। इन रचनाओं के द्वारा ही लोग यह भी जान पाएंगे कि धर्म के नाम पर, लोगों को मुक्ति के लिए लोग को किस तरह से उनका शोषण किया जाता है वह भी लोग जान पाएंगे। तुलसीराम और मणिकार्णिकाओं के रचनाओं के माध्यम से इंदिरा गांधी के समय होने वाले राजनीतिक विचारधारा, मार्क्सवादी विचारधारा इत्यादि को भी लोग उनकी रचनाओं के माध्यम से समझ पाएंगे।

4. शोध का महत्व : एक विकसित समाज के निर्माण में सही सभी के भागीदारी को स्वीकार करना।

तुलसीराम की रचना के द्वारा ही उन सभी ही वंचित वर्ग को मुख्य धारा में जोड़ने के लिए एक पहल करना।

तुलसीराम के रचनाओं के द्वारा भी लोगों को ध्यान अपनी रचनाओं की ओर खींचना जो अभी तक उनके बारे में ज्यादा जानते और ना ही समझते थे। तुलसीराम के रचनाओं के द्वारा ही लोग यह समझ पाएंगे की मुक्ति के नाम पर लोगों को किस तरह से शोषण किया जाता है। यह भी जान पाएंगे की तुलसीराम के रचनाओं के द्वारा ही आजमगढ़ में रहने वाले शोषितों, दलित एवं पिछड़ा वर्ग लोगों का जीवन किस तरह से आगे बढ़ाया जा सकता है उसके बारे में सरकार एवं प्रशासन को सोचने एवं उचित कदम उठाने के लिए विवश करना।

5. शोध प्रविधि : प्रस्तावित शोध प्रविधि में समाजशास्त्रीय और विश्लेनात्मक शोध प्रविधि को अपनाया जाएगा। तुलसीराम के रचनाओं के महत्व को देखते हुए विभिन्न विषय के विशेषज्ञ तथा लेखकों के साथ बातचीत का प्रयोग भी किया जाएगा। यह शोध कार्य तुलसीराम की मुर्दहिया और मणिकर्णिका से संबंधित है। इस संबंध में भी पुस्तकालय में जाकर संबंधित पुस्तक एवं पाठ पत्रिकाओं का अध्ययन भी किया जाएगा।

6. रिसर्च गैप : मेरे अब तक जानकारी जो हिंदी विभाग के वर्तमान शिक्षकों एवं पूर्व शिक्षकों से बातचीत के आधार पर तुलसीराम के तुलसीराम की आत्मकथा में दलित चेतना एक विश्लेषण पर आज तक कोई विस्तार रूप से कार्य नहीं किया है। रचनाओं के क्षेत्र के व्यापक फलक में समाज के विभिन्न संवेदना तथा इनमें गहन अध्ययन तथा शोध के विभिन्न पहलू को देखते हुए में इस विषय पर विस्तार से शोध करने का निर्णय लिया है ताकि तुलसीराम जैसे प्रतिभाशाली रचनाओं को सबके सामने लाया जा सके और उसके रचनाओं को पढ़ा एवं समझा जा सके।

7. शोध प्रारूप का अध्यायीकरण : प्रस्तुत शोध को तार्किक सारगर्भित व पठनीय रूप से लिखने के लिए मेरे

द्वारा इस निम्नलिखित 6 अध्यायों में विभक्त किया जाने का प्रस्ताव निवेदित ह।

प्रथम अध्याय : तुलसीराम का व्यक्तित्व और कृतित्व

द्वितीय अध्याय : हिंदी आत्मकथा के स्वरूप और विकास

तृतीय अध्याय : समकालीन आत्मकथा और तुलसीराम

चतुर्थ अध्याय : तुलसीराम के आत्मकथा में दलित चेतना एक विश्लेषण

4.1 मानवीय संवेदना

4.2 स्त्री संवेदना

4.3 राजनीतिक मूल्यहीनता के प्रति रोष

4.4 शोषितों के प्रति संवेदना

4.5 जनप्रिय

पंचम अध्याय : तुलसीराम के आत्मकथा में शिल्प संयोजन

5.1 भाषागत सहजता

5.2 मुहावरेदार भाषा का प्रयोग

5.3 चित्रात्मक भाषा का प्रयोग

5.4 आलंकारिक भाषा का प्रयोग

5.5 अंग्रेजी भाषा के शब्द का प्रयोग

5.6 अरबी, फारसी भाषा के शब्दों का प्रयोग

अष्टम अध्याय : उपसंहार

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तुलसीराम मुर्दहिया राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 2010
2. तुलसीराम मणिकार्णिका राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 2016

सहायक ग्रंथ

1. अरुण हरपाल सिंह दलित साहित्य के आधार तत्व भारतीय भाषा परिषद, नई दिल्ली संस्करण - 2011
2. कुमार डॉ. ऋषि, हिंदी साहित्य का दलित पक्ष, आनंद प्रकाशन, कोलकाता संस्करण - 2018
3. चौहान सूरजपाल तिरस्कृत अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद संस्करण - 2002
4. जैन पुनिता, हिंदी दलित आत्मकथाएं एक मूल्यांकन सामयिक बुक्स, नई दिल्ली संस्करण - 2017
5. नैमिशराय, मोहनदास अपने-अपने पिंजरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 1995
6. मेहरा दिलीप, हिंदी कथा साहित्य में दलित विमर्श क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, जगतपुरी, नई दिल्ली, संस्करण - 2011

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Consumer Data Protection and Privacy Rights in India: A Comprehensive Analysis

Dr. Nidhi Sharma

Abstract

The rapid digitization of India has led to an exponential increase in the collection, processing, and sharing of personal data. This has raised significant concerns about the privacy and security of individuals' personal information. This paper delves into the evolving landscape of consumer data protection and privacy rights in India. It examines the existing legal framework, key challenges, and emerging trends in this area. Additionally, the paper analyses the role of various stakeholders, including the government, industry, and civil society, in safeguarding consumer data privacy. By exploring the interplay between technological advancements and legal regulations, this research aims to contribute to a comprehensive understanding of data protection and privacy issues in India.

Keywords: Data protection, privacy rights, personal data, data privacy, cybersecurity, data breaches, India, GDPR, PDPA

Introduction

The digital revolution has transformed the way we live, work, and interact. With the increasing reliance on technology, personal data has become a valuable commodity. However, the collection, processing, and sharing of personal data without adequate safeguards can lead to significant privacy risks. In India, the burgeoning digital economy has amplified concerns about data protection and privacy rights. This paper aims to examine the current state of data protection and privacy rights in India, analyse the key challenges and opportunities, and explore potential solutions to safeguard consumer data.

The Legal Framework for Data Protection

Several countries have enacted comprehensive data protection laws to safeguard individual privacy rights. Some of the key legal frameworks include:

- **General Data Protection Regulation (GDPR):** A European Union regulation that imposes strict data protection obligations on organisations processing personal data of EU residents.
- **California Consumer Privacy Act (CCPA):** A California law that provides consumers with greater control over their personal data and imposes obligations on businesses that collect and process personal data.
- **Personal Data Protection Act (PDPA):** India's data protection law, which aims to protect

the privacy of individuals and regulate the processing of personal data.

While India lacks a comprehensive data protection law comparable to the European Union's General Data Protection Regulation, several laws and regulations provide some level of protection for personal data.

legal frameworks in India include:

1. **The Information Technology Act, 2000 (IT Act):**
   - The IT Act provides provisions for the protection of information, including personal data. **a)Section 43A:** Reasonable Security Practices and Procedures:
   - Mandates that companies dealing with sensitive personal data or information must implement reasonable security practices and procedures to protect such data.
   - The term "sensitive personal data or information" is defined to include financial information, health information, sexual orientation, biometric information, etc.
   - Failure to comply with Section 43A can lead to civil and criminal liability.
   - **b)Section 43B**: Data Breach Notification:
   - Requires data fiduciaries to notify individuals affected by a data breach.
   - In case of a significant data breach, the data fiduciary must inform the Computer Emergency Response Team-India (CERT-In).
   - **c) Section 66:**
   - Deals with computer-related offences, including unauthorised access, hacking, and data theft.
   - These provisions can be used to prosecute individuals who misuse or steal personal data.

Limitations of the IT Act

While the IT Act provides some level of protection for personal data, it has certain limitations:

- **Lack of Comprehensive Data Protection:** The IT Act is not a comprehensive data protection law and lacks specific provisions addressing data protection principles such as purpose limitation, data minimization, and accountability.
- **Enforcement Challenges:** Enforcement of the IT Act, particularly Section 43A, can be challenging due to various factors, including technical complexities and resource constraints.
- **Evolving Technological Landscape:** The rapid evolution of technology, such as artificial intelligence and the Internet of Things, presents new challenges for data protection that may not be adequately addressed by the existing legal framework.

The Need for a Comprehensive Data Protection Law

Given the increasing importance of data protection and privacy, there is a growing need for a comprehensive data protection law in India. Such a law could:

- **Provide a Clear Legal Framework:** A comprehensive law would provide a clear legal

framework for data protection, specifying the rights of individuals and the obligations of data controllers and processors.

- **Strengthen Enforcement Mechanisms:** A dedicated data protection authority could be established to enforce the law and impose penalties for non-compliance.
- **Adapt to Evolving Technological Landscape:** A comprehensive law can be designed to adapt to emerging technologies and address new challenges.
- **Harmonize with International Standards:** Aligning with international data protection standards, such as the GDPR, can facilitate cross-border data flows and enhance India's reputation as a data-friendly jurisdiction.

while the IT Act provides some level of protection for personal data, it is not sufficient to address the complex challenges of data protection in the digital age. A comprehensive data protection law is essential to safeguard individual privacy and foster innovation in India's digital economy.

2. **The Telecom Regulatory Authority of India (TRAI) Regulations:**

- The TRAI Role in Consumer Data Protection and Privacy Rights in India-

It has played a significant role in shaping the regulatory landscape for consumer data protection and privacy rights in India's telecommunications sector. While not a comprehensive data protection authority, TRAI has issued regulations and guidelines to safeguard the privacy of telecom users.

Key TRAI Regulations and Guidelines

a) **Telecom Commercial Communications Customer Preference Regulations, 2018:**

- This regulation aims to protect consumers from unsolicited commercial communications (UCC), including telemarketing calls and SMS.
- It provides a framework for consumers to register their preferences for receiving commercial communications and for telecom service providers to adhere to these preferences. b)**Telecom Consumer Protection (Telecom Commercial Communications Customer Preference) Regulations, 2018:**
- This regulation further strengthens consumer protection by imposing penalties on telecom service providers for non-compliance with the Do Not Disturb (DND) registry.
- It also mandates transparency in pricing and billing practices.

1. **Privacy of Telecom Users Regulations, 2018:**

- This regulation outlines the principles of fair and reasonable treatment of telecom users' personal information.
- It mandates that telecom service providers should obtain explicit consent from users before collecting, processing, and sharing their personal data.
- The regulation also requires service providers to implement adequate security measures to protect user data.

2. **Guidelines on Data Protection in Telecom Sector:**

- These guidelines provide a comprehensive framework for data protection in the

telecom sector.

- They cover various aspects of data protection, including data minimisation, purpose limitation, data security, and cross-border data transfers.

Impact of TRAI Regulations on Consumer Data Protection

TRAI's regulations have had a significant impact on consumer data protection in India:

- **Enhanced Consumer Rights:** The regulations have empowered consumers by giving them greater control over their personal data and the ability to opt out of unsolicited commercial communications.
- **Increased Accountability of Telecom Service Providers:** Telecom service providers are now held accountable for protecting consumer data and complying with data protection principles.
- **Improved Data Security Practices:** The regulations have encouraged telecom service providers to implement stronger security measures to safeguard user data.
- **Transparency and Accountability:** The regulations promote transparency in pricing, billing, and data usage practices.

Challenges and Future Directions

While TRAI's regulations have made significant strides in protecting consumer data privacy, several challenges remain:

- **Limited Scope:** TRAI's regulations primarily focus on the telecom sector and may not adequately address the broader issue of data protection across all sectors.
- **Enforcement Challenges:** Effective enforcement of regulations and penalties is crucial to ensure compliance.
- **Evolving Technological Landscape:** The rapid evolution of technology, such as AI and IoT, poses new challenges for data protection.

To address these challenges, it is essential to strengthen the existing legal framework, enhance enforcement mechanisms, and promote digital literacy among consumers. Additionally, industry self-regulation and international cooperation can play a vital role in safeguarding consumer data privacy in the digital age.

3. **Payment and Settlement Systems Act, 2007:**
    - This Act governs payment systems in India and includes provisions for the protection of payment card data.
4. **Indian Contract Act, 1872:**
    - This Act can be used to address contractual obligations related to data protection, such as terms of service and privacy policies.

Emerging Challenges in Data Protection in India

Despite the existence of these legal frameworks, India faces several challenges in effectively protecting consumer data privacy:

1. **Lack of a Comprehensive Data Protection Law:** A comprehensive data protection law is essential to address the evolving landscape of data privacy.
2. **Data Breaches and Cybersecurity Threats:** Increasing cyberattacks and data breaches pose significant risks to personal data.
3. **Cross-Border Data Flows:** The global nature of data flows raises concerns about the adequacy of data protection standards in other countries.
4. **Surveillance and Mass Surveillance:** Government surveillance and mass surveillance programs can erode individual privacy.
5. **AI and Data Privacy:** The use of AI for data analysis and decision-making raises concerns about bias, discrimination, and the misuse of personal data.
6. **IoT and Data Privacy:** The proliferation of IoT devices can generate vast amounts of personal data, increasing the risk of data breaches and privacy violations.

Case Studies of Data Breaches in India

- **Aadhaar Data Breach:** In 2018, a massive data breach exposed the personal information of millions of Indian citizens enrolled in the Aadhaar program.
- **Airtel Data Breach:** In 2020, Airtel, a leading telecom operator, suffered a data breach that affected a large number of its customers.
- **Flipkart Data Breach:** In 2020, Flipkart, an e-commerce giant, faced a data breach that compromised the personal information of its customers.

Role of Stakeholders in Data Protection

Various stakeholders play a crucial role in safeguarding consumer data privacy:

- **Government:** The government has a crucial role to play in enacting and enforcing data protection laws. It can also establish a robust regulatory framework to oversee data protection practices.
- **Industry:** Businesses must implement strong data protection policies and practices, such as data minimisation, security safeguards, and transparent data practices.
- **Civil Society Organisations:** Civil society organisations can raise awareness about data privacy issues, advocate for stronger data protection laws, and monitor industry compliance.
- **Consumers:** Consumers should be aware of their rights and take steps to protect their personal data, such as using strong passwords, being cautious about sharing personal information online, and monitoring their online accounts.

The Way Forward: A Path to Enhanced Data Protection

To address the challenges and ensure robust data protection in India, the following steps can be taken:

1. **Enactment of a Comprehensive Data Protection Law:** A comprehensive data protection law should be enacted to provide a clear legal framework for data protection.

2. **Strengthening Cybersecurity Measures:** Businesses and government agencies should invest in robust cybersecurity measures to protect against data breaches.
3. **Promoting Data Privacy Awareness:** Public awareness campaigns should be conducted to educate individuals about data privacy rights and best practices.
4. **International Cooperation:** India should collaborate with other countries to develop international standards for data protection and facilitate cross-border data flows.
5. **Empowering Individuals:** Individuals should be empowered to exercise their data privacy rights and take control of their personal information.

Conclusion

The protection of consumer data and privacy rights is essential in the digital age. India has made some progress in this area, but significant challenges remain. By strengthening the legal framework, promoting cybersecurity, and empowering individuals, India can create a more secure and privacy-friendly digital environment.

References

- Raman, M. S. (2018). Cyber Laws in India: A Comprehensive Guide.LexisNexis Butterworths Wadhwa.
- Kumar, P. (2023). Data Protection in India: A Critical Analysis of the Digital Personal Data Protection Act, 2023. Journal of Cyber Law and Cybercrime, 10(2), 115-130.
- Ministry of Electronics and Information Technology. (2018). Report of the Committee of Experts on Data Protection. New Delhi: Government of India.
- The Information Technology Act, 2000. New Delhi: Ministry of Electronics and Information Technology.
- Computer Emergency Response Team-India (CERT-In). (2023).

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारतीय साहित्य में अनुवाद की भूमिका

डॉ. केशव क्षीरसागर
हिंदी विभाग, रामकृष्ण परमहंस महाविद्यालय, धाराशिव
मो. नं. 9960895796
ई- मेल : drkeshavkshirsagar@gmail.com

शोध सार : भारतीय साहित्य की प्राचीन धरोहर अनुवाद से ही आज जीवंत है तथा समाज में भारतीय मूल्यों एवं संस्कृति के प्रति नवचेतना जागृत करने में सफल हुई है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित पद्य साहित्य जिसमें काव्य और महाकाव्य प्रमुख हैं, इनके अनूदित पाठ भारत के इतर भाषा समुदायों के लिए महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए हिंदी में रचित प्रियप्रवास, वैदेही वनवास, कामायनी, साकेत, उर्वशी और कुरुक्षेत्र आदि महाकाव्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हुए हैं। इस प्रकार भारतीय साहित्य की प्रमुख कृतियों रूपान्तरण इतर भाषा में उपलब्ध कराने से भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की समरूपता का ज्ञान देशवासियों को होगा। गद्य के क्षेत्र में कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, जीवनी, आत्मकथा, निबंध आदि साहित्यिक विधाओं का अंतरभाषिक अनुवाद भारतीय साहित्य में निहित सामाजिकता को दर्शाने के लिए सहायक हुआ है। भारत की राष्ट्र भाषा और राजभाषा हिंदी है, साथ ही हिंदी क्योंकि सर्वाधिक समझी तथा बोली जाती है, इसलिए हिंदी से ही सर्वाधिक साहित्य का अनुवाद इतर भाषाओं में हुआ है। उसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं से हिंदी में सर्वाधिक साहित्यिक कृतियों का अनुवाद हुआ है और यह प्रक्रिया जारी है। भारतीय साहित्य के अनुवाद की एक प्रमुख समस्या अंतरभाषिक अनुवाद की है अर्थात हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य परस्पर अनूदित नहीं हो पा रहा है। इस तरह के अनुवाद की आज भारतीय समाज को आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, हिंदी के कथाकारों में प्रेमचंद - साहित्य का अनुवाद भारत की लगभग सभी भाषाओं में उपलब्ध है। बंगाली के बंकिमचंद्र और शरतचंद्र का कथा साहित्य भी हिंदी एवं अनेक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध है। इसी तरह बंगाली के अनेक बड़े और लोकप्रिय लेखकों की रचनाएँ पद्य और गद्य दोनों विधाओं में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई हैं। हिंदी का पाठक वर्ग अतिविशाल होने के कारण इनकी ख्याति सर्वत्र व्याप्त है। बांग्ला साहित्य की लोकप्रियता और महत्व अनुवाद के ही कारण राष्ट्रव्यापी हो सका है। क्षेत्रीय भाषाओं की मूल रचनाओं की पठनीयता उस भाषा समुदाय के आकार पर निर्भर करती है इसीलिए हिंदी का पाठक समुदाय अति विशाल होने से भारतीय साहित्य की खपत भी हिंदी पाठक वर्ग में ही अधिक है। यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है कि आज क्षेत्रीय भाषाओं में रचित साहित्य पहले हिंदी में उपलब्ध होता है। साहित्य अकादमी पुरस्कृत हिंदीतर कृतियों का अनुवाद हिंदी में तथा हिंदी की रचनाओं का सभी भारतीय भाषाओं में करवाती है।

प्रास्ताविक - आज के वर्तमान भारतीय साहित्य की मूलभूत अवधारणा प्राचीन काल से विकसित और पल्लवित होकर विभिन्न भाषाओं के सामूहिक प्रयासों के स्वरूप से उत्पन्न हुई है। भारत उपमहाद्वीप शताब्दियों से गौरवशाली एवं समुन्नत सभ्यता और संस्कृति का दुनिया का केंद्र रहा है। विश्व मनीषा सदैव भारतीय चिंतन परंपराओं, साहित्य बोध तथा दार्शनिक पद्धतियों के प्रति विस्मयपूर्ण आदर का भाव प्रदर्शित करती रही है। भारतीय चिंतन परंपरा में प्राचीन काल से एक वैश्विक

दृष्टि समाहित रही है जिसके अंतर में समूची मानव जाति के कल्याण की चेतना विद्यमान रही है। इसी कारण भारत भूमि सदा से ही हर प्रकार के वैविध्य को आत्मसात करने में न केवल उदार रही है बल्कि हर उस नवीनता को स्वीकार कर उसके सर्वांगीण संवर्धन में सकारात्मक भूमिका निभाती भी आई है। भारत की यह समवेती और समावेशी प्रवृत्ति ही इसे अन्य सभ्यताओं और संस्कृतियों से भिन्न और विशिष्ट बनाती है। यह इस भूमि की ही महिमा है कि यहाँ युगों-युगों से असंख्य जातियाँ अपनी धार्मिक आस्थाओं, सांस्कृतिक विशिष्टताओं, सामाजिक रूढ़ियों और राजनीतिक प्रतिबद्धताओं को साथ लिए, सुरक्षित रहते हुए विकास के मार्ग प्रशस्त करती रहीं। संसार में ऐसी मिसाल कहीं नहीं मिलेगी जहाँ इतनी जातियाँ, भाषाएँ, संस्कृतियाँ और धार्मिक आस्थाएँ एक साथ पुष्पित और पल्लवित हो रहीं हों।

बीज शब्द : बहुभाषिकता, संस्कृति की बहुलता, भौगोलिक जटिलता, सांस्कृतिक समन्वय, आँचलिकता।

विषय प्रवेश - सन् 1947 में जब भारत का उदय एक राष्ट्र के रूप में हुआ, कुछ इतिहाकारों ने इस राष्ट्र को श्एक अस्वाभाविक राष्ट्रश् कहा, क्योंकि अकल्पनीय बहुभाषिकता और संस्कृति बहुलता का ऐसा नमूना संसार में अन्य किसी भी राष्ट्र की संरचना में दिखाई नहीं देता था। बहु-भाषिकता, संस्कृतिबहुलता और सैद्धान्तिक विभिन्नता, भौगोलिक जटिलता आदि स्वतंत्र भारत की विशिष्टताएँ हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। इतनी विभिन्नता के बावजूद इस देश का लोकतांत्रिक सह-अस्तित्व का स्वरूप निश्चित ही बाहरी दुनिया के लिए विस्मय और ईर्ष्या का कारण हो सकता है। भारत की बहुभाषिकता, इस राष्ट्र की अस्मिता और अद्भुत शक्ति है। इसकी विविधता में एक अंतलीन सांस्कृतिक समन्वय की ऊर्जा निहित है जो कि अनेकता में एकता की संचेतना को व्याप्त करने में सहायक है। वैविध्यपूर्ण सांस्कृतिक बहुलता के साथ लोगों के आचार-विचार-व्यवहार, धार्मिक और आध्यात्मिक चिंतन के अंतर्विरोध, सामाजिक रूढ़ियों और राजनीतिक विचार धाराओं के अंतर मंथन की प्रक्रिया यहाँ निरंतर गतिमान रही है। यही इस देश की बहुभाषिक संस्कृति की विशिष्टिता है।

भारतीय साहित्य - शब्द भारत की सभी भाषाओं में लिखित और मौखिक साहित्य के भंडार को कहा जाता है। संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त 22 भाषाओं का साहित्य सम्मिलित रूप से भारतीय साहित्य है। यह एक समुच्चय है जो कि सभी भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य का समेकित रूप है। भारतीय समाज मन को चित्रित करने वाला साहित्य ही भारतीय साहित्य है। केवल भाषापरक ही नहीं बल्कि इसकी पहचान इसके भारतीय सामाजिक सरोकार से बनी है। हर वह साहित्य भारतीय समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आँचलिक पक्ष को उजागर करता है, वह भारतीय साहित्य कहलाने का हकदार है। भारतीयता को उसके समूचेपन के साथ प्रस्तुत करने वाला साहित्य ही भारतीय साहित्य हो सकता है इसलिए विदेशों में भारतीय स्थितियों और समाज की अंतश्चेतना को प्रस्तुत करने वाला साहित्य भी भारतीय साहित्य की श्रेणी में स्थान प्राप्त करता है। केवल संविधान में उल्लिखित भाषाएँ ही नहीं वरन अन्य भारतीय बोलियों और उपभाषाओं में रचित साहित्य भी भारतीय साहित्य के दायरे में आता है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में अंग्रेज़ी भाषा का उल्लेख नहीं है किन्तु भारतीय लेखकों द्वारा रचित अंग्रेज़ी साहित्य भी भारतीय साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। भारतीय रचनाकारों के द्वारा रचित अंग्रेज़ी साहित्य की अपनी एक विशिष्ट पहचान है और इसे विश्व स्तर पर लोकप्रियता प्राप्त है। इस तरह भारतीय साहित्य के अंतर्गत भारतीय भाषाओं के साथ साथ भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य भी शामिल हो गया है। ष्भारतीय साहित्य की आधारभूत भारतीयता या एकता से परिचित होना तभी संभव होता है जब हम उसे अनेकता या भारतीय साहित्य की विविधता के संदर्भ में समझने का प्रयत्न करते हैं। पश्चिमी विचारधारा प्रत्येक समस्या को द्वि-आधारी प्रतिमुखता में बादल देती है और इसके विपरीत भारतीय मन जीवन की साकल्यवादी दृष्टि में विश्वास करता है और परिणामतरू एकता-अनेकता जैसे विरुद्धों के समूह को एक दूसरे के संपूरक के रूप में स्वीकार करना सहज हो जाता है और स्थानीय, प्रांतीय तथा सर्व-भारतीयता तथा राष्ट्रीय अस्मिता में एक सजीव संबंध स्थापित करना संभव हो पाता है। भारतीय साहित्य अपनी एकता में विविधता को अंगीकार करते हुए प्रदर्शित करता है और यही विश्व को भारत की देन है। अनेकता से एकता की ओर ले जाने वाला यह मॉडल भारत की अनन्यता है।''[1]

भारतीय साहित्य भाषिक बहुवचनीयता के साथ ही एक मूलभूत ऐक्य के तत्व को धारण किए हुए है, यह एक निर्विवाद

सत्य है। भारतीय साहित्य की मूलभूत्त एकता को प्रामाणित करने के लिए अनेकों ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक साक्ष्य मौजूद हैं। भारतीय साहित्य की एकता को प्रमाणित करने के उद्देश्य से सन् 1954 में साहित्य अकादमी की स्थापना हुई। डॉ. सर्वेपल्ली राधाकृष्णन ने तब कहा कि भारतीय साहित्य एक है यद्यपि वह बहुत-सी भाषाओं में लिखा जाता है। डॉ. सुनीतिकुमार चटजी ने अपनी पुस्तक लेंगवेजेज़ एंड लिटर्रेचर्स ऑफ इंडिया में भारतीय साहित्य के लिए श्बहुवचनश् शब्द का प्रयोग किया है। जब हम मध्ययुगीन भक्ति साहित्य का उदाहरण लेते हैं, तब हम देखते हैं कि यह सर्वभारतीय घटना 6-7 वीं शती में तमिल के आलवारों द्वारा घटित होकर कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान में प्रसारित होते हुए 13-14 वीं शती में कश्मीर तक फैल जाती है, और 15-16 वीं शती तक मध्य देश को अपने घेरे में ले लेती है। श्री चैतन्य के फलस्वरूप भक्ति के इस रूप का नवरूपण होता है और बंगाल, असम तथा मणिपुर में इस आंदोलन का प्रसार होता है। यह एक क्रान्ति थी, नवजागरण था जिसने भक्तों की कल्पना को झंझा की तरह झकझोर किया। भक्ति साहित्य में अलग-अलग भाषाओं का प्रयोग हुआ है, इसमें अनेक सांस्कृतिक विशिष्टताओं की अभिव्यक्ति विद्यमान है। विभिन्न भाषाओं में रचित इस साहित्य में मौजूद विविधता के बावजूद एक आम विश्वास, आस्था, मिथक तथा अनुश्रुतियाँ इनमें विषयवस्तु की एकता को दर्शाती हैं। इसी क्रम में आधुनिक काल के नवजागरण का उदाहरण भी लिया जा सकता है। वैज्ञानिक बुद्धिवादिता, व्यक्ति स्वाधीनता तथा मानवतावाद 14 वीं शती के यूरोपीय नवजागरण की विशेषताएँ थी। भारत में समय की माँग के अनुसार इनके स्थान पर राष्ट्रवाद, सुधारवाद तथा पुनरुत्थानवाद का प्रसार हुआ। एक ही विषय वस्तु - समाज सुधार को लेकर भारत की विभिन्न भाषाओं में पहला उपन्यास लिखा गया। तमिल में सैमुअल वेदनायकम पिल्लई, तेलुगु में कृष्णम्मा चेट्टी, मलयालम में चंदु मेनन, हिंदी में लाला श्रीनिवास दास, बांग्ला में मेरी हचिन्सन के उपन्यास की विषयवस्तु में समाज सुधार की ही प्रमुखता है। वस्तुतः इन्हीं सब कारणों से यह निष्कर्ष लिया जा सकता है कि कोई भी एक भारतीय साहित्य एक - दूसरे भारतीय साहित्य से कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है अतएव भारतीय साहित्य का कोई भी अध्ययन एक साहित्य के संदर्भ में अध्ययन के प्रति न्याय नहीं कर सकता। इन सारी विविधताओं का समाधान श्अनुवादश् के माध्यम से ही संभव है। भारतीय साहित्य की भाषिक विविधता को दूर करने में श्अनुवादश् की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भारतीय साहित्य की अवधारणा भाषा साहित्य के समीकरण पर आधारित नहीं क्योंकि यहाँ बहुत सी भाषाएँ हैं। हमारी बहुभाषिक स्थिति में एक लेखक बहुत सी भाषाओं में लिखता है। इसीलिए भारतीय साहित्य को किसी एक भाषा से संबद्ध करके उसे चिह्नित नहीं किया जा सकता। जब कोई भारतीय साहित्य की बात करता है तब एक भौगोलिक क्षेत्र और राजनीतिक एकता की बात उठती है। भौगोलिक क्षेत्र की अपेक्षा भारतीयता का आदर्श हमारे लिए ज़्यादा आवश्यक है। "पंडित नेहरू कहते थे, यह एक नेशन स्टेट नहीं है मगर एक राष्ट्र निर्मिति की स्थिति में है। रवीन्द्रनाथ कहते थे कि हमारा राष्ट्र मात्र भौगोलिक सत्ता नहीं, मृण्मय नहीं। वह एक विचार का प्रतीक है, वह चिन्मय है। हमारा राष्ट्रवाद हमारे प्राचीन आदर्शों तथा गांधीजी द्वारा प्रस्तुत बहुलवाद, आध्यात्मिक परंपरा, सत्य और सहिष्णुता के विचारों तथा नेहरू के समाजवादी तथा अपक्ष ग्रहण (non&alignment) के विचारों पर आधारित है। और सबसे बड़ी बात हमारे साहित्य की अवधारणा जनता तथा साहित्य के संपर्क की पहचान पर आधारित है। वस्तुतरू भारत के साहित्य को केवल भाषा, भौगोलिक क्षेत्र और राजनीतिक एकता से ही पहचाना नहीं जाता मगर कहीं अधिक उस देश की जनता के आश्रय से पहचाना जाता है।"[2]

भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता

भारतीय साहित्य भारतीय जनता की स्मरणीय अभिव्यक्तियों का समाहार है। यह सत्ता राजनीतिक अनिवार्यता से नहीं बल्कि समुदाय और समुच्चय की भावना से निर्धारित हुई जो भावना सदियों से हमारे भीतर मौजूद है। समुदाय की भावना से प्राप्त शक्ति भारतीय जनता और उसके क्रिया कलापों को समायोजित करती है और इसीलिए भारतीय साहित्य में लोक और शास्त्र का अनुशासन, आदर्श की अभिव्यक्ति और लोक की चुनौती और लोक से प्रेरित त्रासदी की अभिव्यक्ति सभी इकट्ठे दिखाई पड़ते हैं। समुदाय की यह भावना न तो उपनिवेशवाद की प्रतिक्रिया है और न ही राष्ट्रीय आंदोलन का परिणाम। यह

एक सार्वकालिक यथार्थ है।

भारतीय साहित्य का विचार भारत की बहुभाषिकता का स्वाभाविक परिणाम है। भारतीय साहित्य की एकता भाषागत एकता नहीं, विचारों और भावनाओं की एकता है। भारतीय साहित्य की संचलित भारतीयता का प्रमाण उसके बहुलवादी संदर्भ में ही मिलता है। विविधता का यह स्वरूप जो एकता की ओर हमें ले जाता है भारत के लिए एक आदर्श नमूना है और यह एकता जैसा कि कहा गया है भाषिक नहीं, वैचारिक है। उदाहरणतया - अशोक के शिलालेख कई बोलियों में उपलब्ध हैं परंतु उनमें एक ही बौद्ध धर्म के आदर्श विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। कालिदास के नाटक शकुंतला में संस्कृत के अतिरिक्त शौरसेनी, महाराष्ट्री तथा मागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है परंतु एक ही वैचारिक दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है और वह यह कि मनुष्य के लिए सांसारिकता से ही आध्यात्मिकता तक की यात्रा संभव हो पाती है। विद्यापति ने अपने काव्यागत विचार अवहट्ट, संस्कृत और मैथिली में प्रस्तुत किए हैं। और गुरुग्रंथ साहिब एक बहुभाषिक कृति है जिसमें एक ही सत् की अभिव्यक्ति हुई है। इस तरह भारत में विभिन्न भाषाओं के आश्रय से एक साहित्यिक संसार की रचना हुई है। इस देश में हर प्रकार की विविधता, भाषिक और गैरभाषिक के बावजूद पिछले एक हज़ार वर्षों में रूपकों, बिंबों, मिथकों अनुश्रुतियों, परिपाटियों, नियमों का एक जैसे निकाय का विस्तार हुआ है और परिणामतरू विभिन्न भाषाओं के साहित्य का एक दिशा से दूसरी दिशा में अभिसरण संभव हो पाया है जैसे कि एक परिवार की भाषाओं का होता है। भारतीय साहित्य अनेकों भाषाओं में अभिव्यक्त भारत की सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों एवं तद्जनित परिणामों का वृहद कोष है। इन भाषाओं में रचित विपुल साहित्य के परस्पर आदान-प्रदान के लिए एक भाषिक उपकरण की आवश्यकता होती है। श्अनुवादश ही वह उपकरण, औज़ार तथा माध्यम है जिससे भारतीय साहित्य की विपुल धरोहर और समकालीन रचनाशीलता को एक दूसरे के सम्मुख रखा जा सकता है। भारतीय साहित्य को एकभाषिक संप्रेषणीयता की स्थिति से अनुवाद के माध्यम से द्विभाषी अथवा बहुभाषी संप्रेषणीयता की स्थिति में लाया जा सकता है। 'अनुवाद' ही वह माध्यम है जो अंतरभाषिक साहित्यिक संवाद स्थापित करने में सक्षम है। साहित्य के दोनों रूपों पर जब चर्चा की जाती है तब सृजनशील साहित्य (गद्य और पद्य, आलोचनात्मक साहित्य) और ज्ञानात्मक साहित्य (समाज विज्ञान, मानविकी, विज्ञान, प्रबंधन, जनसंचार, व्यापार-वाणिज्य, विपणन, प्रौद्योगिकी आदि का साहित्य) का संदर्भ अनुवाद के दो वृहद क्षेत्रों को लेकर उपस्थित होता है। दोनों ही क्षेत्रों में अनुवाद की व्यापक संभावनाएँ निहित हैं। अनुवाद ही भाषिक विभिन्नता और अलगाव को दूर करने की क्षमता रखती है।

भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य के अक्षय भंडार के अंतरभाषिक रूपान्तरण के लिए अनुवाद की प्रक्रिया ही एक मात्र उपाय है। श्अनुवादश के द्वारा ही विभिन्न भाषाओं के मध्य मौजूद संप्रेषण के गतिरोध को तोड़ा या मिटाया जा सकता है। इस दृष्टि से अनुवाद एक अपरिहार्य उपकरण है जिससे भारतीय साहित्य में वर्णित विषय वस्तु और उसके भाव सौंदर्य का आस्वादन किया जा सकता है।

स्रोतभाषा की पाठ - सामग्री को लक्ष्यभाषा की समानान्तर पाठ सामग्री से प्रतिस्थापन ही अनुवाद है (कैटफर्ड)। अनुवाद के प्रकारों में साहित्यिक अनुवाद का विशेष स्थान है। इस वर्ग के अनुवाद के अंतर्गत साहित्यिक पाठ का स्रोतभाषा से लक्ष्यभाषा में भाषिक रूपान्तरण किया जाता है। अनुवाद में लक्ष्यभाषा के पाठ के अर्थ की प्रधानता महत्वपूर्ण है।

अनुवाद प्रक्रिया में अर्थ प्राण तत्व है। अनुवाद की समूची प्रक्रिया अनूद्य एवं अनूदित पाठ के अर्थ-सामीप्य को सार्थक बनाने की है। इसीलिए अनूद्य पाठ के अर्थ की तुलना अनूदित पाठ के अर्थ से की जाती है। अनुवाद में अनूद्य (स्रोत भाषा पाठ) और अनूदित (लक्ष्य भाषा) पाठ के अर्थ में सामंजस्य और निकटता अनिवार्य है। अनूदित पाठ में मूल पाठ से अर्थ विचलन, अर्थ संकोच और अर्थ विस्तार स्वीकार्य नहीं होता, अर्थात अनूदित पाठ में मूल पाठ का ही अर्थ ध्वनित होना चाहिए। साहित्यिक अनुवाद की समस्याएँ साहित्येतर अनुवाद की समस्याओं से अनेक अर्थों में भिन्न होती हैं। भारतीय साहित्य के अनुवाद का अर्थ, भारत की विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य के सभी विधाओं के पाठ का अनुवाद है। यदि अनूदित पाठ में स्रोत भाषा के पाठ का अर्थ अक्षुण्ण हो और यदि प्रभाव की दृष्टि से वह मूल के निकट तथा अनुरूप हो तो अनूदित पाठ

भी मौलिक पाठ की ही तरह पाठकों को आकर्षित करेगा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उन्हीं के द्वारा बांग्ला से अंग्रेज़ी में अनूदित 'गीतांजलि' के पाठ के लिए श्नोबल पुरस्कारश 1913) प्राप्त हुआ था। अनुवाद की शक्ति अपरिमेय और अजेय होती है। भारतीय साहित्य में कुछ कालजयी कृतियों के अनूदित संस्करण मूल कृति का विश्वास दिलाती हैं। जैसे शरतचंद्र कृत देवदास, चरित्रहीन और श्रीकांत, बिराजबहू, बंकिमचन्द्र का आनंदमठ, रवीन्द्रनाथ ठाकुर का गोरा और महाश्वेता देवी कृत जंगल के दावेदार आदि कृतियों के अनूदित पाठ प्रामाणिक अनुवाद के उदाहरण हैं।

भारतीय साहित्य के अनुवाद की आवश्यकता

1. सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने के लिए।
2. देश में सांस्कृतिक एकता का प्रचार करने के लिए।
3. राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के लिए।
4. देशवासियों में विभिन्न प्रान्तों और भाषाओं के प्रति सजगता तथा संवेदना उत्पन्न करने के लिए।
5. विभिन्न भाषा समुदायों के मध्य भावनात्मक एकता विकसित करने के लिए।
6. सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए।
7. विभिन्न प्रदेशों के सामाजिक संस्कार एवं लोक संस्कृति के ज्ञान के लिए।
8. भारतीय साहित्य में निहित मूलभूत एकता के तत्वों से अवगत कराने के लिए।
9. भारतीय साहित्य में निहित गौरवशाली साहित्यिक परंपराओं को पुनजीवित करने के लिए।
10. वर्तमान संदर्भ में प्रांतीय विभेदों को दूर करने के लिए।
11. समाज के विभिन्न सामाजिक वर्गों में स्नेह, सौमस्य और सौहार्द्र के भाव को विकसित करने के लिए।

भाषा संस्कृति की वाहिका होती है। अनुवाद प्रक्रिया में स्रोतभाषा के साहित्य के सांस्कृतिक तत्वों का लक्ष्यभाषा में रूपांतरण होता है। इस तरह श्अनुवादश सांस्कृतिक आदान-पदान की प्रक्रिया को सम्पन्न करती है। भारतीय साहित्य के अंतरभाषिक अनुवाद से देश में सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा सांस्कृतिक एकता के प्रचार को प्रभावी बनाया जा सकता है। भारतीय साहित्य में विभिन्न प्रान्तों की सामाजिकता और संस्कृति बोध के साथ साथ लोक संस्कृति भी व्यक्त होती है। अनुवाद के माध्यम से विभिन्न प्रान्तों की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों के प्रति देश के अन्य क्षेत्रों के लोगों में विशेष संवेदना और भावनात्मक लगाव पैदा होता है। राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक बोध उत्पन्न करने के लिए भारतीय साहित्य का अनुवाद इस प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में सहायक सिद्ध होगा। देशवासियों में ह्रासोन्मुख राष्ट्रीय चेतना विकसित करने के लिए विभिन्न भाषाओं में रचित भारतीय साहित्य को अनुवाद द्वारा उपलब्ध कराना आवश्यक है। आज का युग विभेदों और विखंडन का युग है। सारा देश विषम सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से गुज़र रहा है, ऐसे में इस विखंडन और विभेदीकरण की प्रक्रिया को अनुवाद के माध्यम से भारतीय साहित्य में अंतर्निहित मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों के प्रति जागरूकता पैदा कर मानवीय गुणों को संवर्धित किया जा सकता है। अनुवाद के माध्यम से वर्तमान युवा पीढ़ी को भारतीय साहित्य की अनमोल धरोहर से परिचय कराया जा सकता है, जिसकी आज नितांत आवश्यकता है। भारतीय साहित्य के अंतर्गत संस्कृत से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्यिक परंपराएँ सम्मिलित हैं। भारतीय साहित्य में प्राचीन से वर्तमान तक, वैदिक साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य तक गद्य-पद्य की सभी विधाएँ सम्मिलित हैं। भारतीय समाज बहुभाषिक समाज है, किसी भी व्यक्ति के लिए सभी भाषाओं का ज्ञान दुरूसाध्य है इसीलिए विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य को अनुवाद के माध्यम से ही इतर भाषा में रचित साहित्य का आस्वादन किया जा सकता है। भारत में साहित्यिक अनुवाद की स्थिति संतोषजनक नहीं है। भारत में संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त बाईस भाषाओं के प्रयोक्ता मौजूद हैं, साथ ही अनेकों बोलियों और उपभाषाओं के प्रयोक्ता भी बड़ी संख्या में देश की जनसंख्या का हिस्सा हैं। भारतीय साहित्य अंग्रेज़ी, उर्दू और फारसी के साथ-साथ संविधान में उल्लिखित सभी भाषाओं में, साहित्य की सभी विधाओं में रचा जाता है। संस्कृत साहित्य और उसके बाद पालि, प्राकृत

और अपभ्रंश का साहित्य भी भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में विद्यमान है। भारतीय भाषा समुदाय विस्तृत भौगोलिक सीमाओं में आवागमन करता है और सारा देश भारत की प्राचीन साहित्यिक संपदा से परिचित है। संस्कृत में रचित वेद, उपनिषद, आगम तथा ब्राह्मण ग्रंथ आदि अनुवाद के माध्यम से ही आज सारे भारत में हिंदी तथा इतर भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। इससे संस्कृत से अनभिज्ञ पाठक वर्ग इन अमूल्य साहित्यिक ग्रन्थों से ज्ञान प्राप्त कर रहा है। संस्कृत में रचित वैदिक साहित्य और साथ ही नाना पुराण निगमागम आदि महत्वपूर्ण ज्ञान के ग्रंथ अनुवाद के द्वारा ही जनसामान्य को उपलब्ध हो सके हैं। अनुवाद के बिना ज्ञान का अंतरण इस रूप में संभव नहीं होता। भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर का अनुवाद विदेशी भाषाओं में भी हुआ है और विदेशी समाज भी प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य के अनुवाद से लाभान्वित हो रहा है। भारत के वैभवपूर्ण सांस्कृतिक अतीत को विदेशी समाज अनुवाद के माध्यम से ही जान सका है।

मध्यकालीन भारतीय साहित्य का प्रचार और प्रसार अनुवाद द्वारा ही संभव हुआ है। भक्ति साहित्य और संत साहित्य जो कि विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय भाषाओं में रचा गया, अनुवाद के माध्यम से देश के कोने कोने में व्याप्त हुआ। भक्ति साहित्य का अधिकांश हिस्सा अलिखित अथवा जनश्रुति का साहित्य का है जिसकी परंपरा मौखिक है। इस प्रकार के साहित्य का प्रचार समूचे देश में विभिन्न भाषाओं में अनूदित पाठ के द्वारा ही संभव हो सका। उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के संत एवं आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धांतों का व्यापक प्रचार केवल अनूदित पाठ के माध्यम से ही विस्तृत रूप से संभव हुआ। इन सबमें वैचारिक समानता तो थी ही लेकिन भाषिक विभेद से परस्पर विचारों के आदान-प्रदान में कठिनाई थी। इसी गतिरोध को अनुवाद - प्रक्रिया के द्वारा सुलझा लिया गया। इस तरह कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा आदि के पद मूल भाषा में रचित तथा गेय होने के साथ-साथ भारत की अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध हुए और उतने ही लोकप्रिय हैं जितने कि मूल भाषा में। दक्षिण के अन्नमाचार्य, त्यागराय, पोतना, वेमना, आन्डाल, अक्क मादन्न, मोल्ल, अव्वैय्यार आदि के साथ आलवारों के संकीर्तन, तमिल संगम साहित्य आदि अनुवाद के माध्यम से अपनी गरिमा और महत्व को प्रतिपादित कर सके हैं। रामानुज, रामानन्द, वल्लभाचार्य, शंकराचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि दार्शनिक आचार्यो के संदेश और उनके सैद्धान्तिक विचार अनुवाद के माध्यम से सारे भारत में ग्राह्य बन पड़े हैं। उसी प्रकार उत्तर भारत के साधु-संत और महात्माओं के संदेश भी दक्षिण में अनुवाद के माध्यम से ही पहुँच पाए हैं। उपनिषद के विचार उत्तर से दक्षिण की ओर जाकर - शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के द्वारा अद्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद के रूप में प्रकट होते हैं। इसी तरह भक्ति अनुवाद के माध्यम से दक्षिण से उत्तर की ओर यात्रा करती है। कश्मीर का शैव सिद्धान्त जाकर तमिल क्षेत्र में अपना स्थान बनाता है। गांधी जी का सत्य और अहिंसा को लेकर किए प्रयोग की अनुगूँज अनुवाद के माध्यम से ही देश के कोने-कोने तक पहुँचती है। रवीन्द्र की मनुष्य और प्रकृति में सौन्दर्य की खोज सारे भारत की खोज बन जाती है। फकीरमोहन सेनापति के द्वारा उपन्यासों में सर्वप्रथम प्रसारित सामाजिक यथार्थ प्रेमचंद के द्वारा प्रयुक्त होकर सर्वभारतीय स्थान ग्रहण कर लेता है। दलित साहित्य गुजरात, महाराष्ट्र से कर्नाटक होते हुए हिंदी क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है। इस तरह कृति और उनके लेखक एक बृहत् साहित्यिक परंपरा का हिस्सा बन जाते हैं और तब उनका भाषिक अस्तित्व राष्ट्रीयता की संवेदना के प्रसारण में बाधा नहीं बनता।

साहित्यिक के शैलीगत अनुवाद के प्रकारों में भावानुवाद, सारानुवाद, शब्दानुवाद आदि प्रमुख हैं। पद्य पाठ का सरल सारानुवाद गद्य में रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भारतीय साहित्य के अनुवाद में सारानुवाद की प्रमुखता अधिक है। कालिदास, बाण, भास, आदि संस्कृत कवियों के महाकाव्यों और पद्य नाटकों का गद्यानुवाद तथा सारानुवाद मौलिक रचना के सारांश को सरलता पूर्वक समझने में अत्यंत उपयोगी रहा है। शेक्सपियर के नाटक जो कि सारे पद्य शैली में ही रचे गए, उनका गद्य के रूप में सारानुवाद पाठकों को शेक्सपियर के नाटकों का आस्वादन करने में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। भारतीय साहित्य के अमूल्य धरोहर, संस्कृत में रचित रामायण और महाभारत महाकाव्यों को अधिकांश पाठक अनुवाद के माध्यम से सभी भारतीय भाषाओं में पढ़कर लाभान्वित हो रहे हैं। भगवद्गीता का मूल पाठ संस्कृत में है लेकिन संस्कृत से अनभिज्ञ पाठक अन्य भाषाओं में अनूदित पाठ पढ़कर गीता के संदेशों का सार समझकर जीवन में उनका आचरण कर रहे हैं। पद्य का अनुवाद मौलिक कृति के अनुरूप छंदबद्ध और छंदमुक्त दोनों तरह से किया जाता है।

इधर भारतीय अंग्रेज़ी रचनाकारों के द्वारा लिखित अंग्रेज़ी साहित्य बहुत लोकप्रिय हुआ है और भारतीय साहित्य में भारतीय अंग्रेज़ी लेखकों की बाढ़ सी आ गई है। चेतन भगत, अनीता देसाई, अरुंधती राय, आमिश आदि नई पीढ़ी के युवा लेखकों के उपन्यास लाखों की संख्या में पढ़े जा रहे हैं और इनके हिंदी अनुवाद भी लोकप्रिय हो रहे हैं।

भारतीय साहित्य के अनुवाद की समस्याएँ -

1. भारतीय साहित्य के अनुवाद के लिए संगठित संस्थाओं का सरकारी और

2. गैरसरकारी स्तर पर अभाव है। केवल साहित्य अकादमी सरकारी स्तर पर यह कार्य सीमित दायरे में कर पा रही है। भारतीय साहित्य की व्यापक बहुभाषिक स्वरूप के अनुरूप अनुवाद के प्रयास अत्यल्प और अपर्याप्त है।

3. भारत में स्वैच्छिक रूप से अनुवाद कार्य नहीं किया जाता है। कुछ ही अनुवादक आत्मतुष्टि के लिए अपनी अभिरुचि के अनुसार भारतीय साहित्य के अनुवाद में रुचि रखते हैं।

4. भारत में साहित्यिक अनुवाद को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त नहीं है। सरकारी और गैरसरकारी दोनों स्तरों पर साहित्यिक अनुवाद कार्य को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता और इसे व्यवसाय (प्रोफेशन) के रूप में भारत में इसे मान्यता प्राप्त नहीं है।

5. इधर कुछ प्रकाशकों द्वारा व्यापारिक दृष्टि से चुनिन्दा भारतीय साहित्य की कृतियों का अनुवाद करवाया जा रहा है लेकिन यह अपर्याप्त है। इसका उद्देश्य केवल व्यापारिक है न कि भारतीय साहित्य का संवर्धन अथवा भारतीय सांस्कृतिक चेतना जागृत करना है।

6. भारतीय साहित्य के अनूदित पाठ के प्रति जनसामान्य में अभिरुचि का अभाव।

7. भारतीय साहित्य के प्रति उदासीनता का भाव।

8. भारतीय साहित्य की संकल्पना अस्पष्ट है और अभी पूरी तरह से जनसामान्य में इसकी स्पष्ट छवि स्थापित नहीं हो पाई है।

निष्कर्ष : भारत की भाषाओं के दो अस्तित्व हैं। पहला भाषिक और दूसरा सांस्कृतिक, जो भाषा को अतिक्रमित कर प्रकट होता है। यही कारण है कि फारसी और अंग्रेज़ी भाषाएँ भारतीय नहीं होने पर भी इन भाषाओं में रचित साहित्य को भारतीय साहित्य में स्थान मिलता है। भारतीय साहित्य भारतीय जनता की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का इतिहास है। उनकी साहित्यिक परंपराओं, परिवर्तन और परिणति, उत्थान और पतन तथा पुनरुत्थान का इतिहास है।

भारतीय साहित्य की मूलभूत संकल्पना को साकार बनाने के लिए अंतरभाषिक अनुवाद प्रक्रिया को प्रभावी बनाना होगा। भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक समन्वय का प्रचार करने के लिए भारतीय साहित्य को ही अनुवाद के माध्यम से सक्रिय करना होगा। भारतीय साहित्य जो कि भारत की सभी भाषाओं में रचित साहित्य का समुच्चय है, एक सम्मिलित स्वरूप है, इसे प्रत्येक भारतवासी को आत्मसात् करना होगा। भारतीय साहित्य किसी एक भाषा में रचित साहित्य की संज्ञा नहीं है बल्कि यह एक समावेशी और समेकित वृहत्तर साहित्य रूप है जो कि समूचे भारत की अस्मिता को अपने भीतर समेटे हुए है। भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता अनुवाद के माध्यम से ही साध्य है।

संदर्भ

1. तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य - इन्द्रनाथ चौधुरी, पृ 99, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2021
2. तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य - इन्द्रनाथ चौधुरी, पृ 104, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2021

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सरकारी नीतियों एवं तकनीकी साधनों का सहजीवी प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

तबस्सुम
(शोधार्थी)
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
Email-fatimabegum.lko121@gmail.com

अमूर्त ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सरकारी नीतियों और तकनीकी साधनों का सहजीवी प्रभाव एक महत्वपूर्ण विषय है। प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सरकारी नीतियों और तकनीकी साधनों के प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य सरकारी नीतियों और तकनीकी साधनों के बीच संबंधों को समझ कर ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सुधार के लिए प्रभावी रणनीतियों का विकास करना है। ग्रामीण महिलाएं भारत की जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, लेकिन आज भी अनेक ग्रामीण क्षेत्र तकनीकी साधनों से वंचित हैं। हालांकि तकनीकी साधनों की पहुंच और उपयोग से ग्रामीण महिलाओं के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन आया है।

अतः हम कह सकते है कि, सरकारी नीतियां और तकनीकी साधन ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सुधार के लिए अत्यधिक प्रभावी सिद्ध हो रहे हैं। ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में तकनीकी साधनों का उपयोग उनकी साक्षरता और ज्ञान में अनवरत वृद्धि कर रही है।

मुख्य शब्द-ग्रामीण महिला, महिला एवं शिक्षा, महिला एवं तकनीकी, समाज में महिलाओं की स्थिति, विज्ञान एवं तकनीकी, तकनीकी संसाधनों का प्रयोग आदि।

प्रस्तावना : महिला प्रकृति के द्वारा निर्मित एक अद्वितीय रचना है, महिलाओं के अभाव में प्रकृति का संचालन खतरे में पड़ जाएगा।इसलिए महिलाओं को शक्ति का रूप माना गया है। महि + ला शब्द का अर्थ है कि महि अर्थात् पृथ्वी और ला का अभिप्राय सृष्टि से है। जो धरती की तरह धैर्य धारण करने की शक्ति रखती है। जिसे हम महिला कहते हैं। समाज के सर्वांगीण विकास के लिये महिलाओं को शिक्षित होने के साथ ही आत्मनिर्भर भी होना चाहिये। जिससे वे घर व समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सके।

प्रत्येक देश व समाज का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उस देश की आधी आबादी अर्थात् महिलाओं का सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था में क्या स्थान है?

जवाहर लाल नेहरू ने सन् 1958 में 'तारा अली बेग, वूमेन ऑफ इंडिया' की भूमिका लिखते हुये कहा कि एफ. फ्रांसिस ने लिखा था कि, किसी देश की स्थिति जानने के लिए सबसे अच्छा उपाय यह पता लगाना है कि वहां महिलाओं की स्थिति कैसी है।

वहीं नारी के गुणों और रूपों का उल्लेख जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी पुस्तक कामायनी में किया है—

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत-नग पगतल में,
पीयूष-स्त्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।'

(लज्जा ने कहा -हे नारी! तुम तो सिर्फ श्रद्धा की मूर्ति हो तथा तुम्हारा दूसरा नाम ही श्रद्धा है क्योंकि तुम्हारा हृदय हमेशा पवित्र भावनाओं से परिपूर्ण रहता है। जिस प्रकार पर्वत की तलहटी में मीठे पानी के झरने होते है, उसी प्रकार तुम भी अपने मन में अगाध प्रेम और विश्वास लिए जीवन की सुंदर भूमि में प्रेम की धारा को प्रवाहित करती हो।)[1]

समाज में महिलाओं की स्थिति—समाज में महिलाओं की स्थिति प्रत्येक काल में भिन्न भिन्न थी। प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति सम्मानजनक थी। उन्हें वेदों का अध्ययन एवं अन्य पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः'।।[2] इसका अर्थ है कि जहां स्त्रियों का सम्मान होता है, वहां देवता प्रसन्न रहते हैं। वहीं, जहां स्त्रियों का सम्मान नहीं होता, वहां किए गए काम सफल नहीं होते। एशियाई धर्म में भी महिलाओं को उच्च स्थिति प्राप्त थी। शैमनिज्म की उत्पत्ति संभवतः पुरापाषाण काल में हुई थी, जो सभी संगठित धर्मों से पहले की बात है। पुरातात्विक खोजों से पता चलता है कि सबसे पहले ज्ञात शमन (पुजारी)महिलाएँ थीं और कोरियाई मुदांग जैसी समकालीन शैमैनिक भूमिकाएँ मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा निभाई जाती हैं।[3]

हालांकि मध्य काल और स्वतंत्र भारत के पूर्व समाज में महिलाओं की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी, उन्हें बाहर निकलने तक में पाबंदियां लगाई जाती थी। इस काल में महिलाओं की स्थिति इतनी नाजुक हो गई कि इस काल को आज भी महिलाओं के लिए काला युग एवं अंधकार युग के नाम से जाना जाता है। इस काल में अगर महिला साक्षरता दर की बात करे तो महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 1- 2 प्रतिशत ही थी।

आधुनिक काल में महिलाएं शहरी हो या ग्रामीण उच्च शिक्षा प्राप्ति के लक्ष्य की ओर अग्रसर है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी महिलाएं शिक्षा के प्रति जागरूक हो रही है। सरकार द्वारा किए गए छात्रवृत्ति के प्रावधान एवं शिक्षा के क्षेत्र में दी गई सरकारी नीतियां एवं लाभ महिलाओं को शिक्षा के प्रति अधिक आकर्षित कर रहे हैं।

हालांकि 19वी शताब्दी के पुरुषसत्तात्मक समाज को यह स्वीकार नहीं था कि, नारी घर से बाहर जाकर परिवार के लिए धन कमाए किन्तु निरन्तर बढ़ते आर्थिक दबाव और जीवन खर्च में बढ़ोत्तरी के कारण, धीरे - धीरे ये प्रतिबन्ध शिथिल पड़ते गये एवं ग्रामीण महिलाओं को अंसगठित क्षेत्र जैसे कृषि, वानिकी, मवेशी, मछली पालन, खादी और ग्रामोद्योग हथकरघा, घरेलू कार्य आदि में ही अधिक काम मिलता है। कृषि के क्षेत्र में ग्रामीण महिलाएं भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ग्रामीण श्रम में उनकी लगभग 50 प्रतिशत भागीदारी है।

आज के दौर में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति में लगातार सुधार हो रहा है। आरम्भ में तकनीकी का प्रयोग अधिकतर पुरुष वर्ग ही करता था। अब मंद गति से ही सही ग्रामीण महिलाएं भी तकनीकी के क्षेत्र में भी अपना परचम लहरा रही है। स्मार्ट फोन, टेबलेट तथा कम्प्यूटर जैसी तकनीकी का प्रयोग ग्रामीण महिलाएं भी करने लगी है।

वीमेन इन STEM एक ऐसा संगठन है, जो महिला विश्वविद्यालय की छात्राओं और पेशेवरों को हाई स्कूल की लड़कियों से जोड़ता है ताकि उन्हें STEM में लगे रहने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। इसका उद्देश्य एक-से-एक मेंटरिंग साझेदारी के माध्यम से एसटीईएम क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व बढ़ाना है। मेंटर युवा लड़कियों को कॉलेज और करियर के बारे में सलाह देते हैं ताकि उन्हें STEM में कॉलेज और करियर के बारे में समझने में मदद मिल सके। वीमेन इन एसटीईएम प्राथमिक, मध्य और उच्च विद्यालय की लड़कियों के लिए अतिथि वक्ताओं, चर्चा पैनल और अन्य कार्यक्रमों का आयोजन भी करता है ताकि उन्हें इस क्षेत्र के बारे में उत्साहित किया जा सके।[4]

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान आयोग की बालिका शिक्षा समिति की अध्यक्ष डॉ. शबिस्तान गफ्फार ने कहा—महिला शिक्षा की 1937 की रिपोर्ट में यह विचार व्यक्त किया गया था कि महिलाएं निश्चित रूप से देश

के विकास में योगदान दे सकती हैं। इसलिए, महिलाओं के लिए व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा के विस्तार के लिए उपयुक्त उपाय करना आवश्यक है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने राष्ट्रीय महिला परिषद की स्थापना करके महिलाओं की स्थिति को ऊपर उठाने के लिए कदम उठाए, जिसमें वित्तीय वर्ष 1956-1957 में महिला साक्षरता दर मात्र 4 प्रतिशत थी। इस रिपोर्ट में महिलाओं के लिए व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा की सुविधाओं को बढ़ाने पर जोर दिया गया था। स्वतंत्रता के बाद की अवधि में महिला शिक्षा का काफी विस्तार हुआ। इसलिए 1951-1981 के दौरान महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत 4 प्रतिशत से बढ़कर 7.93 प्रतिशत और कार्ययोजना 1986 (राष्ट्रीय शिक्षा नीति) के अनुसार 24.82 प्रतिशत हो गया। 1991 तक यह बढ़कर 39.42 प्रतिशत हो गया। पहला सह-शिक्षा पॉलिटेक्निक कॉलेज 1937 में स्थापित किया गया था।[5]

महिलाओं की शिक्षा के लिए जारी की गई सरकारी नीतियां

1. बेटी पढ़ाओ, बेटी बचाओ योजना—यह योजना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ,स्वास्थ्य मंत्रालय और परिवार कल्याण मंत्रालय एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक संयुक्त पहल के रूप में समन्वित और अभिसारित प्रयासों के अंतर्गत बालिकाओं को संरक्षण और सशक्त करने के लिए बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना की शुरुआत 22 जनवरी, 2015 को की गई।

2. सर्व शिक्षा अभियान—सर्व शिक्षा अभियान की शुरुआत भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल जी द्वारा साल 2001 में की गई थी। इस अभियान का उद्देश्य 6 से 14 साल के बच्चों को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा देना था।

3. कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना—कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय का मुख्य उद्देश्य विषम परिस्थितियों में जीवन-यापन करने वाली अभिवंचित वर्ग की बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालय के माध्यम से गुणवत्तायुक्त प्रारंभिक शिक्षा उपलब्ध कराना था।

4. सुकन्या समृद्धि योजना—बालिकाओं के कल्याण के लिए, शिक्षा और विवाह जैसे जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती थी। इस योजना का शुभारंभ 2 दिसंबर 2014 को हुआ था। सुकन्या समृद्धि खाता योजना कर लाभ के साथ 8.2% की प्रतिस्पर्धी ब्याज दर प्रदान करती थी।

5. मुख्यमंत्री महिला सशक्तीकरण योजना—किसी भी प्रकार की हिंसा से पीड़ित, महिलाओं को पारिवारिक सहायता नहीं मिलती है तो जीवन यापन करने के सभी रास्ते बंद हो जाते है। ऐसी कठिन परिस्थितियों के लिए परिवार एवं समाज में पुर्नस्थापित होने हेतु विशेष सहयोग की आवश्यकता होती है। यदि किसी भी पीड़ित महिला की आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए कौशल विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम में भागीदारी दिलाई जाए हो वह अपना और अपने परिवार का भरण पोषण स्वयं कर सकती है। इस उद्देश्य से ष्मुख्यमंत्री महिला सशक्तिकरण योजनाष प्रदेश में सितम्बर 2013 से प्रारंभ की गई है।[6]

6. कन्या सुमंगला योजना—यह योजना मुख्यमंत्री योगी आदित्य नाथ,आनंदी बेन पटेल एवं स्मृति ईरानी द्वारा 25 अक्टूबर 2019 को शुरू किया गया था। इस योजना के माध्यम से बालिकाओं को उच्च शिक्षा व रोजगार के अवसरों को भी बढ़ावा मिलेगा। साथ ही कन्या भ्रूण हत्या एवं बाल-विवाह जैसी कुरीतियों के रोकथाम में भी मदद मिलेगी। इस योजना के तहत बनाई गयी 6 श्रेणियों के तहत विभिन्न आयु वर्ग की लड़कियों को एकमुश्त धनराशि प्रदान की जाती है।

महिलाओं की शिक्षा के लिए जारी किए तकनीकी साधन—तकनीकी साधनों ने ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव किए हैं। पहले जहाँ शिक्षा केवल पुस्तकों और पारंपरिक तरीकों तक सीमित थी, वहीं अब तकनीकी साधनों के माध्यम से शिक्षा का प्रसार हुआ है। इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित है—

1. CBSE उड़ान योजना—इस योजना के तहत देश के इंजीनियरिंग कॉलेजों में लड़कियों के ऐनरोलमेंट को बढ़ावा देना सरकार का मुख्य उद्देश्य है। स्कीम के तहत पूरे भारत में करीब 60 जगहों पर वर्चुअल क्लासेस भी चलते हैं। स्कीम के द्वारा छात्रों को मुफ्त टैबलेट या लैपटॉप खरीदने के लिए पैसे दिए जा रहे हैं। इसमें रीडिंग मैटेरियल और सीखने के लिए

वीडियो भी शामिल हैं। इस योजना के तहत उन छात्राओं के लिए ओरिएंटेशन सेशन रखा जाता है, जिन्हें तकनीकी टूल्स का इस्तेमाल करने की अच्छी जानकारी नहीं है। इस योजना से महिलाओं को तकनीकी जानकारी के साथ साथ वित्तीय सहायता भी मिलती है।

2. महिलाएं हेतु प्रौद्योगिकी विकास और उपयोगी कार्यक्रम—इन केंद्रों का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं और स्वयं सहायता समूहों की तकनीकी क्षमताओं को बढ़ाने हेतु आवश्यक बुनियादी ढाँचा प्रदान करना है। इस सहयोग में राज्य सरकारों और अन्य महत्वपूर्ण एजेंसियों के साथ मिलकर काम करना शामिल है। इन केंद्रों का व्यापक लक्ष्य महिला लाभार्थियों को वित्तीय साक्षरता और उद्यमिता विकास सहित व्यापक कौशल से युक्त करना है।[7]

3. विज्ञान और इंजीनियरिंग में महिलाएं-किरण (वाइज़-किरण)—विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करना और समर्थन करना वैज्ञानिक उन्नति और नवाचार के लिए आवश्यक है। महिलाओं के जीवन में लैंगिक समानता को बढ़ावा देकर एक सशक्त लोकतंत्र का निर्माण किया जा सकता है।विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग(Department of Science and Technology) विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महिलाओं का स्तर बढ़ाने के लिए जीवन के सभी क्षेत्रों की महिलाओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक समर्पित योजना 'विज्ञान और इंजीनियरिंग में महिलाएं-किरण (वाइज़-किरण)' की शुरुआत की गई, जिसका अंतिम लक्ष्य S-T में लैंगिक समानता लाना है।[8]

4. पीएम विद्यालक्ष्मी योजना—पीएम विद्यालक्ष्मी योजना के तहत छात्रों को घरेलू संस्थानों में हायर एजुकेशन के लिए 10 लाख तक का एजुकेशन लोन दिया जाएगा। छात्रों को क्वालिटी हायर एजुकेशन इंस्टीट्यूट (फभ्म्प्) में एडमिशन लेने पर उनकी फीस एवं और भी खर्चों के लिए बैंक आसानी से लोन उपलब्ध कराता है जिसमें किसी जमानतदार की भी आवश्यकता नहीं होती है।

5. ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफॉर्म—ग्रामीण इलाकों में भी अब महिलाएं विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफॉर्मों का उपयोग कर रही हैं जैसे कि Coursera, edX, और National Repository of Open Educational Resources (NROER), जिससे उन्हें अपनी शिक्षा और कौशल विकास के नए रास्ते मिले हैं।

6. स्मार्टफोन और इंटरनेट की पहुँच— स्मार्टफोन का उपयोग अब केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि यह ग्रामीण महिलाओं के लिए एक शिक्षा का माध्यम बन चुका है। विशेष रूप से महिलाएं अब मोबाइल ऐप्स के माध्यम से स्वच्छता, स्वास्थ्य, कृषि, और शिक्षा से संबंधित जानकारी प्राप्त कर रही हैं।

7. विकसित इन्फ्रास्ट्रक्चर और डिजिटल लिटरेसी—सरकारी योजनाओं के अंतर्गत, अब अधिक से अधिक ग्रामीण स्कूलों में कंप्यूटर, इंटरनेट और स्मार्ट क्लासरूम की व्यवस्था हो रही है। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में भी छात्र-छात्राओं को तकनीकी जानकारियां आसानी से उपलब्ध कराई जा रही है। इससे न केवल शैक्षिक सुविधाओं में सुधार हो रहा है, बल्कि ग्रामीण महिलाओं को डिजिटल दुनिया से जोड़ने का अवसर भी मिल रहा है।

8. ई-लर्निंग और डिजिटल शिक्षा—स्मार्टफोन, टैबलेट, और इंटरनेट ने ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा को अधिक सुलभ बनाया है। डिजिटल कक्षाएं, ऑनलाइन पाठ्यक्रम, और शिक्षा एप्लिकेशन्स ने ग्रामीण महिलाओं को अपनी शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने का एक नया अवसर दिया है।

सरकारी नीतियों और तकनीकी साधनों का सहजीवी प्रभाव—सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठन ग्रामीण महिलाओं के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम चला रहे हैं, जिसमें तकनीकी शिक्षा भी शामिल है। यह कार्यक्रम विशेष रूप से इंटरनेट, कंप्यूटर, और स्मार्टफोन के उपयोग से जुड़ी जानकारी प्रदान करते हैं। जिससे ग्रामीण महिलाओं के जीवन में अत्यधिक सुधार प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार हम कह सकते है कि,सरकारी नीतियों और तकनीकी साधनों के संयोजन से, ग्रामीण महिलाओं को अपने जीवन से जुड़ी महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती है, जैसे—ग्रामीण महिलाओं को कृषि संबंधी तकनीकी जानकारी, स्वास्थ्य सेवाओं और सरकारी योजनाओं के बारे में मोबाइल ऐप्स तथा वेब पोर्टल्स के माध्यम से जागरूक किया जा रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य

- इस शोध का उद्देश्य तकनीकी साधनों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सुधार के अवसरों की पहचान करना है।
- प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य सरकारी नीतियों और तकनीकी साधनों के सहजीवी प्रभाव का विश्लेषण करना।
- इस अध्ययन का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सरकारी नीतियों और तकनीकी साधनों के प्रभाव का मूल्यांकन करना।
- ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सरकारी नीतियों और तकनीकी साधनों के बीच संबंधों को मजबूत करने के लिए रणनीतियों का विकास करना।

अध्ययन का महत्व- प्रस्तुत शोध के अध्ययन से ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सुधार के लिए प्रभावी नीतियों और कार्यक्रमों का विकास होगा जिससे महिला सशक्तिकरण में वृद्धि होगी। महिला सशक्तिकरण से महिलाओं की शिक्षा में स्वतंत्रता को समाहित करते हुए आर्थिक,सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में समान अवसर प्रदान होंगे। रूढ़िवादी एवं परंपरावादी बेड़ियों से मुक्त होकर ग्रामीण महिलाएं समाज में सुनिश्चित भागीदारी निभाएंगी तथा समृद्ध देश के निर्माण में पुरुषों के समान योगदान देंगी। सरकारी नीतियों और तकनीकी साधनों के प्रभाव से समाज की साक्षरता दर में वृद्धि के साथ ही साथ देश के विकास में भी वृद्धि होगी।

शोध विधि- प्रस्तुत शोध के अध्ययन में व्याख्यात्मक शोध विधि, वर्णनात्मक शोध विधि तथा विश्लेषणात्मक शोध विधियों का प्रयोग किया गया है तथा इस शोध पत्र को अधिक महत्वपूर्ण बनाने के लिए द्वितीयक आंकड़ों से प्राप्त जानकारी का प्रयोग किया गया है।

तथ्य संकलन की विधियां– प्रस्तुत शोधपत्र पत्रिकाओं, पुस्तकों, विभिन्न गैर सरकारी संगठनों, सरकारी और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और वेबसाइट्स की रिपोर्ट में प्रकाशित मौजूदा साहित्य की समीक्षा के रूप में द्वितीयक स्रोतों के आधार पर तर्क दिया गया है।

निष्कर्ष- प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि सरकारी नीतियाँ और तकनीकी साधन ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। सरकारी योजनाओं जैसे 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' और शविज्ञान और इंजीनियरिंग में महिलाएंश आदि योजनाओं ने महिलाओं को शिक्षा के प्रति जागरूक किया और उनके लिए शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता को विकसित किया। इसके साथ ही साथ, तकनीकी साधनों जैसे इंटरनेट, डिजिटल शिक्षा प्लेटफॉर्म, और स्मार्टफोन ने ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की पहुँच को सुलभ और प्रभावी बनाया।

जब सरकारी नीतियाँ और तकनीकी साधन संगठित होकर कार्य करते हैं, तो इनका सहजीवी प्रभाव अधिक सशक्त होता है, जिससे महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक सशक्तिकरण में सुधार होता है। हालांकि, इन पहलुओं का प्रभाव क्षेत्रीय, जातीय और सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर निर्भर करता है। अतः सरकारी नीतियों को अधिक स्थानीय स्तर पर प्रभावी बनाने और तकनीकी शिक्षा को बेहतर तरीके से लागू करने की आवश्यकता है, ताकि ग्रामीण महिलाओं को और अधिक लाभ मिल सके।

अतः हम कह सकते है कि,यदि इन दोनों पहलुओं का सकारात्मक, अनुकूलित एवं संगठित तरीके से उपयोग किया जाए, तो ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन अवश्य होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जयशंकर प्रसाद, कामायनी 1936 (लज्जा सर्ग) पृष्ठ संख्या 84
2. मनुस्मृति के अध्याय 3, श्लोक 56

3. Lee, Jung Yong (August 1973). "Concerning the Origin and Formation of Korean Shamanism". Numen. 20 (2): 135-159. doi:10.1163/156852773x00321. PMID 11615020
4. https://www.cio.com/article/215709/16-organizations-for-women-in-tech.html?amp=1
5. https://digitallearning.eletsonline.com/2014/06/women-empowerment-through-technical-education/
6. https://mpwcdmis.gov.in/scheme_cmwe.aspx
7. https://www.dsir.gov.in/hi/technology-development-and-utilization-programme-women-tdupw#:
8. https://dst.gov.in/hi/%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%87%E0%A5%9B-%E0%A4%95%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A4%A3

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

वैश्विकरण के दौर में साहित्य में वर्णित दलित चेतना

Dr. Salim Banadar
M.A, M.Phil, Ph.D
Nehru Arts, Science and Commerce College, Hubli
saleembandar@gmail.com
Mob. : 9986327672

प्रस्तावना

वैश्विकरण के दौर में साहित्य में दलित समाज के बारे में जानने के लिए यह समझना जरूरी है कि वैश्विकरण का अर्थ क्या है और यह दलित समाज के साथ किस तरह जुड़ा हुआ है। दुनिया में विद्यमान विभिन्न संस्कृतियों को एक दूसरे के अधिक निकट लाकर मानवीय धरातल पर एक करने की बातें अस्कर होती ही हैं। किन्तु सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं के साथ बदलती आर्थिक नीतियों पर भी विचार करना आवश्यक है। इन आर्थिक घटनाओं ने दलित समाज के सामान्य जीवन को और उनकी संवेदनाओं को साहित्य में बहुत ही गम्भीर रूप से प्रभावित किया है।

वैश्विकरण से तात्पर्य

दलित साहित्य में वैश्विकरण के सन्दर्भ में कई तरह के विचार मिलते हैं। चिन्तकों का यह मानना है "कि वैश्विकरण की प्रक्रिया में दलित अपनी परिवेश से मुक्ति पा सकते हैं और उनके लिए नए अवसर उपलब्ध हो सकते हैं, जिससे अवमाननापूर्ण जीवन से मुक्ति सम्भव हो सकती है।"

वैश्विकरण को लेकर पूंजीवादी और राजनेतओं में यह बात स्पष्ट है। समाज बुद्धिजीवियों का कहना है "कि इससे विभिन्न देशों के बीच की दूरियों को निरर्थक कर दिया है। वैश्विकरण पूँजी के अबाध विस्तार और नई आर्थिक नीतियों से प्रेरित जनसंचार माध्यमों के जरिए एक तरह की छवियों और सन्देशों को फैलाता रहता है, ताकि उपभोक्ताओं की ज़रुरतों को समान रूप बनाए रक सके।"

दलित चिन्तक गोपाल गुरु जी का कहना है कि "वैश्विकरण एक ऐसा विचार है जो अपनी परिकल्पना के ज़रिए व्यक्तियों और समुदायों को उनकी पारिवेशिकता का अतिक्रमण करने का आश्वासन देता है। व्यक्ति और समुदाय के तौर पर दलित अपनी पारिवेशिकता को तोड़ने के लिए सबसे ज्यादा व्याकुल हैं।"

गोपाल गुरु की चिन्ता है कि 'यह सही है कि दलितों में अपने परिवेश की सीमा तोड़ कर संपूर्ण विश्व की ओर न जा पाने के लिए हताशा है, लेकिन सतत संघर्ष और गहन चिन्तन के ज़रिए उपलब्ध होने वाला संपूर्ण विश्व वही है जो वैश्विकरण उपलब्ध कराने का आश्वासन दे रहा है। क्या इस संपूर्ण विश्व तक छलाँग लगाने के चक्कर में वैश्विकरण के दलित पैरोकारों ने अम्बेडकर विचारधारा से नाता पूरी तरह ही नहीं तोड़ लिया है।"

कुछ दलित चिन्तकों ने अम्बेडकर के चिन्तन से इसके लिए तर्क भी ढूँढ निकाला क्योंकि अम्बेडकर ने भी दलितों को शहर की ओर रुख करने को कहा था। अम्बेडकर के मुताबिक गाँव पारिवेशिकता का प्रतीक है और शहर सार्वभौमिकता

का, गाँव मनुष्य को गुलामी में जकड़े रखता है और शहर में आज़ादी देता है।

समस्या का समाधान तब तक नहीं होता है, जब तक समानता इस रूप में स्थापित न हो कि गाँव तक उसका पूरा प्रसार हो। प्रखर बुद्धिजीवी डी. आर. नागराज ठीक कहते हैं "कि गाँव अछूतों के लिए नरक के कुण्ड हैं, लेकिन जरूरत गाँवों को ही रहने लायक बनाने की है।"

कँवल भारती लिखते हैं कि- 'नब्बे के दशक के आरम्भ में जिस दलित राजनीति ने सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय के नारे के साथ भारतीय राजनीति में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया था, वह जिस तेजी से ऊपर उठी थी, आज दशक के खत्म होते ही उतनी ही तेजी से नीचे गिरकर स्वयं भी खत्म हो गई है।'

हिन्दी कहनियों में वर्णित दलित कल्पना

हिंदी साहित्य में दलितों के जीवन को केंद्र में रखकर अनेक किताबें लिखी गई हैं। जिनमें दलित जीवन की सच्चाई बेहद यथार्थवादी नज़रिए से अभिव्यक्त हुई है। कुछ दलित लेखकों कि रचनाओं में अभिव्यक्त दलित उद्‌बावना को देख सकते हैं। मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, प्रहलाद चन्द्र दास, दयानंद बटोही, रतन कुमार साँभरिया, जिया लाल आर्य, सूरजपाल चौहान, श्यौराज सिंह बेचैन आदि प्रमुख दलित कहानीकार हैं। साथ ही हिन्दी के महान कहानिकार प्रेमचंद जी के कुछ कहानियों को भी लिया गया है।

1) पच्चीस चौका डेढ़ सौ : ओम प्रकाश वाल्मीकि - दलित कहानियों में सामाज में फैले उत्पीड़ाएं, शोषण व अत्याचार के विविध प्रसंग खुल कर लिखे गए हैं। ग्रामीण जीवन में अशिक्षित दलितों का शोषण होता था और आज भी हो रहा है, वह किसी भी समाज के लिए शर्म की बात होनी चाहिए। 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी में दलित समाज की गरीबी, समाज में फैले शोषण और अत्याचार की संस्कृति और अशिक्षा के दुष्परिणामों को उजागर करती है। कहानी का मुख्य पात्र सुदीप, जो एक गरीब दलित परिवार में जन्म लेता है। बेटे के पढाई के लिए लिया गया कर्ज़ बाद में बेटे को चुकाना पडता है। ब्याज पर दिए जाने वाले हिसाब में किस तरह एक सम्पन्न व्यक्ति, एक गरीब दलित को ठगता है और एक झूठ को सच साबित करता है, वह पाठक की संवेदना को झकजोर कर रख देता है।

2) नो बार- जयप्रकाश कर्दम- अखबारों के वैवाहिक विज्ञापनों में अक्सर लिखा होता है— जाति-बंधन नहीं। नो बार कहानी एक दलित युवक की कहानी है, जिसमें अंतरजातीय विवाह को लेकर समाज की सच्चाई सामने लाती है। कहानी में इसी समस्या को केंद्र में रख कर सामाजिक जीवन में रची जाति वैमनस्य की भावना को अभिव्यक्त करती है।

3) अपना गाँव— मोहन दास नैमिशराय - यह मोहनदास नैमिशराय की एक महत्त्वपूर्ण कहानी जिस में गांव के ठाकुरों द्वारा दलित स्त्री कबूतरी पर जिस तरह से जुल्म और अत्याचार किया जाता है, वह केवल दलित समाज को नहीं बल्कि पूरी मानवता को शर्मसार करने वाला है। जो दलित मुक्ति-संघर्ष आंदोलन की वेदना से पाठक गणों को अवगत कराती है। दलित साहित्य की यह विशिष्ट कहानी है। दलितों में स्वाभिमान और आत्मविश्वास जगाने की भाव भूमि तैयार करती है।

4) कफन- प्रेमचंद- कहानी में ज़मिंदार व्यवस्था के साथ दलित अत्याचार का ज़िक्र है, समाज द्वारा दबाया हुआ दलित वर्ग जब समाज की आँख में धूल झोंककर समाज के बनाये गये नियमों की धज्जियाँ उड़ाता है। घीसू और माधव जैसे पात्र इस व्यवस्था से बेज़ार आकर उसके विरोध में होते हैं। वे खुल कर सामाजिक नियमों की रीति-रिवाजों तथा धार्मिक पाखंडों की धज्जियाँ उड़ाते हैं। प्रेमचंद की कफन कहानी में कहते हैं- ''हां बेटा बैकुंट में जाएगी। किसा को सताया नहीं। मरते-मरत हमारी ज़िंदगी की सबसे बडी लालसापी कर गई। वह न बैकुंट में जाएगी तो यो मोटे- मोटे लोग जाएंगे, जो गरींबों को दोनों हाथों से लूटतो हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढातो हैं।

प्रेमचंद जी ने परम्परागत रूप से प्रचलित समाज व्यवस्था में सवर्ण लोगों द्वारा दलितों पर हो रहे अत्याचारों को बताने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद जी ने दलितों क जीवन में व्याप्त भीषण स्थितियों का चित्रण अपने साहित्य में किया है।

5) ठाकुर का कुआँ — प्रेमचंद- कहानी में प्रत्यक्ष रुप से दलित समस्या को बताया है- इस कहानि में छुआछूत की समस्या देखने को मिलती है। कहानी में गंगी पात्र का कहना है- "हम क्यों नीच है और वे लोग क्यों ऊंच है ध इसलिए ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं।"

हिन्दी कविताओं में वर्णित दलित कल्पना

1) ठाकुर का कुआं — ओम प्रकाश वाल्मीकि- भारतीय समाज व्यवस्था ने दलितों के मौलिक अधिकारों को छीनने के साथ उन्हें निकृष्ट जीवन जीने के लिए भी बाध्य किया और उन पर कड़े कानून लगाए गए। ठाकुर का कुआं इसी सामाजिक सच्चाई को अभिव्यक्त करती है और दलितों की अंतरूपीड़ा को सहज और सरल शब्दों में पाठकों के सामने रखती है।

'चूल्हा मिट्टी का मिट्टी तालाब की तालाब ठाकुर का।
भूख रोटी की रोटी बाजरे की बाजरा खेत का खेत ठाकुर का।'

2) सुनो ब्राह्मण - मलखान सिंह - कवि मलखान सिंह की कविताओं में दलित समाज के प्रति सदियों के अमानवीय जाति उत्पीड़न से परेशान जीवन की झलक दिखाई देती है। और उससे मुक्ति के लिए संघर्ष का क्रांतिकारी जोश भी है। उनकी कविताओं में अम्बेड़करवादी विचारधारा है। 'सुनो ब्राह्मण' कविता ने दलित साहित्य में जो स्थान-मान पा ली है वह अपने आप में एक उपलब्धि मानी जाएगी। इस कविता में वर्ण-व्यवस्था, ब्राह्मणवादी, सामंती—व्यवस्था अन्याय, अत्याचार पर करारा जवाब है। साथ ही उन तमाम मिथकों, आडम्बरों और प्रतीकों को भी चेतावनी देती है जो साहित्य में जड़ जमाए बैठे हैं। यह कविता दलित चेतना को पाठकों के सामने बेबाकी सके साथ प्रस्तुत करती है। दलित साहित्य की यह एक सर्वश्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण रचना है।

'सुनो ब्राह्मण, हमारे पसीने से बू आती है, तुम्हें।
तुम, हमारे साथ आओ चमड़ा पकाएंगे दोनों मिल-बैठकर।'

3) मैं दूँगा माकूल जवाब- असंगघोष- दलितों को शिक्षा से दूर रखने के जो षड्यंत्र व्यवस्था के नाम पर रचे गए, यह कविता उनके लिए एक माकूल जवाब है। यह कविता दलितों के भीतर उठ रहे आक्रोश को दर्शाती है। यह कविता मानवीय संवेदनाओं को बताती है। असंगघोष की एक-एक कविता, समाज में दलित के साथ हो रहे उत्पीडनओं, अन्याओं, और शोषणों की घटनाओं को दर्शाती है।

तुम्हारी इस करनी पर मेरी धमनियों में खौल रहा है, बहता लहू
समय के साथ इसका मैं दूँगा माकूल जवाब
मेरी जगह पढ़ेंगे मेरे बच्चे जरूर।

संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिकता के आईने में दलित-ले.अभय कुमार दुबे- वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2002
2. भारत का भूमण्डलीकरण-ले. अभय कुमार दुबे- वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023
3. दलित विमर्श की भूमिका- ले.कँवल भारती- पृ-127- इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद-2002
4. दलित बौद्धिकता और सांस्कृतिक दीवारें-ले. गोपाल गुरु- पृ.134 वाणी प्रकाशन-नई दिल्ली-2002
5. कफन —प्रेमचंद- पु-कहानी किरीट- सं-डॉ. उषा पाटक- राधाकृष्ण प्रकाशक- नई दिल्ली
6. सुनो ब्राह्मण'- ले.मलखान सिंह- प्र-रश्मी प्रकाशन प्रै.लि- 2018
7. नो बार- ले. जयप्रकाश कर्दम-प्र. अमन प्रकाशन, कानपुर- 2022
8. मोहनदास नैमिशराय की चुनी हुई कहानियाँ- ले.मोहनदास नैमिशराय- प्र. अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली- 2019
9. मैं दूँगा माकूल जवाब- ले. असंगघोष-प्र. शिल्पायन, गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-2012

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

'मैं पायल' उपन्यास में वर्णित किन्नर जीवन का आत्मसंघर्ष

Rahul Mahato
Badshahi Road, Sharm Para, Burdwan,
Purba Barddhaman– 713104
Burdwan University
Email– Rahulmahato337@gmail.com
Mob- 8116492757

Vikash Shaw
Anjir Bagan Mati Bag, Burdwan
Purba Barddhaman– 713102
Himachal Pradesh University, Shimla
Email– vshaw460@gmail.com
Mob- 7001452365

सारांश

'मैं पायल' उपन्यास कथाकार श्री महेन्द्र भीष्म जी द्वारा रचित किन्नर जीवन पर आधारित एक आत्मकथात्मक औपन्यासिक कृति है, जो किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष पर केंद्रित है। उपन्यास में महेन्द्र भीष्म ने स्वयं को पायल के स्थान पर रखकर उसकी पीड़ा को आत्मसात कर पन्नों पर चित्रित किया हैं। प्रत्येक किन्नर का अपना एक अतीत होता है, उसका स्वयं का भोगा हुआ संघर्ष होता है जो उसके जीवन का एक कटु सत्य है। इस उपन्यास में भीष्म जी ने पायल उर्फ जुगनी के माध्यम से प्रत्येक किन्नर की पीड़ा को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। पारिवारिक विस्थापन का दंश, सामाजिक संवेदनहीनता, व्यक्ति में छिपी कलुषित प्रवृत्तियां, भूख की त्रासदी, किन्नरों के प्रति दंश आदि समस्याओं का चित्रण लेखक ने हमारे सामने रखा है, जिसमें एक ममतामई माँ की संवेदना भी है। यह उपन्यास पायल सिंह से किन्नर गुरु पायल सिंह बनने की एक आत्मकथा है, जो आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है।

मूल शब्द : किन्नर, आत्मसंघर्ष, समाज, समस्या आदि।

प्रस्तावना

मानव समाज का गठन दो लिंगो पर आधारित है स्त्री और पुरुष। इन दोनों से हम अपना पहला समाज निर्मित करते हैं परंतु इनके इतर भी एक दूसरा समाज है वह है 'किन्नरों का समाज'। किन्नर अर्थात हिजड़ा, खुसरो, छक्का, उभयलिंगी, मंगलमुखी आदि कई नामों से संबोधित किया जाता है। किन्नर जो न तो स्त्री होते हैं और न ही पुरुष अर्थात इन्हें 'तृतीय लिंग' की संज्ञा दी गई है। हमारे समाज में आम लोगों के प्रति हमारी जो संवेदना होती है वह इनके (किन्नरों) के प्रति दिखाई नहीं पड़ती बल्कि इनके प्रति एक अलग ही दृष्टि रखते हैं जैसे वे किसी दूसरी दुनिया के हो। शारीरिक और लैंगिक विकृति के कारण समाज इन्हें अश्लीलता के चश्मे से देखता है। किन्नर कहलाना किसी को भी अच्छा नहीं लगता और यदि किन्नर को हिजड़ा कहो तो उसे गाली नहीं लगती हो परंतु उसके मन में एक टीस जरूर होती है कि "आखिर भगवान ने उन्हें ऐसा क्यों बनाया?"

'किन्नर' वैसे तो यह शब्द हिमालय के आसपास रहने वाले जनजातियों के लिए प्रयुक्त होता रहा है किंतु किन्नरों का अस्तित्व तो आदिकाल से ही रहा है। रामायण और महाभारत में भी इनकी चर्चा शिखंडी और वृहन्नला के रूप में हुई है तथा अर्जुन ने अपने अज्ञातवास का समय 'वृहन्नला' के नाम से व्यतीत किया। भले यह किसी भी धर्म से आए हो, पर इन सब का एक ही समाज होता है। परंतु आज कहां जा सकता है कि किन्नर समाज द्वारा परित्यक्त एवं उपेक्षित वर्ग है। समाज

में आज भी इन्हें हाशिए पर रखा जाता है। इनका जीवन उपहास और तिरस्कार का विषय बनता जा रहा है। आज लोगों से इनके अस्तित्व को लेकर वास्तविकता कम और अफवाहें अधिक सुनने को मिलती है। ऐसा कहा जाता है कि अगर यह किसी को दुआ दे तो वह अवश्य पूरी होती है और यदि इसके विपरीत बद्दुआ दे तो उनकी दुर्दशा होती है। किंतु यह गलत है किन्नर कभी किसी को अभिशाप नहीं देते, वह केवल आशीष देना जानते हैं।

संघर्ष एक सामाजिक प्रक्रिया है, जो जीवन को गति देती है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में संघर्ष की अपनी भूमिका होती है। 'मैं पायल' उपन्यास कथाकार श्री महेन्द्र भीष्म जी द्वारा रचित किन्नर जीवन पर आधारित एक आत्मकथात्मक औपन्यासिक कृति है, जो किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष पर केंद्रित है। उपन्यास में महेन्द्र भीष्म ने स्वयं को पायल के स्थान पर रखकर उसकी पीड़ा को आत्मसात कर पन्नों पर चित्रित किया हैं। प्रत्येक किन्नर का अपना एक अतीत होता है, उसका स्वयं का भोगा हुआ संघर्ष होता है जो उसके जीवन का एक कटु सत्य है। इस उपन्यास में भीष्म जी ने पायल उर्फ जुगनी के माध्यम से प्रत्येक किन्नर की पीड़ा को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। पारिवारिक विस्थापन का दंश, सामाजिक संवेदनहीनता, व्यक्ति में छिपी कलुषित प्रवृत्तियां, भूख की त्रासदी, किन्नरों के प्रति दंश आदि समस्याओं का चित्रण लेखक ने हमारे सामने रखा है, जिसमें एक ममतामई माँ की संवेदना भी है। यह उपन्यास पायल सिंह से किन्नर गुरु पायल सिंह बनने की एक आत्मकथा है, जो आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है।

हिंदी साहित्य अपने जन्म से लेकर वर्तमान समय तक विभिन्न विषयों को प्रवाहित करता रहा है। जिसमें आधुनिकता, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि नई-नई विचारधाराओं को संपन्न बनाने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गई है। उसी प्रकार किन्नर विमर्श भी आज का एक ज्वलंतशील विमर्श है। साहित्य में विधा की दृष्टि से उपन्यास का क्षेत्र काफी विस्तृत है जिसमें समाज से संबंधित अनेक विषयों को उठाया गया। परंतु जिज्ञासा पूर्ति के उद्देश्य से जब मैंने 'थर्ड जेंडर' से जुड़े उपन्यासों को ढूंडना प्रारंभ किया तो पाया कि इस विषय पर कुछ गिने-चुने योग्य रचनाएं ही उपलब्ध है। 'यमदीप'(2002) उपन्यास किन्नर जीवन पर आधारित सबसे पहला उपन्यास है। इसके अतिरिक्त 'तीसरी ताली', 'किन्नर कथा'(2010), 'गुलाम मंडी' , 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा' 'जिंदगी 50-50' आदि उपन्यास तृतीय लिंगी समाज का हाल बयान करते हैं। 21 वीं सदी के इन प्रतिनिधि उपन्यासों में महेन्द्र भीष्म का 'मैं पायल' उपन्यास भी किन्नर जीवन की त्रासदी, अपमान, पीड़ा, शोषण, अवहेलना आदि विषयों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

'मैं पायल...' उपन्यास सामाजिक समरसता से कहीं अधिक समाज में किन्नरों के प्रति व्याप्त उस हेय दृष्टि को बदलने का प्रयास है जो लोगों के मन-मस्तिष्क में घर कर गई है। यह उपन्यास यातना, संघर्ष, और जिजीविषा की एक अनवरत कहानी है, जहाँ एक और मनुष्य के आंतरिक संसार का स्ट्रगल है तो वहीं दूसरी ओर अपने अस्तित्व की रक्षा एवं पहचान की स्वीकृति के लिए लगातार संघर्ष। यह उपन्यास पाठकों को उस यथार्थ से रूबरू करवाता है जो हमारे सामने होते हुए भी हम समझ नहीं पाते। इस उपन्यास को पढ़ने के उपरांत हम लेखक के साथ ऐसी दुनिया में प्रवेश करते हैं जहाँ होकर भी हम नहीं होते।

यह उपन्यास काल्पनिक उपन्यास से कई गुणा ज्यादा आकर्षित करती है तथा हर पृष्ठ कुछ पल सोचने को मजबूर करता है। उपन्यास को पढ़ने के उपरांत पायल के प्रति हमदर्दी उत्पन्न होती है। यह उपन्यास उन सभी किन्नरों की त्रासदी है जो घर से विस्थापित होने के पश्चात समाज में यातना, शोषण एवं संघर्ष को भोगने के लिए मजबूर है। उपन्यासकार महेन्द्र भीष्म जी से कॉल पर बात हुई तो उन्होंने कहा, स्वयं पायल के मुख से उनकी आत्मकथा को सुनते हुए चार वर्षों के पश्चात, इस आत्मासंघर्ष को उन्होंने उपन्यास का रुप दिया। यह उपन्यास काफी चर्चित भी रही तथा तीन वर्षो में यह चतुर्थ संस्करण सबके सामने है जिसे मैंने अपने अनुनियोजित कार्य के लिए चुना है।

मानव समाज में परिवार की एक अहम भूमिका होती है, यह सामाजिक जीवन में निरंतर विकास के लिए आवश्यक प्रकार्य करता है। मनुष्य जिस परिवार में जन्म लेता है उसी से उसकी पहचान होती है परंतु यदि वह सामान्य जन से भिन्न हो या तृतीय लिंगी हो, तो समाज का दृष्टिकोण उसके प्रति अलग हो जाता है। कहते हैं परिवार से बड़ी कोई संपत्ति नहीं

होती और पिता से बड़ा कोई परामर्शदाता नहीं होता परंतु जब वही पिता अपने संतान के साथ असहनीय व्यवहार करे तो उसकी मनोवृति क्या होगी? जबकि एक अच्छा परिवार ही बच्चे के चरित्र निर्माण में सहायक होता है परंतु समाज के डर से बचपन में ही इन्हें अपने परिवार से दूर कर दिया जाता है।

परिवार से विस्थापित या बेदखल कर दिए जाने पर एक किन्नर के लिए अपना कहने वाला कोई नहीं होता, समाज द्वारा भी उपेक्षा और तिरस्कार के अलावा कुछ नहीं मिलता। इस उपन्यास में भीष्म जी ने पायल उर्फ जुगनी द्वारा समाज और परिवार से मिली यातनाओं का यथार्थ चित्रण किया है। बेटे की चाह में राम बहादुर (पायल के पिता) को एक और लड़की हुई अर्थात तृतीय लिंगी संतान। जिसका सारा दोष माँ पर मढ़ दिया जाता है जैसे बेटे को जन्म देना उन्हीं के हाथ में हो। सच तो यह है कि सामान्य नर नारी को परिवार में जो आदर, सम्मान, शिक्षा आदि मिलती है वह एक नपुंसकलिंगी को नहीं मिलती। परिवार में मिली इसी कष्टदायी पीड़ा को कथाकार हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। पितृसत्ता की संकीर्ण मानसिकता लिए पायल के पिता अपनी सबसे बड़ी संतान राकेश को अधिक लाड़ प्यार से रखते हैं तथा उसे भी अपने जैसा ही बना लिया था। पिताजी के आध महीने काम पर बाहर रहने से पायल और उसकी बहनें बड़ा सुकून महसूस करते तथा जब कभी पिता घर वापस आते तो उसे गोद में लेना तो दूर उसकी और देखना भी दूभर समझते।

परिवार में एक तृतीयलिंगी बच्चे के रूप में जन्म लेना कितना कष्टदायी होता है यह उस बच्चे को ही पता होता है जो इन यातनाओं को सहता है। लैंगिक विकृति वाले इंसान के साथ परिवार में हो रहे भेदभाव को कथाकार ने इस उपन्यास में दिखाया है। पायल स्वयं कहती है कि एक ट्रक ड्राइवर में जितनी बुराइयां होनी चाहिए वह सब उसके पिता में मौजूद थी, चीखना, चिल्लाना तथा दारू के नशे में पीटना उनका शौक बन गया था। जबकि पिता ही एक संयुक्त परिवार का मुख्य स्तंभ होता है। एक निर्दोष बालमन को उसके देह की विकृति का आभास नहीं होता परंतु पिता के दारू के नशे में कोसते, गाली देते रहते उसे यह अहसास कराया जाता है। वे अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहते हैं—"ये जुगनी! हम क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है, साली हिजड़ा है...आदि जाने क्या-क्या वे बकते रहते थे।"[1] हिजड़ा यह शब्द पायल ने सबसे पहले उन्हीं के मुख से सुना था परंतु तब वह इस शब्द से अनजान थी शायद इसका अर्थ तक ना जानती थी।

हमारे समाज में कहीं न कही लड़का लड़की में भेद देखने को मिल ही जाता है। एक पिता में बेटे के प्रति जो मोह होता है वह शायद उसे बेटी के लिए नहीं दिखता। कुछ दिनों पश्चात जब पायल स्कूल जाने लगती है तो उसे बाहर भेजने से पहले उसके कपड़ों को लेकर सावधानी रखी जाती है कि किसी को संदेह ना हो कि यह हिजड़ा है। परंतु एक दिन जुगनी को लड़कों की वेशभूषा में देखकर उसके पिता अत्यंत प्रसन्न हुए तथा पहली बार उसे गोद में लिया और हवा में उछाल कर लोप लिया। अपने आँखों को नम किए, जुगनी के सिर पर हाथ रखकर रुंधे गले से बोले 'जुगनू! जुगनू सिंह! जिंदा रह' यह उस कठोर पिता का पहला आशीर्वाद था जुगनी के लिए, नहीं शायद जुगनू के लिए, जिसे वह हमेशा देखना चाहते हैं। अतः अपनी पत्नी शांति से भी जुगनी को लड़कों की आदत सिखाने को कहते हैं जिससे समाज के लोग उसके शादी रिश्ते की बात ना करें।

अपनी वास्तविक पहचान छुपाकर किन्नरों का घर में रहना, परिवार के लोगों को बिल्कुल मंजूर नहीं होता। यदि घर में रहकर जीवन व्यतीत करने का भी सोचे तो परिवार द्वारा असहनीय पीड़ाएं सहने के अलावा कुछ नहीं मिलता। पायल के लिए यह दुनिया बहुत ही अजीब थी जहाँ दिन बड़े असहनीय दर्द भरे होते हैं। पिता के ना रहने पर अम्मा और बहने पायल को जुगनी के कपड़ों में रखती थी परंतु कहीं ना कहीं पिता का वह आक्रोश उनके मन-मस्तिष्क में घर कर गया था और अम्मा को पिता का कहा याद आता है—"कान खोल कर सुन ले कमलेश की अम्मा! अगली बार जब मैं आऊं और यह साला हिजड़ा लड़की के कपड़े पहने मिला और घर के बाहर निकला तो मैं अपने हाथों से इस साले को खून कर दूँगा।"[2] अगर एक पिता ही अपनी संतान के साथ इस तरह का व्यवहार करें तो समाज के लोगों से क्या आशा की जा सकती है। इस संदर्भ में चित्रामुद्गल जी का उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं 203 नालासोपारा' भी है। जिसमें विनोद उर्फ बिन्नी, की भी शारीरिक संरचना ऐसी ही है। विनोद की माँ उसे हॉस्टल भेजना चाहती है जिससे हिजड़ा समुदाय को उसकी खबर ना मिले परंतु पिता

अपने परिवार की बदनामी के डर से घर बदल देता है और घोषित करता है कि दुर्घटना में विनोद की मृत्यु हो गई और अवशेष तक नहीं मिले।

परिवार और समाज द्वारा विस्थापित होने पर यदि कोई किन्नर अपनी जीविका हेतु भिक्षावृति, नाचने गाने जैसे पेशों को अपनाए तो भी समाज उन्हें उसी हेय और तिरिस्कारपूर्ण दृष्टि से ही देखेगी। तो प्रश्न उठता है कि वे करे तो करे क्या? क्या समाज उन्हें किसी साधारण मनुष्य की भांति कोई व्यवसाय या किसी कार्यालय में कार्य करते हुए देखने में सक्षम होगी? क्या मनुष्य में इतनी परिपक्वता है की उन्हें समाज का एक अंग स्वीकार सकें? शायद नहीं। समाज और परिवार द्वारा किया गया यह परित्याग ही उन्हें गलत मार्ग की और ग्रसित करती है। लेखिका चित्रा मुद्गल कृत उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा ' का पात्र बिन्नी ऊर्फ विनोद भी विस्थापन का दंश सहते हुए कहता है कि–"असामाजिक तत्वों के हाथ की कठपुतली बनने में जितनी भूमिका किन्नरों के सन्दर्भ में बहिष्कार-तिरस्कार की रही है, उससे कम उनके पथभ्रष्ट निरंकुश सरदारों और गुरुओं की नहीं।"[3]

यह बड़ी दुर्भाग्य पूर्ण बात है कि समाज के शिक्षित वर्ग जिन्हे इस प्रकार की कुरीतियों का विरोध करना चाहिए वे ही अपनी कुंठित मानसिकता के साथ किन्नर समाज का बहिष्कार करते है। उन्हें शिक्षा से वंचित रखते हुए लोग उन्हें पथभ्रष्ट कर उनके सुखांत जीवन जीने का मार्ग ही बंद कर देते है। इसी संदर्भ में भगवंत अनमोल जी का उपन्यास 'जिंदगी 50-50' की पात्र हर्षा उर्फ़ हर्षिता एक किन्नर के रूप में जन्म लेती है जो अपने साथ किए व्यवहार से व्यथित होकर कहती है–"पता नहीं मेरे अन्दर ऐसे कौन से कांटे लगे हुए हैं, जो लोग अगर मेरे पास में बैठेंगे तो उनको चुभ जायेंगे और उन्हें सजा मिल जायेगी!"[4] यहाँ तक की स्कूल की अध्यापिका भी स्कूल में शैतानी कर रहे बच्चों से कहती है–"अगर किसी ने बदमाशी की तो उसे हर्षा के पास बैठा दूंगी।"[5] यहां शिक्षक वर्ग भी जिन्हें लोगों को इन बुराइयों के प्रति अवगत कराना चाहिए इन्ही में शामिल है।

पुलिस का कार्य है, समाज की सेवा करना। परंतु वही प्रशासन जब मर्यादा हीन हो जाए तथा अनैतिकता के मार्ग पर चले तो? हमारे समाज में कुछ ऐसे पुलिसकर्मी भी मौजूद है, जो इस शक्ति का गलत प्रयोग करते है। घर से भागने के पश्चात पायल जब उन्नाव प्लेटफार्म पर नींद में बैठी होती है तो उसकी बगल में बैठा एक मुच्छड़ सिपाही उसके साथ गंदी हरकतें करता है। डंडे का भय दिखाकर सिपाही पायल को घसीट कर प्लेटफार्म की दूसरी ओर ले जाता है तथा अंधेरे का फायदा उठाकर दुष्कर्म करने की कोशिश भी करता है। अतः पायल के रोने पर वह उसे धमकाता है–"अरी चुप कर... चुप कर नहीं तो यह डंडा देख रही है न... घुसेड़ दूंगा तेरी... में।"[6] परंतु पायल टस से मस नहीं होती। कुछ देर पश्चात एक ट्रॉली वाला उसके साथ हो रहे ज्यादती का अनुमान लगा लेता है तथा ईश्वर की कृपा से पायल उस भेड़िए की चंगुल से बच निकलती है। जिस पुलिस को समाज की सेवा का दायित्व दिया जाता है यदि वही समाज में इन किन्नरों के साथ अश्लीलता तथा अनैतिकता का व्यवहार करें तो लोग न्याय की उम्मीद किससे करें? इस विषय में सरकार को सोचने की आवश्यकता है।

घर से विस्थापित होकर इस संघर्षपूर्ण समाज में आगे बढ़ते रहना आसान नहीं होता। समाज में लड़की का रूप धारण कर पायल के लिए रहना दुष्कर हो गया था। वह अब इन खाकी वर्दी वाले सिपाहियों के निगाहों से दूर ही रहती थी। इन सब लोगों से बचने के लिए पायल कपड़े चोरी कर लड़के के वेशभूषा में रहने लगती है तथा यह युक्ति आगे के दिनों में काम आती है–"लड़के का रूप धरते ही मैंने देखा कि मेरी और कोई भी नहीं देख रहा था। इतना बड़ा परिवर्तन जो लड़की की और घूरते हैं वे लड़के की और ध्यान भी नहीं देते।"[7] समाज के विकृत सोच से स्वयं को बचाने का पायल को यही उपाय सूझा था।

भूख की पीड़ा क्या होती है यह एक भूखे व्यक्ति के अलावा और कोई नहीं समझ सकता। पेट की आग मनुष्य को उसके स्वभाव के विपरीत जीने के लिए मजबूर कर देती है तथा उसे उन परिस्थितियों के साथ समझौता करना पड़ता है। बचे खुचे पैसे खत्म होने के बाद पायल भी इस पीड़ा से वाकिफ हो चुकी थी। पायल की भूख की पीड़ा का चित्रण भीष्म

जी ने कुछ इस प्रकार किया है—"मैंने देखा मेरी हम उम्र के दो बच्चे वहाँ आकर जूठे दोने चाटने लगे। मुझसे रहा नहीं गया। मैं भी उनके पास जाकर बैठ गयी।... दोने में मटर के कुछ दाने थे पर दही व मीठी चटनी लगी हुई थी, मैंने जीभ से दोना चाट लिया।"[8] भूख से तड़प रही पायल स्टेशन के प्लेटफार्म पर किसी को खाना खाते देखती तो इस उम्मीद से देखती कि सामने वाला व्यक्ति तरस खाकर कुछ दे दे परंतु बदले में उसे मिलती है तो केवल गालियां और दुत्कार। जब एक व्यक्ति अपने टिफिन की बदबूदार भोजन को पटरियों पर फेंक देता है तो पायल उन लोगो की नजरों से बचकर प्लेटफार्म से उतरकर उस खाने को उठा लेती है। यहाँ समाज के इन लोगों की वास्तविकता भी देखने को मिलती है जो अपनी झूठी शान के कारण लोगों की मदद करने से कतराते है।

वर्तमान समाज में किसी न किसी रूप में संघर्ष होता ही है, क्योंकि समाज में अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघर्ष जरूरी है। पायल भी अनवर नाम के हम उम्र लड़के के साथ प्लेटफार्म पर दातुन बेचने लगती है। दातुन बेचकर वह २ रुपए तक कमाने लगी, जो उसके पेट की आग बुझाने को पर्याप्त थी। अनवर को चोरी करने की लत लग गई थी जो बाद में उसके लिए काल बन गया। एक दिन चोरी करते हुए अनवर सिपाही के मारे हुए डंडे का निशाना बनता है तथा असंतुलित होकर आगे का हिस्सा चलती ट्रेन में घुस जाता है, तत्क्षण अनवर का शरीर दो भागों में बँट जाता है। इस भयानक दृश्य को देख पायल निष्क्रिय हो जाती है। उपन्यास में ऐसी आकस्मिक घटनाएं जगह-जगह देखने को मिलती है जो पाठकों को कुछ देर सोचने पर विवश करती है। रेलवे स्टेशन छोड़ने का निश्चय कर, अपनी जीविका के लिए पायल पंडित जी के चाय की दुकान पर काम करने लगती है तथा रहने और खाने की भी व्यवस्था हो जाती है। अब पायल अपने जीवन को गति देने के लिए आत्मनिर्भर हो जाती है।

मनुष्य अपनी जिजीविषा को यदि जगाए रखें उसके प्रति मोह पैदा करें, तभी उसका जीवन जीने योग्य बनता है। इस संघर्षमयी जिंदगी को अपना बनाने का प्रयत्न पायल हमेशा करती रहती है। इसी जिजीविषा को लिए पायल अब ठेकेदार संतोष सिंह की कैंटीन अप्सरा टॉकीज चली जाती है। पंडित जी को बिना बताए संतोष दादा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है। कैंटीन का परिसर काफी बड़ा था जहां उसके साथ एक नेपाली लड़का जोली और चौकीदार प्रमोद रहता था। जुगनू के सीखने की प्रवृत्ति से संतोष दादा खुश रहते थे, वे पायल को इसी नाम से जानते थे। प्रमोद चौकीदार कामी प्रवृत्ति का व्यक्ति था, वह उससे चौकनी रहती थी। प्रमोद के इसी प्रवृत्ति से पायल बिना बताए कैंटीन छोड़ कर चली जाती है। ऐसे वक्त पायल को काम की सख्त जरूरत थी और इसी की तलाश में वह एक गिरोह के चंगुल में फंस जाती है, जहाँ से निकलना लगभग असंभव था। वह गिरोह बच्चों से भीख मँगवाते थे। वहां अन्य बच्चे भी थे जो घर से भागे हुए थे तथा उनके पास अपनी-अपनी वजहें थी। परंतु उनमें पायल की तरह कोई ना था जो 'हिजड़ा' होने के कारण पिता की संकीर्ण मानसिकता से बचने के लिए भागी थी। यहाँ कथाकार समाज की एक मूल समस्या को सामने रखते हैं जिसका कहीं ना कहीं दोष उनके माता-पिता का भी है जो बच्चों की मानसिकता को समझ नहीं पाते तथा उन्हें घर से निकाल फेंकते है। भगवान की कृपा से पुलिस की रेड पड़ने पर पायल उस नर्क से निकल जाती है तथा बाद में राजकीय बाल गृह के सहयोग से अपनी अम्मा और राकेश से भी मिलती है।

कथाकार भीष्म जी ने उपन्यास में पायल के जीवन की त्रासदी को ही नहीं उसके कुछ करने की भावना को भी अभिव्यक्त किया हैं। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने अतीत के यथार्थ को भूलकर समाज में अपनी पहचान बनाना चाहते हैं, पायल भी उनमें से एक है। प्रमोद के पुनः किए गए शोषण के कारण उसकी दैहिक सच्चाई सबके सामने आ जाती है। अतः पायल संतोष दादा की मेहरबानी से पूनम टॉकीज चली जाती है। कानपुर के अप्सरा टॉकीज की कैंटीन में चाय समोसा बनाने का काम करने के बाद पायल पूनम टॉकीज में गेटकीपर की नौकरी करने लगती हैं। अपनी कार्यकुशलता के बल पर वह प्रोजेक्टर रूम में कटियार साहब की सहायक भी बनती है। बाद में लखनऊ में ऑर्केस्ट्रा का काम भी करने लगती है। टॉकीज में फिल्में देखते रहने के कारण पायल एक अच्छी डांसर बन गई थी। बचपन से लेकर किशोर अवस्था तक पायल का जीवन हमेशा से ही उलझनों से भरा रहा, कभी लड़की के रूप में तो कभी लड़के के रूप में। लेकिन पायल ने इन दोनों किरदारों

को बखूबी निभाया।

पायल ने ये सिद्ध कर दिया कि सामान्य जन की तरह एक मंगलमुखी(किन्नर) भी सारे काम कर सकती है जो समाज में पुरुष या स्त्री करते हैं। सामान्य लोगों की तरह यह भी जीवन यापन करना चाहते हैं परंतु समाज उन्हें वह अवसर ही नहीं देता, जिससे वह समाज के निर्माण में सहायक हो सके। आमतौर पर देखें तो किन्नर समाज आज भी कहीं-न-कहीं त्रासदीपूर्ण जीवन जीने को विवश है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'मैं पायल' उपन्यास समाज में उपेक्षित तथा उपहास का पात्र माने जाने वाले वर्ग 'हिजड़ा' जिसे शिष्ट भाषा में 'किन्नर' कहा जाने लगा है, की वेदना पीड़ा तथा परिवार एवं समाज से मिली संवेदनहीनता की आत्मकथा है। उपन्यास में पायल के माध्यम से समाज में वर्षो से चली आ रही झूठी मान मर्यादा के चलन का प्रतिरोध किया गया है, जिससे किसी मनुष्य का उपहास उसकी शारीरिक विकृति के कारण किया जाता है। उपन्यास के केंद्र में जरूर पायल तथा किन्नर समुदाय का संघर्ष है लेकिन इसके अतिरिक्त प्रशासन व्यवस्था और व्यक्ति के अंदर छिपी कलुषित प्रवृतियां, बाल मन की यौन जिज्ञासाएं, बाल मजदूरी, समाज की हृदयहीनता, भूख की त्रासदी तथा ममतामई माँ की संवेदना जैसे अनेक विषय सामने आते हैं। भीष्म जी ने पायल के माध्यम से सभी किन्नरों की जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है।

महेन्द्र भीष्म जी आधुनिक काल के जाने-माने कथाकारों में से एक हैं, जिन्होंने साहित्य के अनछुए विषयों को छुआ हैं। इनका पहला उपन्यास 'किन्नर कथा' (2010) भी समाज में उपेक्षित किन्नर वर्ग से ही संबंधित है, जो काफी चर्चित भी रही। 'मैं पायल' उपन्यास भी एक नए विषय के साथ समाज के सामने कई प्रश्न उठाता है कि यदि इनके माता-पिता दूसरे बच्चों की तरह इन्हें पढ़ाते-लिखाते, अच्छी परवरिश देते तो यह वर्ग भी आज किन्नर समाज में फैली उन तमाम बुराइयों से स्वयं को बचा लेता। इस स्थिति के लिए स्वयं किन्नर भी कहीं ना कहीं दोषी है जो वर्षो से चली आ रही इस व्यवस्था में खुद को बाँधे हुए हैं, वे इससे निकलने का प्रयास तक नहीं करते क्योंकि इनमें आत्मविश्वास की कमी हैं। शिक्षा का अभाव इनके चरित्र के पतन का मूल कारण बनता है। इस उपन्यास में पायल भी इन सुविधाओं से वंचित रही परंतु उसने अपनी जिजीविषा को खत्म होने नहीं दिया तथा समाज में अपने अस्तित्व की रक्षा, पहचान और स्वीकृति के लिए निरंतर संघर्ष करती रही।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भीष्म, महेंद्र, मैं पायल..,अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृष्ठ संख्या 24।
2. वही, पृष्ठ संख्या 34।
3. मुद्‌गल, चित्रा, पोस्ट बॉक्स नं.203 नालासोपारा, सामयिक प्रकाशन, 2016, पृष्ठ संख्या 61।
4. अनमोल, भगवंत, जिंदगी 50-50, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृष्ठ संख्या 40।
5. वही, पृष्ठ संख्या 51।
6. भीष्म, महेंद्र, मैं पायल..,अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृष्ठ संख्या 48।
7. वही, पृष्ठ संख्या 52।
8. वही, पृष्ठ संख्या 59।

Musical Effects on Human Body and Mind

Anu Saxena
Research Scholar
Sitabai Arts, Commerce and Science College Akola,
Maharashtra
Email id : anumuzic11@gmail.com
mobile: 9810603448

Dr. Kaumudi Kshirsagar Barde
Guide

Abstract :

This research paper is a focus on the effects and impacts of different types of music on human body and mind . Music has taken an important place in the daily lives of humans and is an integral part of their routine .The connection between music and humans will be highlighted. Different types of musical genres and types like , instrumental tunes , vocal voices , classical or light music etc what kind of impact it brings on people will be shown .

Mind is always craving for something and when music is played , how does it effect will be discussed . Music now a days is being used as a medical therapy too for treating patients, which is a very vital aspect, will also be highlighted through this research paper .

Key words : Music effects, mind and body, therapy, impact.

Introduction :

Human beings are very emotional by nature . To express their inner feelings and emotions they invented and included music in their lives . Music has been their in the society since a very very long time. Its perceptible that music and culture go hand in hand in building a society with deep routed culture and traditions . In India the most sacred granthas like Vedas and Upnishad have mentioned the importance of music. In Sam veda all the shloka are written in musical phrases .

All seven notes are mentioned in Samveda and mantras for surya , Indra and Agni Devta etc are musically tuned . These mantras were sung to do daily affairs like hawan puja by people at homes , also by saint and our Rishi munis to pray in solace in jungles ,to meditate and concentrate . Our gods and goddesses also used music for their entertainment .Indian gods like Lord krishna always used his flute to create an atmosphere of love and peace. Goddess Saraswati the deity represents knowledge and Music had been seen always playing a Veena . Lord shiva is seen playing a Damru and he dances doing 'Tandav ' to express his feeling of anger.

Hence its quiet evident that music is an integral part in the lives of nit only humans but for the Gods and Goddesses too.

Effects of music on Daily life of people :

Music sets a connection with people in their daily routine and helps them in various ways individually and collectively .

1-Music has the power to create connection between people :

1-A People of different places , or different cultures, caste or religion when hear their country's national anthem , they get a feeling of Pride and respect and start singing it together. This is the magic of music which makes a connection between different people. Mostly the sportsmen of a country when representing as a team , they are together get connected while singing national anthem.

1-B-Music sung for Collective prayers done during festivals and celebrations:

In India festivals are the occasions which are celebrated with music. Eg. In Navratri puja the famous Garba is done with devi songs , and people sing and dance on those songs collectively, same is the Bengali Durga Puja where dance and songs are an integral part of the celebrations throughout the country . All Indian festivals have music as their prime theme during the celebrations ,and people collectively celebrated these festivals with Music .

1-C-Music is an important element in Marriages and Rituals :

Music is an essential component in Indian marriages and rituals . All types of rituals in a marriage have different folk traditional songs which are sung by families together and this brings a feeling of belonging, togetherness in a family. People come closer and enjoy together with a harmonious rhythm and joy .

1-D- Music can be used for creating a social cause , or any protest agenda too:

Music can be used to express feelings of anger or resentment against a particular social problem , to educate people in villages about health issues eg. a nukkad play ; in which some slogans are sung in easy tune ,to teach and connect with the common , uneducated or less privileged people.

Musically tunes phrases easily are relatively more effective and get understood in a simple manner.

Music makes people understand social issues easier and get solutions easily.

These are some of the effects music can create collectively on humans mind and body.

2- Music effects the human Mind and soul :

Music has proven to have influenced a human's mind so much that they react in a particular manner when listening to various different musical notes , songs or types of music .while listening to the various musical instruments distinct emotions are seen in people.

2-a -Different musical instruments create different types emotions in humans :

Musical instruments create various emotions in the body and mind of people when they hear or play them in an effective manner.for example:

Violin is an instrument when played slowly it creates a mood of sadness and mellowness.

Sitar is an instrument which represents happiness and joy, and is generally used in movies to create romantic feelings. Drums and tabla reflect speed and action when played fast and loud . Also to maintain rhythm. Piano is an essential instrument which can create a feeling of strong emotions.

Shehnai is used for creating a general happy mood in cultural events . It's a very happy instrument

,genrally played in marriages, social events etc. flute is an important instrument which creates mesmerising feelings of happiness.

2-b- Music can enhance the memory in humans:

It's seen in many people that while doing their important work if they are listening to a certain type of song or a vocal tune, of their choice , they perform better in their work . In indian classical music there are special raagas which can help relax and make concentration better eg . Raag bhimplasi and raag pahadi when heard , helps in deep learning and concentration .thus improves the learning capability.

2-c-Music helps in eradicating depression in people :

Music has the power to bring a person out of deep depression. It's seen when a sad person listens to a fast happy tune like jazz music , or indian sitar , santoor played , it creates an environment of happiness and rejoice . Bollywood songs with old melodies and classics are evergreen songs which can create a feeling of happiness and help in removing depression.

2-d- Music helps to lesson Anxiety in humans :

Many a times its seen that people when feel nervous or stressed in any difficult situation, they listen to a much relaxed music , calm tune and feel less anxious and stress free . Also if someone has had a very stressful day,listening to a soothing calm music can help them recover from the stress better.

2-e- Music helps mellow down the Pain :

Pain is a very tough feeling and it generally doesn't get better easily, and many a times a better distraction is necessary to get over it . Music comes in handy as the greatest distraction when a person is in deep pain , whether its Physical or mental ,in both cases music acts as a pain relief balm, and helps dealing with it with much relaxation.

Musical effects in human body :

Music can create significant changes in a human body , which can help them lead a better life.

1-Music is a booster for a healthy heart :

Now a days Music is being used to do a lot of dance based exercises eg. Zumba ; in which the dance steps are set to high and low intensity musical pattern and songs , and these types of dances are known as aerobics . They are very good for maintaining a very healthy heart rate due to different types of body toning exercises done .

2-Music is a great companion for drivers :

People who love driving need a true friend or companion while concentrating on the road , so that they can focus better on their driving and not get fatigued or sleepy,for which music plays a vital role . Drivers keep listening to their favourite Music while driving and keep getting motivated and refreshed .With the help of music they can drive miles and miles without getting distracted, bored or tired, And uplifts their mood .

3-Music is happiness for humans :

Good music is happiness for all humans. When people listen to good music hormones like

dopamine is released and is good for humans and keeps them happy . And as we say a happy mind is a happy and healthy body

4- Music is an amazing tool for getting sound sleep:

Today's such stressful and challenging life is leading to sleepless nights for many people. Many meditative tunes and musical instrumental music is available to enhance deep sleep with right set of breathing patterns and techniques which people are adapting in their daily sleep routine.

These musical tunes are very effective and ease the mind and body to relax and go into deep sleep at night . Sleeping at right time is the key to a healthy lifestyle for which music is the main factor.

Music is giving a healthy balanced lifestyle to people .

Medical effects and benefits of Music :

Medical science have shown vital effects of music on human brain health. Neurological research has proven that many patients suffering from major health conditions can get relatively better treatment with the assistance of music .

Patients suffering from a very bad disease named; Alzheimer ,can be treated with the help of music .While very soft and low music played can help taper the decline of cognitive functions.

Patients who are having mild symptoms of dementia can get help in recovering some of their lost memory. Hormones like ; oxytocin, serotonin and dopamine are helping patients improve their mental health and reduce their stress levels.

Conclusion:

Finally its evident that music brings forth a vey essential and productive impact on human mind and body. Music can create a perfect balance in life and create a healthy and fulfilling happy environment to live in for all human beings. While having a healthy body, a relaxed mind , motivated spirit a person can achieve their desired outcomes in life and lead a stress free lifestyle with their loved ones.

Now a days , Music therapist are also available to guide people, to attain much better outcomes

For their healthy body and mind.

Bibliography:

1. musical effects on humans - Google Search
2. How Music Affects Your Mind, Mood and Body | Tallahassee Memorial Health
3. effects of muysic on humans in different ways - Google Search
4. Benefits of Music on Body, Mind, Relationships & More
5. https://jrgcollegekkr.ac.in/wp-content/uploads/2023/01/4.-Dr.-Anita-Sharma-18-19-2.pdf
6. सामवेद में संगीत, श्रीनिवासराव के ब्लॉग
7. Indian Mythology: The cornerstone of Indian Music – Itisaras
8. How Different Musical Instruments Affect the 7 Chakras - Purnesh
9. The Positive And Negative Effects of Music On Human Behaviour | Mind Voyage.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

महानगरों में नारी

R. D. NIRMALA
Research Scholar
Department of Hindi, School of Languages, Vels Institute of Science, Technology & Advanced Studies(VISTAS)
Email id : nirmalard03@gmail.com
GUIDE: **Dr. ANURADHA PAKALAPATTI**
Department of Hindi, School of Languages, Vels Institute of Science, Technology & Advanced Studies(VISTAS)

प्रस्तावना

महानगरों में नारियों की परिस्थिति अलग होती है। नारियों के निम्न वर्ग, मध्य वर्ग और उच्च वर्ग की परिस्थितियाँ अलग-अलग प्रकार के होते हैं। निम्न वर्ग के नारियों को संघर्षो से जूझना पड़ता है। मध्य वर्ग के नारियों को कुछ भी करने से पहले हज़ार बार सोचना पड़ता है। उच्च वर्ग के नारियों को किसी भी चीज़ के लिए न तो संघर्ष करना पड़ता है, न ही सोचना पड़ता है। उन्हें सही समय पर सब कुछ मिल जाता है। मध्यवर्गीय नारियाँ अपने ज़रूरतों से पहले अपने परिवार के बारे में सोचती है। वह खुद के बारे में बिल्कुल नहीं सोचती है। शिक्षा का महत्व आरंभिक काल की नारी उतना नहीं जानती, लेकिन आधुनिक युग की नारियों के हृदय शिक्षा के कारण साहस से भर गया है।

नारी जीवन

महिलाएँ अपना पूरा जीवन अपने परिवार के लिए ही जीते हैं। "ज़िंदगी में नारी की कल्पना कितने ढंग से की गई है उसे सार्थकता प्रदान करने के लिए कभी मानवी तो कभी दानवी चित्रित किया गया। बेहद रोमानी क्षेत्रों में वह प्रेरणापद और खुद हो जाती है।''

उपर्युक्त पंक्तियाँ लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास 'बात एक औरत की' में यह दिखाते हैं कि पुरुष, स्त्री को मनोरंजन की साधन समझता है। नारी के अधिकारों को छीन कर उसे सिर्फ भोग की वस्तु बनाकर रखा है।

ममता कालिया के उपन्यास 'बेघर' की संजीवनी को परमजीत ने भोग कर छोड़ देता है। नारी को माँ मानने वाले हमारे देश में महिलाओं के ऊपर अपना अधिकार जताते हैं।

'शह और मात' उपन्यास में लेखक राजेन्द्र यादव अपर्णा के पति उसको शारीरिक कष्ट देता है। अपर्णा के पति उसको पीटता भी था। अपर्णा अपने भाई से कहती तो उसके पति बहुत गुस्सा दखाता और उसका अपमान करता है। उसका पति उसके साथ बहुत बुरा व्यवहार करता है। अपर्णा इस परिस्थितियों के कारण अपने पिता के घर चली जाती है अपर्णा का पारिवारिक जीवन उसके पति के अधिकारों और अत्याचारों के कारण बिना प्राण का हो गया है।

हमारे देश के लंबे समय तक महिलाओं को भोग के वास्तु मानते थे। पति के अत्याचारों के विरुद्ध कुछ नहीं किया।

आज के महानगरीय नारी, परंपराओं और अंधविश्वासों का विद्रोह करती है। शकी स्वभाव के पती से पत्नी विद्रोह करती है। वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर उसका विद्रोह करती है। लेकिन आजकल की स्थिति वैसी नहीं है कि स्त्रियाँ तलाक लेकर अपनी जिंदगी खुशी से जी रही है।

नवीन युग की नारियाँ

नवीन युग में महिलाएँ सभी तरह के प्रशिक्षण पाकर घर से बाहर निकलती है। नारी अपनी क्षमताओं को व्यक्त कर अपने लिए एक स्थान प्राप्त करती है। इस युग में एक ओर नारी प्रगति की तरफ आगे बढती है और दूसरी ओर उसे समस्याओं एवं बाधाओं का सामना करना पड़ता है। आज महिलाएँ सभी क्षेत्र में कार्य करती हैं। स्त्री स्वतंत्रता के साथ शिक्षा के द्वारा बदलती परिस्थितियों को पहचानकर जागरूक हो रही है। महानगरों में नारियों की स्वाधीनता में यह परिवर्तन अधिक दिखाई दे रही है। शिक्षा नारियों को एक नया जीवन दिया है। महिलाओं की सोच - समझ और विचार, शिक्षा के कारण बढ गया है। नारी शिक्षा से रूढियों का विरोध करना शुरू किया। महानगरों के शिक्षित या अशिक्षित नारी आर्थिक दृष्टि से भी आत्मनिर्भरता के साथ है। इन असुरक्षित महानगरों में नारियाँ अत्यधिक अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। लेकिन फिर भी वह इसके खिलाफ अपनी आवाज़ उठा रही है। आर्थिक स्वतंत्रता ने नारियों के आत्मविश्वास को और भी बढ़ाया है। 21 वीं सदी के आरंभ से समाज, धर्म, विवाह, नौकरी आदि क्षेत्रों में नारी स्वतंत्रता से निर्णय लेती है। आधुनिक नारी सफलता प्राप्त करके सभी क्षेत्रों में अपनी योग्दान दे कर आगे बढ रही है। नारी को एक ओर प्रगति की सोपान पर चढ़ रही है। दूसरी ओर अपने समस्याओं और बाधाओं का सामना कर रही है। आज की नारियाँ चाहे गाँव के हो या नगर के अपने पर हो रहे अन्याय और अत्याचारों का खुलकर विरोध कर रही है।

कामकाजी नारी

साहित्य में नारी के विभिन्न रूप प्रचलित है। कामकाजी महिला एक तरफ घर की समस्या और दूसरी तरफ कार्यक्षेत्र की समस्याओं का सामना करती है। कार्यक्षेत्र में सुरक्षा का अभाव है। सामान्य रूप से आजकल घऱ में या घर से बाहर निकलकर अर्थोपार्जन करने वाली शिक्षित और अशिक्षित नारियों को कामकाजी महिलाएँ कहलाई जाती हैं। नारी स्वावलंबी होकर अपने घर की आर्थिक परिस्थितियों को सँभालने निकल पड़ी है। आज की नारी शिक्षित और आत्मनिर्भर होने के कारण घर तथा कार्यक्षेत्र में काम करती है। कामकाजी नारी, घर और काम के जीवन दोनों को अपने आत्मनिभर के साथ करती है। कामकाजी महिला सिर्फ पैसा कमाने के लिए नहीं पर अपनी योग्यता का उपयोग करना चाहती है। कामकाजी महिला शिक्षित होकर स्वावलंबी बनना चाहती है। महिलाएँ कामकाज के द्वारा सिर्फ परिवार की आर्थिक स्थिति को बदलने नहीं बल्कि वह किसी पर बोझ बनकर नहीं रहना चाहती है। वह स्वतंत्र होकर अपने जिंदगी को प्रगति की ओर बढ़ाना चाहती है। शिक्षा प्राप्त करके नौकरी करने से समाज में प्रगति पाने के रास्ते में उसको बहुत सारी समस्याओं एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आज नारी समाज का अंग बन गई है। संसार में अपने पहचान और सामान से रहना चाहती है। कामकाजी महिला को बाहर काम के माहौल में रहने से अपनी जिंदगी में बहुत बदलाव आया है। वह अपना निर्णय खुद ले सकती है। शिक्षित होने के कारण चेतनशील बन जाती है। अशिक्षित महिलाओं को यह क्षमता नहीं होती है। लेकिन आजकल वह भी पुरुष की अनुगामिनी न बनकर अपना खुद का निर्णय खुलकर प्रकट करती है। सहगामी बनने में ही अपना सम्मान समझती है।

समस्याएँ

शिक्षा न मिलने के कारण आर्थिक रूप से मुश्किलों का सामना करना पड़ता और पुरुष से निर्भर होना पड़ता है। आर्थिक समस्या के कारण स्त्री को शिक्षा प्राप्त नहीं होती है। कामकाजी महिलाओं के घर में उनके पति और घर के अन्य सदस्यों का सहायता मिलनी चाहिए। कार्यालय में काम करने वाले कामकाजी महिलाएँ के बहुत बड़ा समस्या यह है कि काम के

कारण अपने बच्चों को अपना पूरा समय नहीं दे पा रहे हैं। यह दुख काम करने वाली शिक्षित या अशिक्षित, ग्रामीण या महानगरीय, निम्न, मध्य या उच्च वर्ग के हर महिलाओं को होता है। काम के लिए घर से बाहर जाने वाले कामकाजी महिलाओं के बच्चे घर में अकेले रहने के कारण कुछ बच्चे बिगड़ जाते हैं स्त्रियाँ अपने बच्चों का पालन पोषण समय के अभाव के कारण बच्चों के साथ रहकर नहीं कर पा रही है। कामकाजी महिलाओं को अनेक प्रकार के कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करती है, दफ्तरों में काम करने वाले शिक्षित या अशिक्षित कामकाजी स्त्रियों को यौन उत्पीड़न की समस्या का सामना करना पड़ता है। उसको सम्मान नहीं मिलती है। खासकर पुरुष सहकर्मियों के साथ काम करने वाली स्त्रियों को अनेक समस्याओं और आपत्तियों का समाना करना पड़ता है। बड़े-बड़े कार्यालयों में महिलाएँ काम करती है। उसके वेशभूषा कपड़े पहनने के तरीके पर सबका ध्यान चाहे कैसे भी उम्र के कर्मचारी क्यों न हो उसको देखते हैं। अगर उससे कोई गलती हो जाती तो उसकी नौकरी से निकलने की धमकी भी दी जाती है। कार्य क्षेत्र में पुरुष अधिकारियों का शोषण भी होता है। नगरों में रहने वाले नारियों के लिए अनेक समस्याएँ उत्पन्न होते हैं। कामकाजी महिलाओं को उन समस्याओं और परेशानियों का सामना करना पड़ता है। स्त्रियों को हमेशा पुरुष से निम्न स्थान दिया जाता है। आजकल महिलाएँ पुरुष से उच्च स्तर में काम करते हैं। तब पुरुष नारी के आदेशों का पालन करना ही तुच्छ समझता है। 'मैं अपराधी हूँ', 'कुमारिकाएँ', 'बात एक औरत की', 'नानी अम्मा मान जाओ' आदि उपन्यासों में ऐसी अनेक महिलाओं का चित्रण हुआ है। स्वतंत्र, आर्थिक और स्वावलंबी होने के बावजूद आजकल की नारियाँ आधुनिकता में फँसकर तनाव में जीती है। आजकल नारी शिक्षित और आत्मनिर्भर होकर घर और कार्य क्षेत्र दोनों को अच्छी तरह निभा रही है। कामकाजी महिलाओं को घर और कार्य दोनों को समान महत्व देना चाहिए। यह बहुत कठिन है। अगर घर और कार्य में किसी एक को महत्व देकर दूसरे को छोड़ देंगे तो समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उन समस्याओं को सामना करने के लिए उस समय सहनशीलता और आत्मविश्वास की आवश्यकता है। कामकाजी महिलाओं को बाहर और घर दोनों तरफ में होने वाले अनेक कठिनाइयों और मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। कई महिलाएँ घर में पति और बाहर सहकर्मियों का सहायता न मिलने के कारण तनाव ग्रस्त हो जाती है। पर हिम्मत नहीं हर हारती है। आजकल की कामकाजी महिलाएँ अपने जीवन में होने वाले कठिनाइयों का सामना कर लेती है कोई भी स्थिति में अपना काम छोड़ना पसंद नहीं करती है। दृढ़ बनना चाहती है। मुश्किलों का सामना कर आर्थिक रूप से दृढ़ बनना चाहती है। कामकाजी महिलाओं के परिवार में महिलाओं की शोषण का कारण भी बनता है। आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों में अविवाहित कामकाजी स्त्रियों को अपने स्वार्थ के कारण अपने पास ही रखना चाहते हैं। 'कुमारिकाएँ' उपन्यास में वंदना को वैसा ही किया जाता है।

समाधान

शिक्षा से ही नारी का आत्मविश्वास बढ़ता है। शिक्षा की सहायता से घर, परिवार और अपना काम और कार्यस्थल के होने वाले सारे मुश्किलों को संभाल लेती है। कामकाजी महिलाएँ अपने बच्चों की सुरक्षा एवं देखभाल को लेकर बहुत चिंतित रहती है। इसलिए महिलाओं को परिवार के सदस्यों की मदद चाहिए। घर में पुरुषों को भी सहायता करनी चाहिए। महिलाओं की सुरक्षा में जनता और सरकार दोनों को मिलकर काम करना चाहिए। स्त्रियों को शिक्षा और समान अधिकार देना चाहिए। उनकी पढ़ाई के साथ - साथ उनके कौशलों एवं धैर्य को बढ़ाने वाले कुछ कार्यक्रम के द्वारा प्रोत्साहन देना चाहिए। महिलाओं को कानून की जानकारी होनी चाहिए। महिलाओं को शिक्षा का अभाव, यौन उत्पीड़न, लैंगिक भेदभाव, लैंगिक वेतन अंतर जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन सब में बदलाव आना चाहिए।

नारी की सुरक्षा

भारत हमारे संस्कृति के लिए विख्यात है। हमारे देश में स्त्रियों को आदर, सत्कार और सम्मान दिया जाता है। भारत में स्त्रियों की सुरक्षा का महत्व दिया जाता है। महिलाओं को समान स्वतंत्रता है, वह चाहे कभी भी कहीं भी जा सकती है।

लेकिन अब हमारे भारत देश के महानगरों में जो भी मुश्किलें है, उसके अलावा महिलाओं की सुरक्षा का भी सावल है। उनकी सुरक्षा का अभाव है। सुरक्षा मानकों का पालन तो करते हैं पर उसके बावजूद भी अपराध होते ही है। महानगरों के हर जगह में अपराध की घटनाएँ और भी अधिक होती जा रही है। इस परिस्तिथि को बदलने में सरकार और कानून के साथ-साथ हर इंसान को मानवता के साथ अपना योग्दान देना होगा। सरकार ने महिलाओं की सुरक्षा के लिए सहायता प्रणाली सुरक्षित शहर परियोजनाएँ आदि किया जा रहा है। महिलाओं को अपनी सुरक्षा के तरीके सीखना चाहिए और सरकार के नियमों की जानकारी होनी चाहिए।

निष्कर्ष

नारी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है। मुश्किल परिस्तिथियों में भी वह हार नहीं मानती और अर्थार्जन कर स्वाभिमान के साथ अपना जीवन यापन करती है। घर, परिवार और बच्चों की ज़िम्मेदारी अथ्वा कार्यक्षेत्र की ज़िम्मेदारी वह अकेली निर्वाह करती है। नारी निर्भय होकर समाज से टक्कर लेती दिखाई देती है और समाज से अपना विशिष्ट पहचान बनाती है। अपनी योग्यता के अनुसार काम करके आर्थिक स्वतंत्रता के साथ अपने आदर्शों पर जीती है। अभी भी बच्चों की, पढ़ाई करने वाले लड़कियों की और काम करने वाले महिलाओं की सुरक्षा की स्थिति दयनीय है। सभी की समस्याओं का समाधान कानून के साथ-साथ संसार की समझदारी से होनी चाहिए। हमारे देश में सबको समान अधिकार दिया है। स्वतंत्र भारत में बच्चों, लड़कियों और महिलाएँ को और भी सुरक्षित रहने के लिए हमारे भारत सरकार को खत्म उठाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. शशि बाला, कामकाजी नारी, लोक संस्कृति प्रकाशन, नई दिल्ली 2020
2. डॉ. अजमेर सिंह काजल, उपन्यासकार राजेंद्र यादव, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली 2015
3. गोस्वामी, महिला एवं बाल विकास, पेंटर पब्लिशर्स, जयपुर 2003
4. रवीन्द्र कुमार पाठक नारीवादी अर्थषास्त्र के प्रयोक्ता अमर्त्यसेन, वर्तमान साहित्य, मार्च, 2008
5. रेखा कस्तवार, स्त्री चिंतन की चुनौतियां, राजकमल प्रकाशन 2009
6. संध्या गंगराडे, आज की कविता में नारी अस्तित्व, 'सम्मेलन पत्रिका
7. त्रिपाठी आर, कामकाजी महिलाएँ वास्तविक स्थिति, खुशी पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2011
8. एन. रूवाली प्रियंका, कु. वन्दना, कामकाजी महिलाओं की परिस्थिति एवं समस्याएं : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, जरनल ऑफ आचार्य नरेन्द्र देव रिसर्च इन्स्टीट्यूट।
9. कुमार, राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. कुसुम मितल, कानून और समाज, वर्तमान साहित्य, जून 2008

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

नमिता सिंह के कथा साहित्य में चित्रित धर्म का सांप्रदायिक स्वरूप

फूला देवी
शोधार्थी, हिंदी विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
शिमला- 171005

शोधसार– भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। विविध धर्मों, संप्रदायों, जातियों, भाषाओं, संस्कृतियों का एक धारा में बहना यहाँ की अनूठी सांस्कृतिक पहचान है। धर्म लोगों में सामाजिक चेतना जागृत करने की वह अदृश्य शक्ति है, जो समाज की विकास-प्रक्रिया के मूल में अवस्थित होकर उसके नवनिर्माण के साथ-साथ विकृतियों को दूर करने का मार्ग भी प्रशस्त करती है। मानव सभ्यता के विकास के साथ धर्म के वास्तविक तथा बुनियादी स्वरूप में भी परिवर्तन आया है और मानवता के लक्ष्य से विपथित होकर वह सांप्रदायिकता की संकरी वीथियों में भटकता चला गया। आज वह मुट्ठीभर लोगों की जागीर बना दिखाई दे रहा है जो हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई जैसी सामाजिक दीवारें खड़ी कर इसे अपनी स्वार्थसिद्धि का हथियार बनाए बैठे हैं। कार्ल मार्क्स ने धर्म को अफ़ीम यूँ ही नहीं कहा था। ज़हर में तब्दील होते धर्म के इस बदरूप चेहरे को हिंदी साहित्य ने बारंबार चित्रित कर लोकमंगल के अपने प्रयोजन के प्रति बार-बार आश्वस्त किया है और नमिता सिंह का कथा साहित्य भी इसी आलोक में देखा-परखा जा सकता है। उन्होंने 'क्रासिंग', 'राजा का चौक', 'यही नहीं', 'पर्सनल मामला', 'डाल से टूटे पत्ते', 'साँड', 'रक्षक', 'हां! मैंने कहा', 'कर्फ्यू', 'लेडीज़ क्लब' आदि रचनाओं के माध्यम से इस संदर्भ में अपनी सहज चिंताएँ अभिव्यक्त करते हुए लोकमंगल के महायज्ञ में अपना हविष्य समर्पित किया है जिसका अध्ययन और चिंतन-मनन समय की माँग है।

बीज शब्द–धर्म, सांप्रदायिकता, जागीर, आश्वस्त, विपथित, अनाचार, सार्वभौमिक, अप्रासंगिक, यथेष्ट, बंधुत्व।

प्रस्तावना–धर्म के बिना मानवता रीढ़हीन है और मानवता के बिना धर्म खतरनाक। धर्म से संबंधित मानव की धारणाएँ जीवन के लिए उपयोगी व हितकारी मानी जाती हैं। समाज में वही धर्म श्रेष्ठ माना जाता है, जो संस्कारित करे, सन्मार्ग दिखाए, समन्वय के आधार पर समाज का पथ आलोकित करे। भारतीय जनजीवन में धर्म का स्थान महत्त्वपूर्ण है परन्तु धर्म का स्वरूप सदा लोकमंगलकारी नहीं रहा है। जिस धर्म पर भारतीय संस्कृति की नींव खड़ी है, आज उसका मूल स्वरूप विकृत हुआ है। आज के भौतिकवादी मनुष्य की भगवान और धर्म में आस्था नहीं रही है। राजनेता सत्ता हथियाने के लिए धर्म को हथियार बनाकर प्रयोग कर रहे हैं।

धर्म एक सार्वभौमिक प्रणाली है जो प्रत्येक समाज में पाई जाती है। वह समाज की मूल संस्थाओं में से एक है जो सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसके अपने कुछ नीति-नियम, कर्मकांड, पूजा-पाठ, आस्था-विश्वास और परम्पराएँ होती हैं। यह एक लोकपरक व्यवस्था है जिसमें सद्‌गुणों का प्राचुर्य होता है। दान, दया, तप, सत्यता. शुचिता, करुणा व क्षमा इत्यादि धर्म के मूल स्तंभ माने गये हैं। समाज की विकास प्रक्रिया, नव निर्माण में तथा समाज के विकृत रूप को सुधारने में ये मददगार होते हैं। धर्मपाल कपूर कहते हैं–"धर्म का एक सामान्य अर्थ है- धारण करना अर्थात्

संपूर्ण मानव-जगत को उन विविधताओं और विभिन्नताओं के समन्वित रूप में धारण करना।"[1] अतः धर्म समाज में मानवीय चेतना को जागृत करने वाला वह सजीव तत्व है जो मानव मस्तिष्क में जगत कल्याण की भावना का अभ्युदय करता है।

इस सृष्टि में धर्म का स्थान सर्वोपरि है, जिसका प्रमुख लक्ष्य जीव रक्षा के साथ-साथ उसका भरण-पोषण करना भी है। उसके अंतर्गत जो व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर दूसरों के प्रति आदर का भाव रखता है, उसे धार्मिक प्रवृत्ति का माना जाता है। अतः मानव के प्रति प्रेम ही धर्म है। धर्म मानव बुद्धि का विकास और मानवीयता की भावना का प्रसार करने वाला माध्यम है तथा वही उसकी श्रेष्ठता है। मानव स्वभाव के भीतर जो भाव सहज रूप में उभरता है, वही धर्म का आधार है। धर्म का वास्तविक अर्थ हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई न होकर मनुष्य के स्वाभाविक धर्म से है। सही कार्य को ठीक रीति से समयबद्ध तथा नीतिसंगत पूर्ण करना ही धर्म है। विद्यानिवास मिश्र के विचार में— "अचेतन और अर्ध-चेतन पदार्थों के साथ भी धर्म जुड़ता है तो उसका अर्थ उन पदार्थों के भीतर का स्वभाव ही है। पेड़ का धर्म छाया देना है, आग का धर्म जलाना है। चंद्रमा का धर्म आह्लादित करना है।਼2 अतः भारतीय संस्कृति में हम जिस धर्म के उत्तराधिकारी हैं, वह न केवल साधन है बल्कि वह हमारे जीवन का अभिन्न अंग और जीवन जीने का आधार है।

धर्म का पालन किये बिना किसी व्यक्ति अथवा समाज का भला नहीं हुआ है। धर्म की धारणा मानव के जीवन में उतनी ही आवश्यक मानी गई है जितनी कि जीवन के लिए ऑक्सीजन और अन्न प्राशन। धर्म के लिए, धर्म के कारण और धर्म के द्वारा कोई क्लेश उत्पन्न नहीं होता। सामाजिक क्लेश का प्रमुख कारण है सांप्रदायिकता। सांप्रदायिकता से तात्पर्य मानव की उस संकीर्ण मनोवृत्ति से है. जो धर्म और संप्रदाय के नाम पर पूरे समाज एवं राष्ट्र के व्यापक हितों के विरुद्ध व्यक्ति को मात्र अपने व्यक्तिगत धार्मिक हितों को प्रोत्साहन देने तथा उन्हें संरक्षण देने की भावना को महत्त्व देती है। अपने समुदाय के प्रति उसका विशेष लगाव, जो उसका अपने धर्म, क्षेत्र, संस्कृति, विश्वास, जातीयता या फिर अपनी भाषा के प्रति होता है। वर्तमान संदर्भ में सांप्रदायिकता का मुद्दा न केवल भारत में अपितु विश्व स्तर पर चिंता का विषय बना हुआ है। जी.के. अग्रवाल के शब्दों में— "सांप्रदायिकता एक ऐसी संघर्षपूर्ण मनोवृत्ति है जिसके अंतर्गत एक विशेष धर्म अथवा संप्रदाय के अनुयायी अपने धार्मिक तथा राजनीतिक हितों को पूरा करने के लिए अपने समूह को अन्य धार्मिक समूहों के विरुद्ध संगठित करते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें उग्र प्रदर्शनों तथा हिंसा के लिए भड़काते हैं।"[3] सांप्रदायिकता को वर्तमान समय में हिन्दू और मुस्लिम संप्रदाय के मध्य की संघर्षपूर्ण स्थिति से जोड़कर देखा जाता है। वस्तुतरू यह संघर्ष इन दो संप्रदाय तक ही सीमित नहीं है। विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा वैष्णवों और शैवों को, शिया और सुन्नियों को, अकालियों और निरंकारियों को आपस में अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए लड़वाया जाता है। वे आम जनमानस के उस संवेदनशील पक्ष के जानकार होते हैं, तभी वे यह जानते हैं कि चोट कहाँ करनी है। एक अन्य स्थान पर जी. के. अग्रवाल सांप्रदायिकता संबंधी अपने मत व्यक्त करते हुए कहते हैं— "सांप्रदायिकता अथवा संप्रदायवाद वह भावना है जो धर्म, संस्कृति, भाषा, क्षेत्र तथा प्रजाति में से किसी भी एक आधार पर एक समूह को दूसरे से पृथक रहने तथा उसका विरोध करने की प्रेरणा देती है।"[4] धर्म को संस्कृति से जोड़ना अप्रासंगिक नहीं परंतु विभिन्न राजनीतिक दलों एवं संप्रदायों द्वारा अपने स्वार्थों तथा हितों के लिए संस्कृति और धर्म को सांप्रदायिकता से जोड़कर देखना सिर्फ और सिर्फ स्वार्थ नहीं तो क्या है। ऐसी भावना के फलस्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों में पारस्परिक घृणा, विद्वेष, उपेक्षा, तिरस्कार, निन्दा तथा हिंसा जन्म लेती है।

सांप्रदायिकता से अभिप्राय मानव की उस संकीर्ण मनोवृत्ति से है, जो मनुष्य को मनुष्य से धर्म और संप्रदाय के नाम पर बाँटती है और जिसमें व्यक्ति राष्ट्र के हितों का प्रयोग किसी समुदाय विशेष के हितों व साधनों को संरक्षण देने तथा उनके विकास को महत्त्व प्रदान करने के लिए करता है। ब्रिटिश साम्राज्य के अवसान के पश्चात भारतीय परिवेश में उनकी रणनीति फूट डालो और शासन करो मानो रक्त में रच बस गयी। देश विभाजन की वारदात के पश्चात सांप्रदायिक विष एक ज्वलंत मुद्दा है। पीढ़ियाँ गुजरने के बाद भी सांप्रदायिकता की भावना लोगों के मन-मस्तिष्क में चिंगारी बन कर सुलग रही है। अरुणा पाठक ने राजनीति एवं सांप्रदायिकता को अपने शब्दों में व्यक्त किया है— "जिस देश में अनेक संप्रदायों के लोग रहते हैं, वहाँ उनकी सांप्रदायिक उत्तेजना राष्ट्रीय एकता एवं नागरिक जीवन के लिए भयानक अभिशाप बन जाती है। राष्ट्रीय एकता

नष्ट करने के लिए अंग्रेजों ने फूट डालो और राज्य करो की नीति का आश्रय लिया। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के धार्मिक मतभेदों का यथेष्ट लाभ उठाया तथा इस प्रकार भारत को अधिक समय तक परतन्त्र बनाए रखा। उस नीति का यह परिणाम हुआ कि हिन्दू-मुसलमानों में सांप्रदायिकता का अंतर निरंतर बढ़ता गया, जिसका परिणाम हमें आज तक किसी न किसी रूप में भुगतना पड़ रहा है।''[5] सांप्रदायिक कटुता की झलक समाज में प्रत्येक स्तर पर दिखाई देती है और राजनीति पर तो उसका विशेष असर पड़ा है। राजनेता चुनावों में वोटों के लालच में सांप्रदायिक भावना की आड़ लेने में नहीं हिचकते। समकालीन कथाकारों में प्रसिद्ध नमिता सिंह ने अपने साहित्य के द्वारा राजनीति और सांप्रदायिकता के विकृत स्वरूप की वास्तविक तस्वीर को उजागर करने का बीड़ा उठाया है।

समाज में सांप्रदायिकता की बढ़ती समस्या एक गहन विचारणीय मुद्दा है जो मनुष्य के धर्म, जाति और लिग संबंधी श्रेष्ठता वाली मानसिकता को उत्तेजित करने के लिए उत्तरदायी होता है। इसका प्रमुख कारण संप्रदायों को मध्य बढ़ती धार्मिक घृणा है, जिन्हें अपने आस-पड़ोस के सुख-दुःख में काम आने वाले लोग भी आतंकवादी नजर आने लगते हैं। सांप्रदायिकता ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति में गहरी पैठ बना ली है। 'डाल से टूटे' कहानी के माध्यम से स्थिति स्पष्ट होती है कि किस प्रकार कश्मीर में प्रत्येक मुस्लिम को आतंकवादी करार दिया जाता है और वह राजनीति का मुख्य मुद्दा तो है ही, समाज में भी धर्मान्धता फैलाने का काम किया है। इकबाल कश्मीर में अपने बिखरे परिवार की परिस्थिति का विवरण देते हुए कहता है– "हमारे अड़ोसी पड़ोसी, रिश्तेदार, दोस्तों से लेकर राजनीतिक दलों के लोग भी यह समझते हैं कि हर मुस्लिम कश्मीरी आतंकवादी है और हर एक की बगल में एक ए.के. 47 रखी हुई है। दूर से देखने पर हर आसमान जमीन चूमता नजर आता है लेकिन हकीकत कहीं अलग होती है।''[6] भारतवर्ष में सांप्रदायिकता फैलने का सबसे बड़ा कारण हिंदू-मुस्लिम का आपसी वैमनस्य है और राजनेता के लिए तो वह चुनाव में संजीवनी का कार्य करती है। मानवीयता में जंग लगने का कारण है, एक मुस्लिम को हेय दृष्टि से देखना और आतंकवादी मानना और एक हिंदू को मुस्लिम द्वारा काफिर मानना। उस खाई को पाटना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन हो गया है।

समाज में फैली सांप्रदायिकता से हमारे संवैधानिक मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह सा लग गया है और वह देश की एकता एवं अखंडता के लिए खतरा बनकर उभरी है। सांप्रदायिक वातावरण को उत्पन्न करने में मात्र राजनीतिक कारणों को ही उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता बल्कि सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक कारण भी समान रूप से जिम्मेदार हैं। सांप्रदायिकता देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए भी चुनौती बन कर उभरी हैं। धर्मांधता के कारण मनुष्य आपसी सद्भाव और भाईचारे को ताक पर रखकर एक-दूसरे को भड़काते हैं। 'कर्फ्यू' कहानी में सांप्रदायिक दंगा फैलने के कारण शकूर काफी व्यथित है क्योंकि इस कारण उसके निर्वाह के साधन पर असर पड़ रहा है। वह बच्चों को रिक्शे द्वारा स्कूल से घर पहुँचाता है और उन्हें घर से ले जाता है। उसे लगता है न जाने उस वक्त इन्सानियत पर ताला क्यों लग जाता है और सालों के बंधुत्व को छोड़कर सभी एक-दूसरे के गले रेतने को तैयार होते हैं। वह कहता है– "जाने क्या मंशा है लोगों की। ये भट्ट की तरफ भी निरे कोली भाग-भाग कर आए हैं शहर की तरफ से। सुना है दो-तीन कोली मरे हैं गोली से। हमारी तरफ भी कह रहे लोग जरा चौकन्ने रहो। पता नहीं गुस्से में क्या कर डालें ये लोग भी।''[7] सांप्रदायिक माहौल में इन्सानियत मर जाती है और इन्सान इन्सान के खून का प्यासा बन जाता है। धर्म में अंधेपन की वजह से मित्रवत व्यवहार दुश्मनी में बदल जाता है और उनकी आँखों में खून सवार हो जाता है।

राजनीतिक लाभ के लिए राजनेताओं की विकृत मानसिकता ने अक्सर समाज को बाँटने का कार्य किया है। समाज को जाति तथा वर्गीय आधार पर बाँटकर सांप्रदायिकता को खुले तौर पर निमंत्रण दिया जाता है। 'हाँ, मैंने कहा' कृति में नमिता सिंह सांप्रदायिकता की बुनियाद का बखान करते हुए कहती हैं– "आज की सांप्रदायिकता की जड़ सत्ता के साथ जुड़ी है- ऊपर से प्रत्यक्ष राजनीतिक दलों की दंगों में भूमिका भले न दिखे.... परन्तु राजनीतिक लाभ तो आखिर में उसे ही मिलता....। राजनेता समाज को जातियों तथा वर्गों में बाँटकर एक विशेष सामाजिक संरचना करना चाहते हैं जो उनके द्वारा संचालित हो.... अर्थात हर व्यक्ति उनका मात्र मोहरा बनकर रह जाये।ष्8 सांप्रदायिक दंगों के पीछे मूल रूप से राजनीतिक

दलों की स्वार्थपूर्ण मंशा छुपी रहती है। चुनावी रणनीति में प्रत्येक जाति तथा वर्ग उनका राजनीतिक मोहरा होता है।

नमिता सिंह के कथा साहित्य के अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि विचार की लड़ाई मात्र लेखन के सहारे नहीं लड़ी जा सकती बल्कि वैचारिकता का समाजोन्मुखी होना भी अत्यंत आवश्यक है। उनका यह वैचारिक संघर्ष सांप्रदायिकता तथा जातिवादी ताकतों से है जिसे हम अल्पसंख्यकों, दलितों एवं स्त्रियों की पक्षधरता भी कह सकते हैं। सांप्रदायिकता के विषय में उनका विचार है कि एक सत्ता का लोभी धार्मिक समूह अपने हितों को अधिक महत्त्व देता है और विरोध, हिंसा तथा संघर्ष द्वारा अन्य समूहों का दमन कर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है, जिसके द्वारा पारस्परिक घृणा, विद्वेष, उपेक्षा, तिरस्कार, निन्दा का वातावरण तैयार होता है। 'रक्षक' कहानी में चन्द्रा के पिता जी मास्साब से बात करते हुए कहते हैं– "मेरे सामने की बात है जी, सुनी सुनाई नहीं। सब के सब खड़े राधेश्याम की दुकान पर, पान खा रहे। उसे देखा तो बोले कि देखो मुसल्ले को। हमारे मुहल्ले से निकल रहा है और मस्ता रहा है। कहने की देर नहीं कि चन्दू ने, अरे वही मुंशीराम हलवाई का लड़का, उसने निकाली जेब से और धांय-धांय, चला दी! वह भागा, गोली लगने पर। कुछ दूर तक तो खींच ले गया फिर गिरा वकील साहब के बरान्डे पर। फिर जब पता चला कि अरे, हिन्दू है! तो बस! वकील साहब अलग नाराज हो रहे। फिर तो सब परेशान हुए कि क्या करें।''[9] उपनिवेशवादी युग का सूत्र-वाक्य 'फूट डालो और राज करो' उस समय से अब तक राजनीतिक सत्ता हथियाने का औजार बनकर खड़ा है। धर्म अपने वर्चस्व की स्थापना के लिए राजनीति का प्रयोग कर रहा है और राजनीति अपने वर्चस्व के लिए धर्म का। इस तरह सांप्रदायिकता समसामयिक युग में देश और समाज की एकता, अखण्डता और संस्कृति के लिए एक गहरे खतरे के रूप में उभर कर सामने आयी है। आज यह सांप्रदायिकता समाप्त होने की बजाय राक्षसी सुरसा के मुख के समान प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

धर्म मानव प्राणी की आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियों में सुख-शान्ति की स्थापना करता है जबकि सांप्रदायिकता द्वेष और हिंसा का बीजारोपण करती है। धर्मांधता के वशीभूत वे एक-दूसरे के विरुद्ध भड़काने पर आग उगलना शुरू कर देते हैं। धार्मिक संकीर्णता उन्हें आपसी मेलमिलाप रखने से भी रोकती है। 'रक्षक' कहानी में मदन के पिता मास्टर जी से धार्मिक सांप्रदायिकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– "क्यों याद दिलाते हो बार-बार मास्साब! दो साल पहले यहाँ कितनी जोर का झगड़ा हुआ था। पढ़ा होगा अखबारों में तुमने। रोज हमारे मुहल्ला की दीवारों पर बड़े-बड़े छपे कागज चिपके मिलते कि हिन्दुओं ने हमारी ईद में खून-खराबा किया, अब हम भी खून की होली खेलेंगे।''[10] वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से ज्ञात होता है कि धार्मिक संकीर्णता ने आज अनेकों समस्याओं को जन्म दिया है। उनमें से एक समस्या धार्मिक कट्टरता जो मनुष्य को जाहिल बनाती है। वे जाहिल पवित्र दिनों में खून-खराबा करने से गुरेज नहीं करते। यह सर्वविदित है कि हिन्दू धर्म ही नहीं, इस्लाम भी पाखंड, प्रपंच और षड्यंत्र से भरा हुआ है।

जनसाधारण जीवन को उच्च, सुखद और कल्याणकारी बनाने के लिए धर्म को अपनाते हैं परन्तु जब धर्म पर कट्टरता का रंग चढ़ जाता है। तब उसके नाम पर चहुँ ओर लड़ाई, झगड़े, खून-खराबा और अत्याचार का बोलबाला होता है। यह देखकर विश्वास एवं श्रद्धा को ठेस पहुँचती है। कट्टरपंथी ऐसे मामलों में निभीकता के साथ इसलिए बढ़-चढ़ कर भाग लेता है क्योंकि वह इस बात से पूर्णतः वाकिफ है कि उसके पीछे समाज के उन रसूखदारों का हाथ है जो समाज में राजनीति की दशा एवं दिशा तय करते हैं। 'लेडीज क्लब' उपन्यास में यह साफ दर्शाया गया है कि किस प्रकार रसूखदार विजय भारती की हत्या को रफा-दफा कर यूँ ही निपटा दिया जाता है। राधा इस दृश्य का वर्णन करते हुए कहती है– " 'उसे उसके मोहल्ले के लोगों ने ही पकड़ कर मार डाला था। पता ही नहीं चला उसका। स्कूटर वहीं जाने आलम की फैक्ट्री के पास मिला। हम सब जानते थे कि किन लोगों ने मारा है, कुछ हुआ उसके केस में।' 'मैं चुप थी। क्या बोलूँ।' 'आपको मालूम नहीं, ऊपर कहाँ से हुकुम आते हैं, कहाँ से हथियार। कौन लोगों के हाथों में हाथियार पकड़ाता है, किसका चेहरा दीखता है और किसके हाथ चलते हैं आंटी। सियासत कुत्ती चीज है। यह कुसी पहचानती है सिर्फ! खून लगा है उसके मुँह पर।"[11] मजहबी सांप्रदायिकता की मूल जड़ मानव का धर्म संबंधी अधूरा, गलत और एक तरफा ज्ञान ही है जिसका पूरा-पूरा फायदा धर्म के रसूखदारों द्वारा उठाया जाता है। समाज में बहुलवाद के प्रति संकीर्ण मानसिकता पनपने के कारण सांप्रदायिक हिंसा को जमीन मुहैया होती है।

धार्मिक संकीर्णता में मदांध आदमी आँखों के सामने घटी दुर्घटना को भी किसी और चश्मे से देखता है। 'कर्फ्यू' कहानी में अब्दुल्ला द्वारा शकूर को चाकू घोंपने पर जब वह गश खाकर गिरने लगता है तो पुलिस के आने पर वह जिस दुकान पर चाय पी रहा था, उस दुकान का मालिक झूठ बोलकर अपना पल्ला झाड़ना चाहता है। पुलिस के पूछने पर वह कहता है– " 'शकूर है साहब। रिक्शेवाला। डिग्गी के पीछे रहता है।' 'हद है। दंगा इस इलाके में भी फैल गया।' 'कौन मार गया। हिन्दू था क्या कोई?' सब चुप थे। कोई कुछ भी न बोला। 'पता नहीं साब। हिन्दू ही होगा। मैं और मेरा लड़का तो अन्दर थे।"[12] मानव के स्वार्थ के पीछे उसका स्वयं और परिवार की सुरक्षा की चिंता छुपी होती है। सांप्रदायिकता के छींटे उसके घर-परिवार पर न पड़े, इसलिए वह न तो कट्टरपंथियों के साथ और न ही पुलिसवालों के साथ उलझकर मुसीबत को मोल लेना चाहता है। वह जानता है कि सेब चाकू पर गिरे या फिर चाकू सेब पर गिरे आखिर कटना तो सेब को ही पड़ता है। 'डाल से टूट' कहानी में यूनिवर्सिटी के लड़कों के साथ रेल में बैठने की जगह को लेकर घटी छोटी-सी बात ने धीरे-धीरे सांप्रदायिक दंगे का रूप ले लिया, परन्तु किसी ने उस बात के विरुद्ध बोलने की हिम्मत नहीं की। दो लड़के ट्रेन से घायल अवस्था में ही कूदने में सफल हो गये थे जो छिपते-छिपाते दो दिन में दिल्ली पहुँचे। एक लड़का वहीं भीड़ में अपनी पहचान छिपाये बैठा रहा जिसने बाद में सबको सूचित किया। बाकी तीन लापता थे जिनके बारे में सोचा जा रहा था कि उनकी हत्या करके रास्ते में ही नीचे फेंक दिया गया है। सुकांत की मम्मी का कहना है– "पुलिस और जिलाधिकारियों के साथ यूनीवर्सिटी के अधिकारियों ने उन लड़कों की खोज शुरू की। बीस-पच्चीस किलोमीटर के बीच ही तीनों क्षत-विक्षत अवस्था में मिल गये। दो लड़कों की अभी साँस बाकी थी लेकिन जमील दम तोड़ चुका था।''[13] कश्मीर में सांप्रदायिकता के खौफ से आहत होकर परिजन अपने कलेजे के टुकड़ों को इस आशा के साथ घर से दूर भेजते हैं कि वे इस वातावरण से बच कर अपने जीवन में आगे बढ़ें और अपने सपनों को साकार कर सकें। वे इस बात से वाकिफ नहीं होते कि वहाँ भी वही धार्मिक सांप्रदायिकता उनके बच्चों के जीवन को लील ले लेगी।

निष्कर्ष- भारत को एक बहु धमी देश के रूप में पहचान प्राप्त है। यहाँ धर्म का सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है, किंतु कई बार धार्मिक संकीर्णता धार्मिक एवं सांप्रदायिक तनाव की वजह बन जाती है। शायद ही कोई ऐसा दिन बीतता हो जिस दिन दैनिक अखबार में सांप्रदायिक दंगों से उत्पन्न तनाव एवं हिंसा का समाचार न होता हो। आज देश में पाई जाने वाली सभी समस्याओं में से सांप्रदायिकता की समस्या सबसे प्रमुख है। इसकी रोकथाम के लिए आवश्यक है कि सांप्रदायिक संगठनों की गतिविधियों पर निरन्तर नजर रखी जाए ताकि सांप्रदायिक तनावों का अनुमान लगाया जा सके और उन पर उपयुक्त कार्यवाही की जा सके।

संदर्भ संकेत

1. धर्मपाल कपूर, प्रसाद-साहित्य में अतीत चिंतन, वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में, निर्मल पब्लिकेशंस, हरियाणा, पृ. 54
2. निर्मल वर्मा, आदि, अन्त और आरम्भ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 88
3. विद्यानिवास मिश्र, साहित्य के सरोकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 20
4. जी. के. अग्रवाल, सामाजिक विघटन, एस.वी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा, पृ. 205,   5. वही
6. अरुणा पाठक, युगबोध के संदर्भ में 'उग्र' के उपन्यासों का अध्ययन, पृ. 118
7. नमिता सिंह, उत्सव के रंग, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, पृ. 170
8. नमिता सिंह, कर्फ्यू तथा अन्य कहानियां, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 21
9. नमिता सिंह, हां! मैंने कहा, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 120
10. नमिता सिंह, राजा का चौक, धरती प्रकाशन, बीकानेर, पृ. 98
11. नमिता सिंह, लेडीज़ क्लब, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 168
12. नमिता सिंह, कर्फ्यू तथा अन्य कहानियाँ, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 22
13. नमिता सिंह, उत्सव के रंग, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, पृ. 174

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

चित्रकला के क्षेत्र में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका - एक परिचय

सरिता भांभू
(शोधकर्त्री)
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर

डॉ. सोनिया रानी
(शोध निर्देशिका)
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर

भूमिका

चित्रकला के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी की भूमिका बहुत व्यापक है तथा यह एक अत्यन्त जटिल विषय भी है। हमें ज्ञात है कि चित्रकला एक मनोदैहिक (Psycho-Physical) प्रक्रिया है अर्थात् इसमें मानसिक चिन्तन तथा दैहिक श्रम एवं कौशल दोनों की भागीदारी है। मानसिक प्रक्रिया पूर्ण रूप से अमूर्त है, इसे अन्य के लिये सम्प्रेषणीय बनाने में जिस दैहिक परिश्रम-जन्य रचना कौशल का उपयोग होता है वह मूर्त तथा यर्थाथ है। चित्ररचना के इसी मूर्त स्तर पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपयोग की आवश्यकता होती है। शोधकार्य को अधिक वस्तुपरक बनाने के लिए कुछ चित्रों का विश्लेषण किया गया है। यह विश्लेषण चित्रों के माध्यम से चित्रकला के क्षेत्र में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के व्यावहारिक प्रयोग को स्पष्ट करेगा। चर्चा हेतु चयनित सभी चित्र विश्व प्रसिद्ध हैं एवं उनमें विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग सुस्पष्ट है। इन में कोई भी चित्र वितर्कित नहीं है। यहां यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि विश्व में विभिन्न स्थानों तथा कालों में बनाये गये ऐस चित्रों की संख्या बहुत अधिक है। स्थानाभाव के कारण यहां उन सभी पर विचार करना सम्भव नहीं है।

चित्रकला के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर विचार करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि चित्रकला के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी के प्रयोग में 1970 के दशक के बाद कुछ मूलभूत परिवर्तन हुआ है अतः चित्ररचना में प्रौद्योगिकी के प्रयोग को निम्नलिखित दो भागों में बांट कर विचार करना उचित होगा—

(क) प्राक्-कम्प्यूटरयुगीन चित्रकला

(ख) कम्प्यूटरयुगीन चित्रकला

(क) प्राक्-कम्प्यूटरयुगीन चित्रकला के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी की भूमिका

विभिन्न चित्र विश्लेषण-

विश्रामरत बाईसन

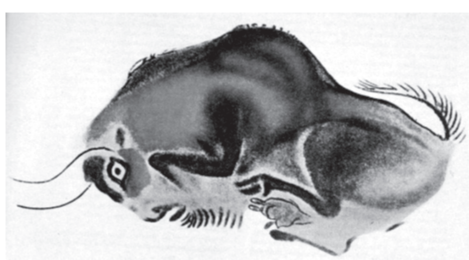

चित्रकला से सम्बधित कोई भी विचार गुफा चित्रों की चर्चा के बिना अधूरा है। इसके दो कारण है पहला इन चित्रों की प्राचीनता जो अनुमानतः 30000 ई.पू. से 5000 ई.पू. तक है दूसरा इन चित्रों में बनाई गई आकृतियों का नियमबद्ध परिमाप, यथार्थपूर्णता तथा जीवंतता। इन विशेषताओं के प्रमाण स्वरूप यहां दिये गये विश्रामरत बाइसन के चित्र को देखकर 20वीं शताब्दी के महान चित्रकार पाब्लो पिकासो ने बाइसन कि आकृति को 'फोटो रियलिज्म' का अन्यतम श्रेष्ठ उदाहरण कहा था।

सेडनेस ऑफ दि किंग (dness of the King)
चित्रकार- हेनरी मातिस (Heneri Mattise, 1869-1954)
माध्यम- पेपर कोलाज

कलाकार रंगों से किस प्रकार अपने मनोभाव व्यक्त कर सकता है इसका उज्ज्वल दृष्टान्त मातिस के कुछ प्रसिद्ध पेपर कोलाज हैं। उक्त कोलाज भी इस दृष्टि से गणना के योग्य है। मातिस पहले कागज में अपनी आवश्यकतानुसार रंग भरते थे तथा बाद में उसे इच्छानुसार आकृति में काट लेते थे। मातिस ने कहा था "Designing with scissors, cutting out the original colour, reminded me of the direct sketch of the greatest sculptures" (कैंची से डिजाइन बनाने के लिए मूल रंग को काटना मुझे महान मूर्तिकारों द्वारा बनाये गये रेखांकन की याद दिलाता है)।

तूफान में पेड़ (Tree in Storm)
चित्रकार- E-David

वर्तमान समय में e-Aron, e-Dulcenia, esanam आदि अनेक रोबोट चित्रकारों ने चित्र बनाये हैं। 'ट्री इन स्टार्म' इसी तरह का एक चित्र है।

दूर तक फैले क्षेत्र में एक अकेला पेड़ तूफान में खड़ा है। पेड़ की आकृति की स्थिति तथा वक्रता हवा की गति तथा प्रचंडता को सूचित कर रही है। शून्य वातावरण में हवा की प्रचंड गति का आभास दर्शक के मन में गति का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यथेष्ट है। अंतराल का समुचित विभाजन शून्य तथा एकाकीपन को प्रभावशाली बनाने में सफल हुए है। इस चित्र के अलग-अलग भागों का कोई महत्व नहीं है अपितु इनका समग्र प्रभाव एक उच्चस्तरीय भाव-व्यंजक चित्र के रुप में सामने आता है। पेड़ की प्रतिछाया तथा भूमि पर फैला तृणाच्छादन चित्रतल पर त्रि-आयामी आभास देता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि E-David ने डिजिटल पेन्टिंग के समान प्रकाश की तरंग दैर्घ्य (वेव लेन्थ) के रंगों का व्यवहार नहीं किया है तथा आधार एवं उपकरण के रुप में डिजिटल कैनवास या इलेक्ट्रानिक तूलिका भी प्रयुक्त नहीं हुए हैं। यहां E-David ने एक सामान्य मानव चित्रकार के समान परम्परागत रंगद्रव्य से बने रंग से कैनवास पर यह चित्र बनाया है तथा चित्र बनाते समय होने वाली त्रुटि मिटाकर आकृति में सुधार किया है। यह एक अति उत्कृष्ट प्रकृति-चित्र है।

इस चित्र की परिकल्पना, संयोजन, वर्णक्रम तथा तूलिकाघात उल्लेखनीय हैं। यह सही है कि वर्तमान में चित्र बनाने

के लिए रोबोट की प्रोग्रामिंग की जाती है तथा उसके स्मृति कोष (मेमोरी) में हजारों चित्रों का विवरण संचित करना पड़ता है किन्तु यह भी ध्यान देना चाहिए कि मानव चित्रकार भी कुछ इसी तरह कला शिक्षा ग्रहण करता है। वह भी अपनी स्मृति में अनेकों चित्र विवरण संचित रखता है।

इसका रोबोट चित्रकार से इतना ही पार्थक्य है कि मानव चित्रकार चित्रण विषय अपने आप तय करता है। आगामी समय में जब कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) तथा कृत्रिम रचनाशीलता (Artificial Creativity) पर व्यापक शोधकार्य होगा तब यंत्र मानव भी स्वयं विषय का चयन कर सकेगा तथा इच्छानुसार चित्रांकन कर पायेगा।

ई-डेविड के निर्माण तथा इसके द्वारा बनाये गये चित्रों ने आज चित्रकला जगत में तात्विक तथा प्रायोगिक क्षेत्र में व्यापक हलचल उत्पन्न कर दी है विशेषज्ञ चित्रकला की परिभाषा पर पुनः नये सिरे से चिंतन मनन करने की आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं। यहां किसी वितर्क में न जाकर निश्चित रुप से इतना कह सकते हैं कि ई-डेविड द्वारा निर्मित - 'ट्री इन स्ट्रार्म' एक अत्यंत सुन्दर, अभिव्यंजनापूर्ण तथा विशिष्ट चित्र है।

पेनडोरा (Pandora)

चित्रकार- मार्था डाहेलिंग (Mart Dahling)

पोलिश चित्रकार मार्था डाहेलिंग का डिजिटल चित्र 'पेन्डोरा' डिजिटल चित्रकला जगत का एक अति चर्चित चित्र है। चित्र का विषय प्रसिद्ध यूनानी कथा 'पेन्डोराज बॉक्स' से लिया गया है। इस चित्र में विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा चित्रकला का अनूठा समन्वय देखा जा सकता है।

चित्र में बॉक्स के साथ पैन्डोरा है। पैन्डोरा ने पूरा बॉक्स अभी नहीं खोला है, खोलने जा रही है। चेहरे में फैले कौतूहल तथा अर्तद्वन्द्व के भावों ने चित्र में एक विस्मयजनक रहस्यमय भाव की सृष्टि की है जो इस प्रस्तुति को एक सार्थक चित्र में परिणत कर देती है।

यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि डिजिटल चित्र होने के कारण इस चित्र के रंग परम्परागत रंगद्रव्य से नहीं बने हैं। ये विद्युत तरंग से बनाया गये रंग हैं। इन रंगों के द्वारा भावमूलक चित्र बनाना अत्यंत कठिन कार्य है किन्तु अत्यंत दक्षता के साथ छोटे-छोटे भागों पर रंग लगाया गया है।

प्रसंगतः उल्लेखनीय है कि यहां चित्रकार ने किसी प्रतीक या अलंकरण द्वारा चित्रित कहानी को स्पष्ट नहीं किया है। इस चित्र में पेन्डोरा की आकृति संरचना में ग्रीक देह-सौष्ठव नहीं है तथा कक्ष में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं बनाई है जिसे प्राचीन यूनानी सभ्यता-संस्कृति से जोड़ा सके अर्थात् इस चित्र की पैन्डोरा किसी विशेष देश-काल परिस्थिति से बंधी नहीं है।

चित्र की एक अन्य विशेषता इसमें टेक्नोलॉजी का प्रयोग है। स्त्री आकृति की त्वचा के रंग तथा बालों की रचना में इसकी विशेष भूमिका है। यहां क्षुद्राकार सपाट ब्रश के साथ कोमल गोलाकार राउन्ड ई-ब्रश का प्रयोग है। यह कठिन प्रयोग इस चित्र की टेक्नोलॉजीकल विशेषता है।

इन सभी चित्रों के विश्लेषण से यह सुनिश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि चित्र निर्माण के क्षेत्र में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की अति विशिष्ट तथा र्निविवाद भूमिका है। सभ्यता के उषाकाल से मानव ने चित्र निर्माण की शुरुआत की थी तभी से रचनाकार्य में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का सहयोग सदैव बना रहा। सभ्यता के विकासक्रम में क्रमशः चित्र निर्माण में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उच्च कौशल का प्रयोग होने लगा। आज इक्कीसवीं सदी के प्रथमार्ध में मानव प्रशिक्षित रोबोट चित्रकार चित्रों का निर्माण करने लगा है। अनेक विशेषज्ञों के विचार से वर्तमान में मानव चित्रकार तथा चित्र निर्माण एक अति संकटमय परिस्थिति से गुजर रहे हैं। यद्यपि आज रोबोट या यंत्रमानव को चित्र बनाने के लिए मानव प्रशिक्षण दे रहा है तथा इस कार्य के प्रत्येक स्तर में उसकी सहायता करता है किन्तु भविष्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का और अधिक विकास होने

के बाद जब यंत्रमानव ही यंत्रमानव को प्रशिक्षण देने योग्य हो जायेगा तथा मानव की तुलना में अधिक कुशलतापूर्वक सहायता करेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर्नल्ड हाउजर (2001), कला का इतिहास दर्शन, गोपाल प्रधान, (अनु0-2001) ग्रंथ शिल्पी, न्यू दिल्ली, पृष्ठ 30.
2. आर. जी. कलिंगवुड (1937), ब्रजभूषण पालीवाल, (अनु0), राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर,1972 प्रस्तावना-पृष्ठ ज, झ।
3. इरविन पेनोफ्स्की (1960), रेनेसां एण्ड रेनेसेसेंज इन वेर्स्टन आर्ट, स्टॉकहोम, पृष्ठ 2-3.
4. एस. क्रिस्टोफर, साउथ अफ्रीकन ब्लॉमबॉस केव, हंशिलवुड (2011), ए 100,000 इयर ओकर-प्रोसेसिंग वर्कशॉप एट ब्लॉमबॉस केव, साउथ अफ्रीका, साइन्स वॉल्यूम 334, पृष्ठ 219-222.
5. नीहारजंन राय (1978), भारतीय कला का अध्ययन, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, न्यू दिल्ली, पृष्ठ 29-30.
6. हर्बर्ट रीड (1969), आर्ट एण्ड सोसाइटी फ्रॉम दि आर्टस् एण्ड मैन, यूनेस्को, पब्लिशड बाइ एंगलवुड क्लिफ्स, एन. जे प्रेक्टिस हॉल इंक, पेरिस, 1969, पृष्ठ 27.
7. हेरोल्ड ऑसबोर्न (1970), दि आक्सफोर्ड कम्पेनियन टु आर्ट, (सम्पादक), आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ग्रेट ब्रिटेन, पृष्ठ-77.
8. जॉन हनावे (2005), एन्साइक्लोपीडिया ऑफ नाइन्टीथ सेन्चुरी फोटोग्राफी, रोटलुज पब्लिकेशन, न्यूयार्क, पृष्ठ 1736.
9. दानी केवेलाश, आर्ट फार बिगिनर्स, ओरिएन्ट लागमेन, 2004, पृष्ठ 133
10. दि आक्सफोर्ड कम्पेनियन टु आर्ट(सम्पादन) हेराल्ड ऑसबर्न, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1975, पृष्ठ 10-11 35. वही, पृष्ठ 331-332
11. दि ग्रेट आर्टिस्टस, पार्ट-34 उस्सेल्लो, मार्शल कैवेन्डिश वीकली कलेक्शन, लन्दन, पृष्ठ 1064-1065
12. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल (1968), भारतीय स्थापत्य हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, पृष्ठ 581
13. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, भारतीय स्थापत्य हिन्दी समिति, पृष्ठ 552-553
14. नीहारजंन राय (1978), भारतीय कला का अध्ययन, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, न्यू दिल्ली, पृष्ठ 29-30.
15. प्लेटोज रिपब्लिक बुक ग्ए 602d, en.wikipedia.org èwiki èPerspective _(graphical)
16. पॉल सिग्नाकः फ्राम यूजीन डेलाक्रा टू नियोइम्प्रेशनिज्म (अनुवाद) पी. एम. एडम, बेल पब्लिकेशन, न्यूयार्क, 1826, पृष्ठ 228-229
17. पूर्णिमा पाण्डे, कला के मूलतत्व और सिद्धान्त, इन्दु प्रकाशन, अलीगढ़, 1986, पृष्ठ 39.
18. ब्रज कुमार मिश्र, मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन, पृष्ठ 251.
19. बद्रीनाथ मालवीय, श्री विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला, इण्डिया प्रैस, प्रयाग, 1960, परिशिष्ट पृष्ठ 1-5
20. लियोनार्डो द विंची (1952), नोटबुक्स (सिलेकटेड) इरमा ए.रिक्टर, ऑक्सफोर्ड युनि. प्रेस,1952, पृष्ठ 162

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

The Use of Technology in Modern Criminal Investigations in India

Hema Shrivastava
Assistant Professor
Sarvdharam Vidhi Mahavidyalaya, Gwalior

Abstract

Technology has emerged as a transformative force in criminal investigations in India, equipping law enforcement agencies with tools to address crimes that are increasingly sophisticated and digital. From DNA profiling and Aadhaar-based biometric systems to digital forensics and AI, advancements in technology have significantly enhanced investigative efficiency. However, they also present challenges such as privacy concerns, misuse of data, and the digital divide. This paper critically examines the integration of technology into Indian criminal investigations, emphasizing tools like forensic science, surveillance technologies, and predictive policing. It also analyzes key legal precedents, including Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India (2017), and offers recommendations for ethical and balanced use of technology in India's justice system.

1. Introduction

Criminal investigation practices in India have undergone significant evolution, driven by advancements in technology and the growing complexity of crimes. Traditional investigation techniques, while still relevant, often fail to address modern challenges such as cybercrime, financial fraud, and organized terrorism. Technology bridges this gap, enabling law enforcement to collect, process, and analyze evidence with unprecedented precision and speed.

This paper explores the role of technology in modern criminal investigations within the Indian context. It delves into tools such as forensic science, digital forensics, surveillance systems, and artificial intelligence while addressing the legal and ethical challenges surrounding their use. The paper also evaluates landmark legal cases that shape the balance between technological innovation and fundamental rights in a democratic society.

2. Technological Tools in Criminal Investigations in India

2.1 Forensic Science

Forensic science is one of the most reliable pillars of criminal investigation, contributing significantly to solving complex cases.

DNA Profiling

DNA profiling has revolutionized evidence collection and analysis in India. Forensic DNA

technology is especially valuable in cases of sexual assault, murder, and paternity disputes.

- **Infrastructure:**

The establishment of the Centre for DNA Fingerprinting and Diagnostics (CDFD) and advanced forensic labs in states like Maharashtra and Delhi has enhanced India's capacity for DNA analysis.

- **Legislation:**

The DNA Technology (Use and Application) Regulation Bill, 2019, is expected to regulate the collection, use, and storage of DNA data, ensuring safeguards against misuse.

- **Case Example:**

In the infamous Aarushi Talwar case, DNA evidence played a critical role in analyzing the crime scene, though the eventual lack of conclusive evidence highlighted gaps in forensic processes.

Toxicology and Ballistics

Toxicological analysis aids in investigating poisoning cases, while advancements in ballistics technology allow precise tracing of firearms used in crimes.

2.2 Digital Forensics

Digital forensics addresses crimes involving digital devices, including cybercrime, identity theft, and financial fraud.

- **Cybercrime Units:**

The Indian Cyber Crime Coordination Centre (I4C) provides nationwide support for cyber investigations, offering technical expertise and training to local law enforcement.

- **Key Tools:**

Devices like Cellebrite assist in decrypting smartphones, while social media platforms provide digital footprints critical in criminal investigations.

- **Case Example:**

The Nirbhaya case (2012) leveraged digital forensics to reconstruct communication records and events leading up to the crime.

2.3 Aadhaar and Biometric Systems

Aadhaar, India's biometric-based unique identification system, is a critical tool for identity verification in criminal investigations.

- **Advantages:**

The system's extensive database aids in identifying suspects, verifying identities, and tracking fugitives.

- **Challenges:**

Concerns over misuse of Aadhaar data have been highlighted in cases where privacy was compromised.

- **Legal Impact:**

The Supreme Court ruling in Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India (2017) restricted the use of Aadhaar data in investigations, emphasizing privacy rights.

2.4 Surveillance Technologies

Surveillance technologies are widely used for real-time monitoring and crime prevention.

- **CCTV Networks:**

Urban surveillance projects like the Safe City initiative deploy extensive CCTV networks to monitor public spaces.

• **Drones and Project NETRA:**

Drones provide aerial surveillance during protests or large gatherings, while NETRA, developed by DRDO, monitors internet activity for threats to national security.

• **Case Example:**

The Delhi Police used surveillance footage extensively during the 2020 Delhi riots investigation to identify suspects and reconstruct events.

2.5 Artificial Intelligence and Big Data

AI and big data analytics play an increasingly significant role in crime prediction and resource allocation.

• **Predictive Policing:**

Cities like Hyderabad and Delhi use AI-driven systems to predict crime hotspots, helping optimize police deployment.

• **Data Integration:**

Big data systems analyze patterns from diverse sources, such as criminal databases and social media, to identify connections between suspects.

3. Case Laws and Precedents in India

3.1 Supreme Court Judgments

1. Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India (2017)

• **Impact on Aadhaar and Privacy:**

This landmark case established the right to privacy as a fundamental right under Article 21 of the Constitution. The judgment directly impacted the use of Aadhaar in criminal investigations, restricting its use unless backed by law or judicial oversight.

• **Relevance to Technology in Investigations:**

Law enforcement agencies must ensure that the use of Aadhaar data in investigations respects privacy rights and avoids arbitrary surveillance.

2. Selvi v. State of Karnataka (2010)

• **Narco-Analysis and Brain Mapping:**

The Supreme Court ruled that compulsory use of narco-analysis, polygraph, and brain-mapping techniques violates Article 20(3) of the Constitution, which guarantees the right against self-incrimination.

• **Significance:**

The judgment sets boundaries on using advanced investigative technologies that may compromise the accused's rights.

3. Shreya Singhal v. Union of India (2015)

• **Digital Evidence and Free Speech:**

This case dealt with the constitutionality of Section 66A of the Information Technology Act, which criminalized offensive online content. The Supreme Court struck down the section as unconstitutional.

• **Relevance:**

It reinforced the admissibility of digital evidence while ensuring that law enforcement does not misuse technology to suppress freedom of speech.

4. Anvar P.V. v. P.K. Basheer (2014)

- **Admissibility of Digital Evidence:**

The Supreme Court held that electronic evidence must be accompanied by a certificate under Section 65B of the Indian Evidence Act to be admissible in court.

- **Significance:**

This case emphasized the proper collection, preservation, and authentication of digital evidence, a cornerstone of modern investigations.

3.2 High Court and Trial Court Cases

5. Arup Bhuyan v. State of Assam (2011)

- **Surveillance and Evidence Collection:**

The Supreme Court ruled that mere membership in a banned organization, proven through surveillance or other means, does not constitute a crime unless accompanied by evidence of active participation.

- **Impact:**

This case underscores the need for law enforcement to rely on robust evidence obtained through technology rather than presumptions.

6. Nirbhaya Case (2012)

- **Digital Evidence in Investigation:**

Digital forensics played a critical role in this high-profile case, where mobile tower records and CCTV footage were used to trace the accused and reconstruct the events.

- **Outcome:**

The case highlighted the importance of using technology for accurate and timely evidence collection in heinous crimes.

7. State of Maharashtra v. Dr. Praful B. Desai (2003)

- **Video Conferencing in Legal Proceedings:**

The Supreme Court held that recording witness statements through video conferencing is permissible and does not violate the principles of natural justice.

- **Relevance:**

This judgment paved the way for adopting technology in criminal trials, especially during remote investigations or cross-border cases.

3.3 Cybercrime-Specific Cases

8. Sony Sambandh Case (2004)

- **First Cyber Defamation Case in India:**

A defamatory email sent from a cybercafé was investigated, marking one of the first applications of the IT Act, 2000, in India. The cybercafé owner was fined, highlighting the role of IP tracing and digital evidence in cybercrime investigations.

9. State of Tamil Nadu v. Suhas Katti (2004)

- **First Conviction under the IT Act, 2000:**

This case involved the harassment of a woman through obscene emails and messages. Law enforcement used digital forensics to trace the IP address and convict the accused.

- **Significance:**

It demonstrated the efficacy of digital forensics in securing convictions in cyberstalking cases.

10. Ritesh Sinha v. State of Uttar Pradesh (2019)

- **Compelling Voice Samples:**

The Supreme Court ruled that police could compel an accused to provide voice samples during investigations.

- **Relevance:**

This judgment clarified the legal permissibility of using voice recognition technology as evidence in criminal cases.

3.2 Cybercrime Legislation

The Information Technology (IT) Act, 2000, provides the legal framework for investigating cybercrimes. Amendments to the Indian Evidence Act recognize digital evidence as admissible in court.

4. Advantages of Technology in Indian Investigations

- **Improved Case Resolution:**

DNA evidence and digital forensics have helped resolve long-pending cases, including cold cases.

- **Increased Surveillance Capabilities:**

Technologies like AI-driven surveillance systems assist in identifying suspects in crowded spaces.

- **Data-Driven Insights:**

Predictive policing and big data analytics offer valuable insights into crime trends and resource planning.

5. Challenges and Limitations in India

- **Privacy Concerns:**

The widespread use of surveillance technologies risks violating individual privacy, particularly in the absence of stringent data protection laws.

- **Digital Divide:**

Rural areas lack the technological infrastructure necessary for effective criminal investigations.

- **Cybersecurity Risks:**

Government systems are vulnerable to hacking, potentially compromising sensitive investigation data.

6. Future Trends and Recommendations

6.1 Strengthening Legal Frameworks

India must expedite the passage of the Personal Data Protection Bill, 2019, to regulate data collection, storage, and use while protecting individual rights.

6.2 Capacity Building

- **Training Programs:**

Law enforcement agencies require specialized training in digital forensics, cybersecurity, and AI tools.

- **Infrastructure Development:**

Investing in technological infrastructure across rural and urban areas is critical for equitable enforcement.

6.3 Ethical Use of Technology

An AI ethics framework is essential to ensure fairness, accountability, and transparency in law enforcement applications.

Conclusion

The integration of technology into Indian criminal investigations offers immense potential to improve case resolution, prevent crimes, and ensure justice. However, it must be balanced with privacy protections and ethical considerations. Strengthening legal frameworks, investing in capacity building, and fostering transparency are essential for harnessing technology in a manner that aligns with India's democratic principles.

References

- Indian Penal Code, 1860.

- Criminal Procedure Code, 1973.

- Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India (2017).

- Selvi v. State of Karnataka (2010).

- Centre for DNA Fingerprinting and Diagnostics (CDFD).

- National Crime Records Bureau (NCRB).

- Personal Data Protection Bill, 2019.

- Journal of Indian Law and Society, "Forensic Science in Indian Criminal Investigations."

- Ministry of Home Affairs, Safe City Initiative Reports.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

‘मुझे पहचानो’ : नारी अस्तित्व की संघर्ष गाथा

डॉ. उमा मेहता
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
गुजरात आर्ट्‌स एण्ड सायन्स कॉलेज,
एलिसब्रिज, अहमदाबाद-380006, गुजरात
Email : umhindi13@gmail.com
मो. नं. 9429647368

सार- साहित्य अकादमी से पुरस्कृत संजीव कृत मुझे पहचानो उपन्यास की कथा का मूल स्रोत राजा राम मोहनराय की भाभी अलोक मंजरी की सती होने की क्रूर और अमानवीय घटना हैं। उपन्यास की मूल समस्या सती प्रथा के विरुद्ध सावित्री कुँवर का अपने अस्तित्व को बचाने के लिए तीव्र संघर्ष परिलक्षित होता हैं। आत्मकथात्म शैली में लिखे गए इस उपन्यास में सूक्तियों के प्रयोग के द्वारा समाज को सही दिशा दिखाने का प्रयास किया गया हैं। अंधश्रद्धा, रीति-रिवाज और परंपरा के नाम पर आज भी हमारे समाज में स्त्री का शारीरिक और मानसिक शोषण हो रहा हैं। इस आलेख का उद्देश्य स्त्री की स्वतंत्रता, उसके हक और अधिकार, उसके अस्तित्व को स्वीकार कर समाज को जागृत करने का हैं। ताकि इस उपन्यास की सावित्री कुँवर की भाँति कोई स्त्री उच्च शिक्षा से वंचित रह कर किसी कुप्रथा का भोग न बने और उसके अस्तित्व का भी सम्मान करना समाज सीखें।

बीज शब्द : महाप्रयाण, पंचकन्या, कलश, अवगाहन, त्रिशूल, वास्तु शिल्प, अस्तित्व।

संजीव कृत ‘मुझे पहचानो’ उपन्यास को साहित्य अकादेमी पुरस्कार 2023 से सम्मानित किया गया हैं। संजीव ने पश्चिम बंगाल में रासायनिक प्रयोगशाला में काम करते हुए अविरत साहित्य साधना की हैं। उन्होंने सामाजिक समस्याओं को केन्द्र में रख कर उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना इत्यादि विधाओं का सृजन कर भारतीय समाज की कुप्रथाओं पर प्रहार किया हैं। संजीव ने ‘धार’, ‘किसनगढ़ के अहेरी’, ‘सर्कस’, ‘सावधान! नीचे आग हैं’, ‘पाँव तले की दूब’, ‘जंगल जहाँ शुरू होता हैं’, ‘सूत्रधार’ और ‘मुझे पहचानो’ इत्यादि उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को अपने उदात्त विचारों के माध्यम से अभिव्यक्त किया हैं।

संजीव कृत ‘मुझे पहचानो’ उपन्यास का केन्द्रीय चरित्र सावित्री कुँवर हैं। सावित्री कुँवर के बहाने इस उपन्यास में भारत की हर उन स्त्रियों को याद किया गया हैं, जिन्हें सती प्रथा जैसी बर्बर और पाशविक त्रासदी से गुजरना पड़ा हैं। यह उपन्यास न मात्र सावित्री कुँवर की कथा कहता हैं, बल्कि हर उस औरत की आवाज़ को जनता के कानों तक पहुँचाने का प्रयास करता हैं, जिन्होंने अपनी इच्छाओं, खुशियों और जीवन को चिता की आग की लपटों के हवाले किया हैं कभी चाहते हुए तो कभी न चाहते हुए! उनके दर्द की पुकार को सुनने वाला इस समाज में कोई नहीं हैं। सती प्रथा को केन्द्र में रख कर लेखक ने पाठकों को विचार के महासागर में अवगाहन करने के लिए प्रेरित किया हैं कि तनिक सोचो...पति से हटकर क्या पत्नी का अपना कोई वजूद या अस्तित्व नहीं हैं? जो पति का जीवन खत्म होने पर पत्नी को भी अपना जीवन खत्म करने के लिए मजबूर कर दिया जाता हैं। यह कैसी परंपरा हैं कि पति की मृत्यु पर पत्नी को चिता की आग की लपटों के

हवाले कर दिया जाए। अगर पति के स्थान पर पत्नी की मृत्यु होती हैं, तो पति सती नहीं होता, बल्कि वह तो दूसरा ब्याह रचाता हैं। समाज के द्वारा उसे जबरदस्ती सती होने के लिए मजबूर नहीं किया जाता! यहाँ भारतीय समाज व्यवस्था में रीति-रिवाज के नाम पर दोहरी नीति के दर्शन होते हैं। भारतीय समाज में जितने भी रीति-रिवाज या परंपराएँ हैं, वह स्त्री को लेकर हैं, पुरुष को कोई बंधन नहीं हैं। स्त्री को जबरदस्ती जिंदा जलाना हमारे समाज की क्रूरता और पाशविकता ही हैं।

गाँव के सभी लोग मिल कर तय करते हैं कि सती मंदिर बनाने के लिए सभी नई- पुरानी सतियों की भूमि की मिट्टी, भारत की पंचकन्याओं की पीठ की मिट्टी, सभी पवित्र नदियों, कुंडों का, सभी तीर्थों की मिट्टी और पाँच दुनिया की तमाम सुंदर बिल्डिंगों वास्तुशिल्प का मॉडल चढ़ाना होगा। "मंदिर का कलश इतना ऊँचा हो कि उस ऊँचाई को व्यक्त करें, जिस ऊँचाई तक सती के महाप्रयाण के समय लौ को उठते हुए लोगों ने देखा था।"[1]

सती मंदिर के लिए दान देने के लिए प्रचार तो करना होगा कि यह एक ऐसा अकेला पीठ हैं, जहाँ से सती को साक्षात स्वर्ग जाते हुए देखा हैं। इस गाँव के सभी लोगों का यह दावा हैं कि उन्होंने सती को स्वयं अपनी आँखों से स्वर्ग जाते हुए देखा हैं। धर्मसभा ने सती मंदिर के महत्व को प्रस्थापित करने के लिए घटनाओं का मंचन करने का इरादा किया। इनमें से एक हैं, 1930 की कानपुर के धनाढ्य सेठ की पत्नी की सती होने की घटना और दूसरी राजा राममोहन राय की भाभी अलोक मंजरी के सती होने की घटना! कानपुर के सेठ की मृत्यु होने पर गंगा के तट पर सेठ की सजाई गई चिता को स्वयं सेठानी ने अपने हाथों से आग लगाई और पति के शव को अपनी गोद में लेकर चिता पर बैठ गई। तभी "आँच से झुलस कर पति को ठेल कर भाग खड़ी हुई।"[2] मजिस्ट्रेट साहब ने एक सिपाही को निगरानी के लिए रखा था, ताकि सेठानी पर सती होने के लिए कोई जबरदस्ती न करें। मगर जब सेठानी आग से भागी तो परंपरा के बंधनों में बंधा सिपाही अपना काम भूल कर सेठानी को बचाने के स्थान पर फिर से चिता की आग के हवाले कर दिया। धधकती चिता की आग में वह फिर से झुलसने लगी तो भाग कर वह गंगा में कूद पड़ी। लोगों की निगाहों में सेठानी का यह कृत्य अधार्मिक था। उन्होंने फिर उसे पानी से बाहर निकाल कर आग के हवाले किया। किन्तु उन्हें सती करना संभव न हो पाया। मजिस्ट्रेट साहब ने उसे बचाकर अस्पताल पहुँचाया और सिपाही को कैद कर लिया। इस तरह विधवा स्त्री परंपरा के नाम पर कभी लोगों के कहने पर या कभी- कभी स्वयं अपनी इच्छा से पति की मृत्यु पर सती होना चाहती हैं। किन्तु आग की लपटें जब उनके शरीर को झुलसाने लगती हैं, तब यथार्थ सामने आता हैं। सती होने के लिए तैयार हुई स्त्री आग की लपटों से भाग खड़ी होती हैं। तब उसके निर्णय को मान देने के स्थान पर समाज के निर्दयी ठेकेदार उसे पकड़ कर फिर से चिता की आग में डाल देते हैं।

आखिरकार कब जाकर रुकेगी स्त्रियों की यह शारीरिक और मानसिक यंत्रणाएँ...! लेखक ने इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए भँवरी देवी का उदाहरण भी उपन्यास में दिया हैं कि किस तरह वह आगे बढ़ रही थी। किन्तु समाज के लोगों से उसकी प्रगति देखी न गई और फिर उसके साथ जो व्यवहार हुआ, उसे कभी भी अनदेखा नहीं किया जा सकता।

सावित्री कुँअर जब छोटी थी, तब स्कूल में सेकंड़ डिवीजन से पास हुई थी और उसके पिता उसे इलाहाबाद भेज कर आगे पढ़ाना चाहते थे। वह खुद भी पढ़-लिखकर आगे बढ़ना चाहती थी। स्कूल के फंक्शन में वह भारत माता बन कर त्रिशूल लेकर डांस कर रही थी। जो भी उस पर कुदृष्टि डाले उसका उसे त्रिशूल से संहार करना था। किन्तु सबसे बड़ी त्रासदी यहाँ यह आती हैं कि, त्रिशूल हाथ में लेकर भारत माता बन कर कुदृष्टि करने वाले का संहार करने का अभिनय करने वाली लड़की स्वयं कुदृष्टि का भोग बन कर जीवन के अंधकार में गर्त कर जाती हैं। नृत्य के बाद वह उसी वेश में राजा उदय प्रताप सिंह को प्रणाम करने गई। उनके छोटे बेटे कुँवर के भी उसने पाँव छुँए। छोटे कुँवर सावित्री को देख कर उस पर न्योछावर हो गए और जिद पकड़ ली कि हमें यही लड़की चाहिए। सावित्री के पिता ने मना किया कि अभी तो यह बहुत छोटी हैं, बच्ची हैं। राजा उदय प्रताप सिंह भी बेटे की जीद के आगे हार गए। उन्होंने सावित्री कुँअर के पिता से कहा कि ''कन्या रत्न हैं, ब्याह तो कहीं न कहीं करना ही पड़ेगा आपको। बाकी जहाँ तक पढ़ाने का सवाल हैं, तो हम पढ़ाएँगे आगे की पढ़ाई, क्या?''[3]

इस बात पर बहुत बहस हुई, बंदूकें निकाली गई। अंततः त्रिशूल उठाने वाली भारत माता अर्थात् सावित्री ने छोटे कुँवर को वर माला पहना दी। पढ़ाई-लिखाई का वादा करने वाले कुँवर ने सावित्री को पढ़ाने के लिए कहीं भी प्रवेश नहीं दिलवाया।

सिर्फ सावित्री पर अपनी काम-वासना की भूख दिन-रात उतारता रहा। एक पढ़ने-लिखने वाली लड़की भोग-विलास का, कुँवर की अय्यासी का साधन मात्र बन कर रह गई। वह स्वयं बताती हैं कि ''जैसे भूखा कुत्ता भभोड़ता हैं, उसी तरह भंभोड़ता रहा हमें...भारत माता का बलात्कार...बदन उघार दूँ तो आज भी जगह-जगह नोंचने-काटने के दाग-गाल पर ए यहाँ, जाँघ पर, ए यहाँ, सीने पर यहाँ!''[4] इस तरह वह बार-बार शारीरिक यातनाएँ भोगते-भोगते गर्भवती हो गई। उदय प्रताप सिंह की हार्ट अटैक से मृत्यु हो गई। बाद में उनके बेटे छोटे कुँवर को गोली लग गई और उनकी मृत्यु हो गई। सावित्री कुँवर विधवा हो गई। सावित्री को सजाया गया, सती होने के लिए। जब उसने आश्चर्य वश पूछा कि, यह सब क्या हो रहा हैं? तब अन्य स्त्रियों के द्वारा कहा गया कि, औरत की जिंदगी में ऐसे अवसर बहुत ही कम आते हैं, जैसा अभी आया हैं! उस वक्त वह गर्भवती थी। कुछ आशंका होने पर उसने भागने का प्रयास किया तो ''उसे पकड़ कर कुछ पिलाया गया। कुछ मुँह में गया कुछ कपड़ों पर। ढोल-नगाड़े, घरी-घंट, तुरही पता नहीं कैसी-कैसी आवाजें! मनहूसियत और आतंक से भरा दिन। उसे पता नहीं चल पा रहा था कि उसे हाँक कर कहाँ ले जा रहे थे लोग। वह गिरती-पड़ती सँभाल ली जाती और एक तरह से भीड़ के धक्के से आगे ठेल दी जाती। चिता तक यह क्रिया जारी रही। धर्म के पीछे धुँधुआती, चिखती, पागल, पिलपिलाती भीड़ और तमाशबीन, कितना चंदन, कितना देशी घी और कितना पेट्रोल ताकि चिता बुझने न पावे।''[5]

चिता जलने लगी तभी सती मैया की जय के नारों के बीच बगल का पीपल का पेड़ गिरा जलती चिता पर और सावित्री चिता से उछल कर नदी की धार में बह गई। वह होश में नहीं थी। जब होश आया तो अनमोल की माँ और अनमोल उसके सामने थे। उनके पूछने पर कि वह नदी की धार में कैसे बह गई, तब उसने अपनी सती होने की घटना कह सुनाई। अनमोल की माँ यह सब सुन कर काँपने लगती हैं, क्योंकि सती को आश्रय देने के बदले गाँव वाले सती और उन दोनों का क्या हश्र करेंगे, यह बात अनमोल की माँ बखूबी जानती हैं। इस घटना के बाद सावित्री कुँवर स्वयं बताती हैं कि, दर्पण में अपना चेहरा देख कर मेरे मुख से चीख निकल गई, ''अरी मोरी माई!श् यह किसका चेहरा था! झुलसा हुआ स्याह! जले बाल, फफोलों, खून से भरा हुआ चेहरा, हाथ से छूकर जाना, पूरी तरह नंगी हूँ, सिर्फ जहाँ-तहाँ दो-एक गहने अटके पड़े थे।''[6]

अपनी हालत को देख कर उसे याद आने लगा कि जब चिता जली उस वक्त आंधी-तूफान था, पेड़ गिर रहे थे, बादलों से गड़गड़ाहट हो रही थी। उसी वक्त पीपर का पेड़ चिता पर गिरने से वह उछल कर नदी के पानी में गिर गई थी। उसकी इस घटना को अनमोल ने देखा था वह बताने लगा कि जब वह उछली तो उसके साथ चिता की आग भी उपर तक उछली थी। सब जोर जोर से मंत्रोच्चार करने लगे थे। इस घटना से लोग अपने प्राण बचा कर भाग खड़े हुए और उपर उठती ज्वाला को देख कर सब ने मान लिया कि सती महाप्रयाण कर रही हैं, वह यहाँ से सीधे स्वर्ग चली गई। फिर सती माई का स्थान वहाँ पर बनाया गया। लोग उसकी पूजा, आरती करने लगे। मेले लगने लगे और लोगों की मन्नतें पूरी होने लगी, सती मैया श्रद्धा का विषय बन गई। वास्तव में सती हुई सावित्री कुँवर बच गई थी और उन सभी के बीच ही जीवित थी। सती कहती हैं कि ''कभी-कभी मन में आता हैं कि कोर्ट में जाकर खड़ी हो जाउँ; मैं हूँ रानी सावित्री कुँवर। मैं ही अपनी मजार पर दीया जलाती हूँ। मैं ही! कैसा लगता हैं अपनी ही मजार पर दीया जलाना, अपनी ही पूजा करना, अपनी ही निराजना करना, कैसा नाच हैं यह, कब तक इस झूठ को ढोती फिरूँगी? कितनी बार मरूँगी? कितना अजीब लगता हैं खुद का रोज-रोज जलना! कभी तो लगता हैं, तब से लेकर आज तक लगातार जलती ही रही हूँ मैं। एक दिन तो मुझे परदे से बाहर आना ही पड़ेगा।''[7]

कभी बहला-फुसलाकर, कभी पतिव्रता स्त्री के नाम पर, कभी प्रशंसा करके, कभी जोर-जबरदस्ती से, कभी परंपरा और रीति-रिवाज के नाम पर सदियों से आज तक न जाने कितनी स्त्रियाँ पति की चिता की आग में जल कर भस्म हो गई हैं। कुछ स्त्रियाँ तो सावित्री कुँवर की भाँति पति के जीते जी उसकी काम वासना और शारीरिक भूख का भोग बनती हैं और उसी कामुक पति की मृत्यु पर उसकी चिता पर इन स्त्रियों को जिंदा जला दिया जाता हैं पवित्रता और पतिव्रता की दुहाई देते हुए। उनको सुनने वाला, समझने वाला, उनकी स्थिति से उपर उठ कर सोच विचार करने वाला कोई नहीं हैं। परंपरा के नृशंस नाच के आगे सब बौने बन जाते हैं।

यह उपन्यास पाठकों को सोचने पर मजबूर करता हैं कि, क्या स्त्रियों का पति से हटकर अलग कोई अस्तित्व नहीं

हैं? उन्हें पहचानने की जरूरत हैं। सिर्फ उनके मुखौटों से उनका परिचय जानना भर नहीं, बल्कि उनके अंदर के वजूद को, आंतरिक संवेदना और विचारों को जानने की जरूरत हैं। पति की मृत्यु के बाद स्त्री से उसका जीने का अधिकार छीन लेना उसके साथ अन्याय करना हैं। पति से अलग उसका भी अपना स्वतंत्र जीवन, खुशियाँ, और अस्तित्व हैं। उसे पहचानने की जरूरत हैं, जिसकी माँग इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने पाठकों से की हैं। सती प्रथा न मात्र स्त्री के बाह्य शरीर को जलाती हैं, बल्कि उसकी आत्मा, स्वाभिमान, गरिमा, त्याग और समर्पण को भी जला कर राख कर देती हैं। क्या अंदर और बाहर से जलते रहना ही स्त्री की नियति हैं? सदियों से स्त्रियाँ जलती रही हैं, स्त्रियों का श्जलनाश उसके आसपास की परिस्थितियों और समस्याओं के अनुरूप भिन्न- भिन्न हो सकता हैं। स्त्री आज भी अपने वजूद को लेकर निरंतर संघर्ष रत हैं। वह कोई खिलौना या निर्जीव चीज मात्र नहीं हैं, जो उसके मन- मस्तिष्क पर बार-बार प्रहार किया जाए। उसके मासूम जीवन के साथ खिलवाड़ किया जाए। इन सभी स्थितियों में जितना दोषी पुरुष हैं, उतनी ही दोषी स्त्रियाँ भी हैं। स्त्री अपने ही हाथों से विधवा स्त्री को सजाकर, बहला फुसला कर पति की चिता की आग के हवाले कर देती हैं। वह भी विधवा स्त्री का दर्द समझने की या उन्हें सहारा देने कोशिश नहीं करती। ना, यह सूरत बदलनी चाहिए। इसके लिए स्वयं स्त्री को ही आगे आना पड़ेगा। जिस तरह सावित्री कुँवर इस उपन्यास के अंत में आगे आकर सभा को संबोधित करते हुए स्वयं के वजूद से पर्दा उठाती हैं और कहती हैं कि मुझे पहचानो! ''मैं! मैं सावित्री कुँवर! इसी जगह मुझे जला कर मार डाला गया था, पाँच साल पहले, इसी जगह पाँच साल बाद फिर से आविर्भूत हो रही हूँ।...पहचानिए मुझे, जिसे उसके जन्मदाता पिता ने नहीं पहचाना, जन्मदात्री माँ ने नहीं पहचाना, रियासतदारों ने नहीं पहचाना- पहचानिए मुझे। डी. एन. ए. मिला लीजिए...सैकड़ों वर्षो से जलायी जाती रही धर्म और परंपरा की बेदी पर सैकड़ों वर्षो से। पर इसकी जिद देखिए यह मरी नहीं, जिंदा हैं। जलने के दाग- ये, ये, ये।''[8] अपना अध जला शरीर वह सब को दिखाने लगती हैं। अध जले शरीर वाली, जगह- से बाल भी जले हुए हैं और आधा शरीर गोरा और आधा जला हुआ काला- कुरूप! एक सौंदर्यवान स्त्री अब तक स्वयं को बचाने के लिए अपना वजूद छुपाती घूमती-फिरती रही अध-जले शरीर के साथ! चेहरा कोई पहचान न ले कि यही सावित्री कुँवर हैं इसलिए वह अपने चेहरे के उपर काजल लगा कर अपनी पहचान छुपाती हैं, ताकि फिर से गाँव के लोग उसे पहचान कर चिता पर सती होने के लिए बाध्य न करें। किन्तु अंततः सावित्री अपने अस्तित्व का सब के सामने स्वीकार कर अपने हक और अधिकार के लिए आगे आती हैं।

निष्कर्षतः यह उपन्यास पाठकों को नारी व्यथा, अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष करती स्त्री की त्रासदी, अंधश्रद्धा, कुप्रथा, उच्च शिक्षा के अभाव में लोगों की संकुचित मानसिक अवस्था और जीवन यथार्थ के संदर्भ में विशेष गहन चिंतन करने के लिए प्रेरणा देता हैं। समाज के हर व्यक्ति को अपने आसपास की परिस्थिति का अवलोकन वैज्ञानिक ढंग से और तर्कपूर्ण दृष्टि से करने की आवश्यकता हैं, तभी हम समाज के हर कोने से कुप्रथा और गलत रीति-रिवाज से पर्दा उठाकर स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. संजीव, मुझे पहचानो, सेतु प्रकाशन प्रा. लि. नोएडा, उत्तर प्रदेश, पृ.96
2. संजीव, मुझे पहचानो, सेतु प्रकाशन प्रा. लि. नोएडा, उत्तर प्रदेश, पृ. 154
3. संजीव, मुझे पहचानो, सेतु प्रकाशन प्रा. लि. नोएडा, उत्तर प्रदेश, पृ. 103
4. संजीव, मुझे पहचानो, सेतु प्रकाशन प्रा. लि. नोएडा, उत्तर प्रदेश, पृ. 103
5. संजीव, मुझे पहचानो, सेतु प्रकाशन प्रा. लि. नोएडा, उत्तर प्रदेश, पृ. 56-57
6. संजीव, मुझे पहचानो, सेतु प्रकाशन प्रा. लि. नोएडा, उत्तर प्रदेश, पृ. 57-58
7. संजीव, मुझे पहचानो, सेतु प्रकाशन प्रा. लि. नोएडा, उत्तर प्रदेश, पृ. 58
8. संजीव, मुझे पहचानो, सेतु प्रकाशन प्रा. लि. नोएडा, उत्तर प्रदेश, पृ. 175

वैदिक काल में भौगोलिक चिंतन

डॉ. सुरेन्द्र चौधरी
सहायक आचार्य, भूगोल
श्रीमती नर्बदा देवी बिहाणी राजकीय स्नातकोत्तार महाविद्यालय, नोहर

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद खीचड़
सहायक आचार्य, हिन्दी
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

सारांश

वेद हिंदू धर्मग्रंथों का सबसे पुराना संग्रह है। वेद शब्द की उत्पत्ति संस्कृत क्रिया 'विद' से हुई है जिसका अर्थ है ''जानना''। वेद ज्ञान का संग्रह है। वेदों के आधार पर लिखे गए साहित्य को वैदिक साहित्य कहा जाता है। इतिहास और पुराणों को वैदिक साहित्य भी कहा जाता है। वैदिक साहित्य में भूगोल के प्रत्येक आयाम को बहुत दृढ़ता से व्यक्त किया गया है। यह शोधपत्र विभिन्न वैदिक साहित्य में व्यक्त भौगोलिक मुद्दों को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। वैदिक भूगोल, वेदों और पुराणों की पुस्तकों के बारे में लिखे गए विभिन्न शोधपत्रों को इस शोधपत्र के निर्माण के लिए सामग्री के रूप में उपयोग किया गया है। स्थलाकृतिक स्पष्टीकरण और क्षेत्रीयकरण के लिए उनका वर्गीकरण वैदिक साहित्य जैसे कि द्विप, खंड और वर्षा में सावधानीपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। वेदों में नदी की माता के रूप में प्रशंसा की गई है और वैदिक लोगों को नदी की प्रकृति और व्यवहार के बारे में पता था। ऋग्वेद नदी की प्रशंसा से भरा है। विभिन्न वेदों और वैदिक साहित्य में ऋतु, महीने और विभिन्न मौसमों की व्याख्या की गई है। वैदिक साहित्य में छह ऋतुओं और बारह महीनों की व्याख्या की गई है। अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी को भगवान के विभिन्न रूपों के रूप में लिया गया है और मानव पर्यावरण के संपर्क के रूप में उनकी प्रशंसा की गई है। लोगों को वनों की कटाई के लिए हतोत्साहित किया जाता है, जिसका मतलब है भगवान के घर को नष्ट न करना। मात्रात्मक और गणितीय भूगोल वैदिक साहित्य की एक और महान विशेषता है। समय और दूरी की माप इकाई तकनीक वैदिक साहित्य का बहुत मजबूत भौगोलिक प्रतिनिधित्व है। समय की माप 'प्रमाणु' से 'महायुग' तक और दूरी 'प्रमाणु' से 'क्रोष' तक शुरू होती है।

मुख्य शब्द : वेद, वैदिक, पुराण, मौसम, माप, भूगोल।

परिचय

भूगोल एक ऐसा विषय है जो मानव और पर्यावरण के बीच इसके स्थान के संदर्भ में संबंधों का अध्ययन करने के लिए समर्पित है। इसे भौतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के बीच सेतु के रूप में लिया जाता है। भूगोल के दर्शन को इसके विकासात्मक कालक्रम से बदल दिया गया था। भौगोलिक चिंतन की शुरुआत में, यह पर्यावरण निर्धारणवादी दृष्टिकोण के भीतर दृढ़ता से केंद्रित था। लोग मुख्य रूप से प्रकृति और उनकी संस्कृति पर निर्भर थे और जीवन प्राकृतिक घटकों जैसे प्रकाश, हवा, पानी, मिट्टी द्वारा नियंत्रित था। चारों वेदों में से प्रत्येक में छंदात्मक मंत्र या संहिता और गद्यब्राह्मण इसमें उन समारोहों के निर्देश दिए गए हैं जिनमें मंत्रों का प्रयोग किया जाना था। ऐसा लगता है कि चारों वेदों में से प्रत्येक कई शाखाओं या स्कूलों में गया, जिससे पाठ के विभिन्न खंड उत्पन्न हुए। वैदिक साहित्य के सभी मंत्रों में बहुआयामी सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक

और भौतिक दृष्टिकोण भी परिलक्षित हुआ है और विभिन्न मंत्रों (भजनों या मंत्रों) के उचित विश्लेषण के माध्यम से हम वैदिक-समय के भूगोल का पता लगा सकते हैं।

शोधविधि तंत्र

यह शोधपत्र द्वितीयक जानकारी पर आधारित है। शोधपत्र तैयार करने के लिए उपलब्ध प्रासंगिक शोधपत्रों की समीक्षा की गई है। इसमें इंटरनेट से ली गई सामग्री भी शामिल की गई है। विभिन्न पुराणों के मूल पाठ को भी समीक्षा सामग्री के रूप में लिया गया है। जी. फ्लड (सं.), जी. फ्लड द्वारा हिंदू धर्म का एक परिचय, साम वेद, भारतीय साहित्य का इतिहासः जे. गोंडा (सं.) द्वारा वेद और उपनिषद, ऋग्वेदः आर.टी.एच. ग्रिफिथ का संपूर्ण संस्करण आदि साहित्य सर्वेक्षण दौरान ई-पुस्तकों, ई-वेदों, वैदिक समाज के विभिन्न मानचित्रों से अधिक जानकारी का सर्वेक्षण किया।

वेद : एक पहचान

वेदों को भारतीय-आर्य सभ्यता का सबसे पुराना साहित्यिक अभिलेख और भारत की सबसे पवित्र पुस्तकें माना जाता है। वे हिंदू शिक्षाओं के मूल ग्रंथ हैं और उनमें हमारे जीवन के सभी पहलुओं को समाहित करने वाला आध्यात्मिक ज्ञान है।

तालिका 1ः वेद : एक पहचान

वेद	विवरण
ऋग्वेद	सबसे प्राचीन वेद है। इसे दस पुस्तकों (जिन्हें मंडला के नाम से जाना जाता है) में विभाजित किया गया है। इसमें विश्वामित्र का प्रसिद्ध गायत्री मंत्र और पुरुष शुक्त प्रार्थना (आदि पुरुष की कहानी) भी शामिल है। ऋग्वैदिक पुरोहित को होत्री के नाम से जाना जाता था।
यजुर्वेद	यह मूलतः अध्वर्यु पुजारी के लिए एक मैनुअल है, जो किसी यज्ञ में लगभग सभी अनुष्ठानिक कार्यों के लिए जिम्मेदार होता था। यह मुख्यतः गद्य रूप में है। इसे दो भागों में विभाजित किया गया है पूर्ववर्ती काला और नवीनतम सफेद।
सामवेद	सामवेद चारों वेदों में सबसे छोटा है।सामवेद ऋग्वैदिक छंदों का संग्रह है जिसे गायन की सुविधा के लिए कविता के रूप में व्यवस्थित किया गया है। सामवेद विशेष रूप से उदगातार पुरोहित के लिए है।
अथर्ववेद	अथर्ववेद जादुई मंत्रों और टोटकों का संकलन है जिनका उपयोग बुरी आत्माओं और बीमारियों को दूर भगाने के लिए किया जाता है। अथर्ववेद नवीनतम है और इसमें कुछ लोक (ऋग्वेद से) हैं।

प्रत्येक वेद के चार भाग है—

संहिताएँ वेदों का सबसे प्राचीन भाग हैं। इसमें भगवान के लिए मंत्र, प्रार्थनाएं और भजन शामिल हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ संहिता अध्यायों की गद्य व्याख्याएँ हैं। इसमें बलि अनुष्ठानों और उनके परिणामों का विवरण और स्पष्टीकरण दिया गया है।

आरण्यक वन जीवन पर आधारित ग्रंथ हैं। यह बलि अनुष्ठानों की प्रतीकात्मक और दार्शनिक तरीके से व्याख्या करता है।

उपनिषद कुल 108 हैं, जिनमें से 13 को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। उनमें बलिदान, शरीर और ब्रह्मांड के बारे में विभिन्न दार्शनिक विचार समाहित हैं। वे आत्मा और ब्रह्म की अवधारणाओं से सबसे अधिक निकटता से जुड़े हुए हैं।

अपने दार्शनिक सिद्धांतों के साथ वैदिक साहित्य समय की कसौटी पर खरा उतरा है और सामान्य रूप से मानव जाति के लिए सर्वोच्च धार्मिक अधिकार है। वेद शब्द का अर्थ है 'ज्ञान' - ज्ञानों में सर्वश्रेष्ठ और यह मानवीय वाणी में देवताओं की भाषा को प्रकट करता है। (अवारी, 2007)

वेद आज भी हिंदुओं के सामाजिक, कानूनी, घरेलू और धार्मिक रीति-रिवाजों को नियंत्रित करते हैं। वेद वैदिक अनुष्ठान से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है और इसका प्राथमिक कार्य एक ही है, अनुष्ठान (फ्लड, 1996)।

वेद के प्राचीन ग्रंथ एक प्रतीकात्मक दुनिया को दर्शाते हैं जिसमें अनुष्ठान, पुजारी द्वारा संरक्षक के लिए किया जाने वाला कर्म था (फ्लड, 2003),

जन्म, विवाह, मृत्यु आदि पर हिंदुओं के सभी अनिवार्य कर्तव्य वैदिक अनुष्ठान के प्रति अपनी निष्ठा रखते हैं। वे विचारकों की क्रमिक पीढ़ी के विचारों को सामने लाते हैं, और इस प्रकार अपने भीतर विचार के विभिन्न स्तरों को समाहित करते हैं। उत्तर-वैदिक काल में, वेद को दो महाकाव्यों, रामायण और महाभारत को शामिल करने के लिए विस्तारित किया गया था।(मित्तल और थर्सबी, 2006)

'महाभारत वेदों के पौराणिक विवरणों से भरा हुआ है' (गोंडा, 1975)।

वेद कुछ ऋषियों द्वारा प्रकट किए गए ईश्वर के प्रत्यक्ष वचन हैं। यह भ्रम वेद के अर्थ में सामान्य ज्ञान और यहाँ चर्चित कार्यों को संदर्भित करने वाले ''वेद'' के बीच उत्पन्न होता है (गणपति, 1982)।

वेद-व्यास (ऋषि) ने वेदों का संकलन किया है। व्यास ऋषि कौरवों और पांडवों के दादा थे। पारंपरिक रूप से मानते हैं कि व्यास ने आदिम वेदों को वर्गीकृत किया और वेदों को चार भागों में विभाजित किया गया। इसलिए उन्हें वेद-व्यास या ''वेदों का विभाजक'' कहा गया।

वेदों का कालक्रम

वेद, अर्थात ज्ञान का भण्डार, वैदिक धर्म और आर्य समाज के मूल तत्व हैं। भारत के उपलब्ध प्राचीनतम साहित्य ने सर्वसम्मति से चार वेदों को ब्रह्मांड के निर्माण के समय ऋषियों को प्रकट किए जाने के रूप में स्वीकार किया है। वेद संभवतः मानव मन के सबसे प्रारंभिक दस्तावेज हैं और वास्तव में यह कहना कठिन है कि वेदों के सबसे प्रारंभिक भाग कब अस्तित्व में आए। चूंकि प्राचीन हिंदुओं ने शायद ही कभी अपने धार्मिक, साहित्यिक और राजनीतिक बोध का कोई ऐतिहासिक रिकॉर्ड रखा हो, इसलिए वेदों की अवधि को सटीकता से निर्धारित करना कठिन है। इतिहासकार हमें कई अनुमान देते हैं लेकिन उनमें से कोई भी अस्पष्टता से मुक्त नहीं है। वेद सबसे प्राचीन ग्रंथों में से एक हैं। सबसे पुराना पवित्र ग्रंथ संहिताएं लगभग 1500-1000 ईसा पूर्व की हैं, और ''परि-वैदिक'' ग्रंथ, साथ ही साथ संपादकीय विभाग संहिताओं का इतिहास लगभग 1000-500 ई.पू. का है, जिसके परिणामस्वरूप वैदिक काल, जो दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के मध्य से पहली सहस्राब्दी ईसा पूर्व के मध्य तक फैला हुआ है, या उत्तर कांस्य युग और यह लौह युगवैदिक काल मंत्र रचना के बाद ही विभिन्न शाखाओं की स्थापना के साथ अपने चरम पर पहुँचता है। माइकल विट्जेल ने लगभग 1500 ईसा पूर्व से लगभग 500-400 ईसा पूर्व तक का समय दिया है।

वैदिककालीन क्षेत्र

वैदिककालीन क्षेत्र

भौतिक भूगोल

नदी के बारे में धारणा

नदियाँ और नदी के किनारे के इलाके वैदिक लोगों के लिए मुख्य आकर्षक अवधारणा थे। वैदिक साहित्य में सरस्वती नदी का कई बार उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में कुल 19 विभिन्न नदियों के नाम की पहचान की गई थी, जिससे एक निष्कर्ष यह हो सकता है कि वैदिक संस्कृति नदी जलग्रहण क्षेत्र के साथ विकसित हुई थी। वैदिक ऋषि गंगा, यमुना, सिंधु और स्वरवती नदी के स्रोत के बारे में जानते थे। वे जानते थे कि ये चार नदियाँ एक ही स्थान से निकलती हैं। ऋग्वेद में सिंधु की सहायक नदियों जैसे वितस्ता (झिलम), असिक्नी (चिनाब), परुष्णी (रावी), शुतुद्री (सतलज) और बिपाशा (बियास) पर प्रकाश डाला गया था। इस अवलोकन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्य समुदाय मुख्य रूप से पंजाब, पाकिस्तान और सिंधु बेसिन क्षेत्र में निवास करते थे। बाद में, वैदिक सभ्यता की छाप गंगा-यमुना बेसिन क्षेत्र पर भी देखी गई। सरस्वती नदी सबसे अधिक बाढ़ प्रवण थी और विनाशकारी प्रकृति की थी। इस कथन का समर्थन करने वाला एक भजन हैः ''हे सरस्वतीय अपने पानी से हमें मत जलाओ''। सरस्वती जैसी नदी ने फसलों को नष्ट कर दिया और 'अपनी मजबूत तरंगों से उसने पहाड़ को नष्ट कर दिया। इसलिए, वेद में, नदी को लोगों द्वारा पूजा जाता था। सिंधु (इंडस) की प्रकृति का वेद में स्पष्टीकरण है 'सिंधु

की लहरें कठोर क्षेत्र में गिरती हैं। वेदों में नदी के पानी की विशेषताओं पर भी विस्तार से चर्चा की गई है, जैसे नदी अपनी लहरों को समुद्र में उड़ा देती है ऋग्वेद के अनुसार पूर्व में उत्तर प्रदेश से लेकर पश्चिम में अफगानिस्तान तक के क्षेत्र जिसमें सबसे पूर्वी नदी गंगा है, और सबसे पश्चिमी सिंधु की पश्चिमी सहायक नदियाँ हैं।

ऋग्वेद का क्षेत्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश से अफगानिस्तान तक फैला हुआ था। ऋग्वेद की रचना के काल में वैदिक आर्यो का निवास इस क्षेत्र का मध्य भाग थाः सप्तसिंधु या पंजाब, पाँच नदियों की भूमि जो पूर्व में सरस्वती और पश्चिम में सिंधु से घिरी थी। उनका पूर्वी क्षितिज पश्चिमी उत्तर प्रदेश था और उनका पश्चिमी क्षितिज अफगानिस्तान था। ऋग्वेद में तीन नदियों के नाम हैं जिन पर यह लागू होता हैः सरस्वती, गोमती और सरयू। ऋग्वेद में सरस्वती पंजाब के पूर्व में नदी है (हरियाणा से होकर बहती है) और गोमती व सरयू पंजाब के पश्चिम में नदियाँ हैं (सिंधु की पश्चिमी सहायक नदियाँ)। वैदिक भारतीय सिंधु नदी के तट पर और पंजाब में बसे थे जहां पर सबसे पुराने ग्रंथों की रचना की गई थी। बहुत मोटे अनुमानों के अनुसार यह अवधि लगभग 1500 से 1000 ईसा पूर्व है (ओल्डेनबर्ग, 1988)।

पारसी धर्मग्रंथ अवेस्ता में अफगानिस्तान की हेलमंद नदी का उल्लेख है जो ऋग्वेद में वर्णित सरस्वती नदी के वर्णन से मिलती जुलती है। अवेस्ता में इस नदी को हरह्वती कहा जाता है, जो सरस्वती के समान है। वैदिक लोग अपने प्रवास के दौरान भारत आए और अपने साथ अपनी कविताएँ, धार्मिक विश्वास, स्थान और नदी के नाम भी लाए और भारत में बसने के दौरान उनका पुनः उपयोग किया।

प्राचीन दृद्वती और यमुना की पुरानी धाराएँ जो एक दूसरे के बहुत करीब बहती थीं और दोनों नदियाँ चचरौली शहर से लगभग तीन मील दक्षिण-पश्चिम में एक स्थान पर करीब आ गई थीं, लेकिन तुरंत बाद फिर से अलग हो गई। यमुना फिर से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग दृद्वती के समानांतर बहने लगी, दोनों फिर से पुराने श्रुना के पास एक दूसरे के लगभग दो मील करीब आ गई (भार्गव, 1964)। जाह्नवी, जो स्पष्ट रूप से गंगा का दूसरा नाम है, वर्णन दो भजनों में किया गया है और उन दोनों में, विद्वानों द्वारा इसका अनुवाद नदी के नाम के अलावा कुछ और के रूप में किया गया है। ग्रिफिथ ने इसका अनुवाद ''जुहनू की संतान" के रुप में किया है।

ऋग्वेद में सिंधु शब्द का मुख्य अर्थ "नदी" या "समुद्र" भी है यह केवल गौण रूप से सिंधु नदी का नाम हैः इस प्रकार सप्तसिंधव का अर्थ "सात नदियाँ" हो सकता है, लेकिन "सात सिंधु" नहीं। ऋग्वेद में सिंधु का उल्लेख केवल छह मंडलों (1, 4, 5, 8, 9, 10) में किया गया है चूँकि सिंधु शब्द, अपने "नदी" के अर्थ में, पूरे ऋग्वेद में बार-बार आता है। ऋग्वेद के दस में से नौ मंडलों में सरस्वती का उल्लेख है। सरस्वती पूरे ऋग्वेद में इतनी उल्लेखनीय है कि इसे रचनाकारों के सभी दस परिवारों के अप्रिल-सूक्तों में तीन महान देवियों में से एक के रूप में पूजा जाता था (उनमें से नौ में इसका नाम है और दसवें में इसका उल्लेख है)।

पूर्वी नदियाँः गंगा और यमुना ऋग्वेद में वर्णित दो सबसे पूर्वी नदियाँ हैं। इन दोनों नदियों का नाम ऋग्वेद के दस मंडलों में से सात में है, जिसमें तीन सबसे पुराने मंडल (6, 3 और 7) हैं। नादिस्तुति नदियों की गणना गंगा से शुरू करती है और पश्चिम की ओर बढ़ती है। ऋग्वेद के केवल एक श्लोक में गंगा का उल्लेख किया गया है।

तालिका 2ः ऋग्वेद में नदियों का क्षेत्रवार नामकरण

भौगोलिक क्षेत्र	ऋग्वेद में नदियों के नाम	वर्तमान नदियों के नाम
उत्तर पश्चिमी क्षेत्र नदियाँ (सिंधु की पश्चिमी सहायक नदियाँ, जो अफगानिस्तान और पाकिस्तान से होकर बहती हैं)	कुभा	काबुल
	क्रुमु	कुर्रम
	गोमती	गोमल
	सरयू	सिरितोई

	प्रयियु	बारा
	सुवास्ट	स्वात
	गौरी	पंजकोर
	कुसावा	कुनार
सिंधु और पूर्वी शाखा	सिंधु	सिंधु
	सुसोमा	सोहन
	अर्जिकीया	हारो
	सरस्वती या हरावट्टी	सरस्वती
केंद्रीय अर्थात पंजाब	यमुना	यमुना
पूर्व-मध्य अर्थात हरियाणा की नदियाँ	गंगा या जाह्नवी	गंगा

स्रोतः पाल, 2012

भौगोलिक क्षेत्र

ऋग्वेद में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उल्लिखित स्थानों को वर्तमान शब्दावली के आधार पर पश्चिम से पूर्व तक पांच मूल भौगोलिक क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

अफगानिस्तानः ऋग्वेद में अफगानिस्तान का नाम हमें ‘‘गंधारी" मिलता है। गंधर्वों का उल्लेख 16 सूक्तों में 20 श्लोकों में मिलता है, और इनमें से एक को छोड़कर शेष सभी संदर्भ ऋग्वेद के नवीनतम भागों में हैं।

पंजाबः पंजाब को ऋग्वेद में ‘‘सप्तसिंधु’’ के नाम से जाना जाता है। ऋग्वेद में अन्य वाक्यांश भी हैं जो ‘‘सात नदियों’’ को दर्शाते हैं लेकिन ये पंजाब का संदर्भ नहीं देते हैं, क्योंकि सात एक संख्या है जिसे ऋग्वेद में आमतौर पर विभिन्न संस्थाओं के लिए ‘‘सभी’’ या ‘‘कई‘‘ को इंगित करने के लिए लागू किया जाता हैः इस प्रकार हमारे पास सूर्य के रथ के सात घोड़ों और सात पहियों, सात मुखों के संदर्भ हैं।

हरियाणाः हरियाणा में प्राचीन काल में कुरुक्षेत्र या ब्रह्मवर्त के नाम से जाना जाने वाला क्षेत्र पृथ्वी पर सबसे पवित्र स्थान माना जाता था, हालाँकि, न तो कुरुक्षेत्र शब्द, न ही ब्रह्मवर्त शब्द ऋग्वेद में पाया जाता है। लेकिन ऋग्वेद इस पवित्र क्षेत्र को अन्य नामों या विशेषणों से संदर्भित करता हैः यह वर पृथिव्या (पृथ्वी पर सर्वोत्तम स्थान) या नाभा पृथिव्या (पृथ्वी की नाभि या केंद्र) के रूप में विख्यात है और इस क्षेत्र में दो खुले स्थानों के नाम भजनों में दिए गए हैंः इलयस्पद या इलास्पद, और मनुसा। इन दो स्थानों का नाम स्पष्ट रूप से ऋग्वेद में दिया गया हैः ‘‘उसने (देवता ने) तुम्हें पृथ्वी पर सर्वोत्तम स्थान (वर पृथिव्या) इलयस्पद में, एक अनुकूल दिन में स्थापित किया। हे अग्नि, षद्वति पर, मनुसा पर, आपया पर, और सरस्वती पर तेज चमको।‘‘

उत्तर प्रदेशः समकालीन उत्तर प्रदेश प्राचीन साहित्य में आर्यावर्त या मध्यदेश के रूप में पहचाने जाने वाले प्रदेश के लगभग समान है। ऋग्वेद में न तो आर्यावर्त शब्द मिलता है और न ही मध्यदेश शब्द। उत्तर प्रदेश की किसी स्थिति के लिए सूक्तों में कोई सीधा संदर्भ भी नहीं मिलता। लेकिन, अनुक्रमणिकाएँ हमें एक अमूल्य सुराग देती हैं। ऋग्वेद के आरंभिक काल के भरत राजा काशी के राजा थे और, ऋग्वेद में भरतों की भूमि पूर्व में काशी से लेकर पश्चिम में कुरुक्षेत्र तक फैली हुई थी।

बिहारः प्राचीन बिहार का सबसे ऐतिहासिक रूप से प्रसिद्ध हिस्सा मगध था, जिसे किकट के नाम से भी जाना जाता है। जबकि ऋग्वेद में मगध शब्द नहीं मिलता है, किकट शब्द ऋग्वेद में मिलता है।

तालिका 3ः ऋग्वेद में भौगोलिक स्थान

वर्तमान में भौगोलिक नाम	ऋग्वेद काल में भौगोलिक नाम
अफगानिस्तान	गांधार या गंधर्व
पंजाब	सप्तसिंधु
हरयाणा	वारा पृथिव्या या नाभा पृथिव्या
उतर प्रदेश	दैवोदास या अनुक्रमण
बिहार	किकता (मगध)

स्रोतः पाल, 2012

वनस्पतियां और जीव जन्तु

वैदिक काल में मुजबाना पर्वत क्षेत्र में सेमलता, सालमोली या ताड़ का पेड़ (ताल) और चंदन (सैंडल) का पेड़ पाया जाता था। गर्मियों में (जंगल की आग से) पुष्प वातावरण नष्ट हो जाता था, लेकिन बरसात के मौसम में पुनर्जीवित हो जाता था। वैदिक काल में जब एक पेड काटा गया तो लाल रंग का रस निकला। जिसे ‘‘टीक‘‘ (सेगुन) नाम मिला। पलास (सुगंध के बिना एक प्रकार का लाल फूल) वैदिक सौंदर्यशास्त्र में सुंदर फूल था। हबीब, आई., और ठाकुर, बी.के. (2005)

‘‘जातपक्ष’’ पक्षी, ‘‘श्यान’’ पक्षी, एक खुर वाले पशु वैदिक काल में पहचानी जाने वाली प्रजाति थी। वेदों में पशुओं के भोजन पदार्थ का भी वर्णन किया है जैसे हिरण धान खाता है। वेदों में कुल 609 विभिन्न जानवरों के नाम रखे गए हैं उनमें से 260 जंगली जानवर हैं। यहाँ पर मधुमक्खियों और पर्यावरण में उनके महत्व के बारे में बताया गया है। मधुमक्खियाँ फूलों के नेकटन से शहद बनाती हैं। वेद में जानवरों के निवास स्थान की पहचान इस प्रकार की गई है जैसे साँप जमीन में बिल बनाकर रहते थे। चूहों द्वारा फसलों के विनाश का वर्णन वेदों में किया गया है। इसलिए, पशु व्यवहार और समाज संबंध का भी वर्णन किया गया है। कृषि की तुलना में पशुपालन, विशेष रूप से मवेशी-प्रजनन कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। जिसका प्रभाव धार्मिक क्षेत्र में भी देखा जा सकता है (ओल्डेनबर्ग, 1988)।

जलवायु तत्व, ऋतु एवं मौसम विश्लेषण

ऋग्वेद में छह ऋतुओं, बारह महीनों की अवधारणा का विश्लेषण किया गया था। वैदिक संत (ऋषि) ने संक्रांति को भारत में वर्षा ऋतु के आगमन से संबंधित बताया, उदाहरण के लिए ‘...इंद्र दक्षिण से जल का भंडार खोलते हैं और परिणाम के लिए, जो निकला है, वह समुद्र के ऊपर गिर जाएगा’। ऋतुओं के बारे में, वेद-व्यास ने विचार व्यक्त किया और उन्होंने महीनों को कालानुक्रमिक ऋतुओं की शुरुआत के रूप में समूहीकृत किया जैसे ‘...जयष्ठ और आषाढ़ ग्रीष्म ऋतु से संबंधित हैं’, ‘...श्रावण और भाद्र वर्षा ऋतु से संबंधित हैं’, ‘...अष्य और कार्तिक शरत या शरद ऋतु से संबंधित हैं’, ‘...माघ और फाल्गुन धुंध या सर्दियों के मौसम हैं‘। ऋतु की विशेषता का वर्णन वेद में इस प्रकार किया गया हैः ‘‘वसंत (बसंत) जिसे ऋतुओं का राजा माना जाता है...शेष ग्रीष्म, वर्षा, शरद और शीत ऋतु (धुंध)हैं जिनकी हम पूजा करते हैं’’। प्रत्येक ऋतु में मौसम की प्रकृति का उल्लेख वेदों में किया गया है। ‘‘बसंत’’ (वसंत) के दौरान सुबह बारिश के मौसम की तरह बादलों से मुक्त होती है, ‘‘हेमंत‘‘ (शरद ऋतु की सर्दी) बर्फ या धुंध से मुक्त होती है..., दोपहर के समय सूर्य का प्रकटीकरण बहुत अधिक होता है, शरद ऋतु की शाम को सूर्य की चमक सुखद होती है। वेद में गड़गड़ाहट और बिजली (बाज) की अवधारणा पर विचार किया गया था। यहाँ शीत ऋतु और धान की कटाई के बीच के सम्बन्ध का विश्लेषण किया गया है। अतः वैदिक किसान का मौसम ज्ञान बहुत वैज्ञानिक था। वर्षा का कारण सूर्य है और इस कारण को सबसे पहले वैदिक लोगों ने समझा।

'सूर्य की चमक ने इंद्र की संपत्ति (वर्षा) को भूमि पर विभाजित कर दिया'। वायु की प्रकृति को दर्शाने के लिए वेदों में इसे समुद्र के साथ वर्णित किया है। उन्होंने इसके कारण के पीछे अपना वैज्ञानिक दृष्टिकोण व्यक्त कियाः बादल का काला रंग, धूप वर्षा की अभिव्यक्ति है.'। ''...पानी वाले बादल दिन के समय एक अंधेरी छाया डालते हैं...पृथ्वी पर बारिश टपकाते हैं। वैदिक लोगों को वर्षा की उत्पत्ति के बारे में भी जानकारी थी। वैदिक लोग बादल की उत्पत्ति के बारे में जानते थे, उदाहरण के लिए 'हे मेघ (बादल) तुम पहली बार पानी से पैदा हुए हो''। वर्षा-बंदना (बरसात के मौसम में आराधना में गायन) वेदों के निम्नलिखित कथन में परिलक्षित होता हैः ''हे बरसाय पृथ्वी को तर कर दो...इसके लिए आकाश पर फैले बादल को फाड़ दो...फिर...पानी दिखाओ'' तो यह बारिश के निर्माण की प्रक्रिया है। यजुर्वेद में बादलों की संरचना, छह ऋतुओं, अंकगणित विज्ञान पर चर्चा की गई है। वे वर्षा के मामले में हवा की भूमिका जानते थे। विषुव की अवधारणा वेद में बताई गई है। वैदिक समाज कृषि भूगोल और हवा के बीच के संबंध से परिचित था। बायू देवता (हवा) की स्तुति करने वाले मंत्र उनकी शक्तियों की बात करते हैं - 'आप हमें हमारे सम्मान के साथ खाद्य फसलें देते हैं, हमारी नष्ट हुई फसलों को जीवन देते हैं और हमें प्रतीक्षित धन देते हैं'।

महीने की पहचान के बारे में, वैदिक ऋषि बहुत वैज्ञानिक थे और उन्होंने इस तरह का विवरण दिया हैः चैत्र और बैशाख बसंत ऋतु है, ज्येष्ठ और आषाढ़ ग्रीष्म ऋतु है, श्रावण और वद्रह वर्षा ऋतु है, आषाण और कार्तिक शरद ऋतु है, अग्रिण और पौष हेमंत ऋतु है, माघ और फाल्गुन शीत ऋतु है (चांद. 1992)।

खगोलीय ज्ञान

वैदिक ऋषिगण खगोलीय ज्ञान और विज्ञान के बारे में जागरूक थे जैसे वे इस बात की पुष्टि कर रहे थे कि चंद्रमा को अपना प्रकाश सदैव जलने वाले सूर्य से प्राप्त होता है, जो इस तथ्य को अच्छी तरह से साबित करता है कि उन्हें सौर वर्ष और चंद्र वर्ष , सौर विबग्योर, ग्रीष्म संक्रांति और शीतकालीन संक्रांति की अवधारणा, अमावस्या के बीच के अंतर के बारे में बिल्कुल स्पष्ट जानकारी थी। उनका मानना था कि पृथ्वी और सूर्य का स्रोत 'ब्रह्मा' या 'परब्रह्म' या 'पूर्ण-अस्तित्व' है। लेकिन आधुनिक विज्ञान के संबंध में यह स्पष्ट हो चुका है कि उस ब्रह्म का अर्थ है निराकार ब्रह्मांड या बिग बैंग। धूमकेतु और उल्का का गिरना भी वैदिक साहित्य में शामिल था। इससे यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में उल्कापिंड के गिरने की घटना को एक बाहरी खगोलीय पिंड माना जाता था। वैदिक लोग चंद्रमा के बदलते आकार और प्रकार के बारे में सचेत थे। इसके आकार में क्रमिक वृद्धि की घटना को 'शुक्ल-पक्ष' कहा जाता था जबकि आकार में क्रमिक कमी को 'कृष्ण-पक्ष' कहा जाता था। चटर्जी, मिश्रा और दत्ता (संपादक), 2008

महासागर

उन्होंने स्पष्ट किया कि ''नदियाँ समुद्र में चली जाती हैं'' जो आसपास के जल निकायों के बारे में भी उनके ज्ञान को प्रमाणित करता है। समुद्र की दुनिया और उसकी विशेषताओं को यहाँ विशद रूप से पेश किया गया है। वैदिक साहित्य में बर्फ काई, समुद्री काई का भी उपयोग किया गया था। वेद में विभिन्न समुद्री पक्षी पाए जाते हैं जैसे कि बहाश, दरबिदा, जो समुद्र की लहरों पर मंडराते पाए जाते हैं। कोसंबी, डी.डी. (1992)।

मानवीय भूगोल

वैदिक सभ्यता के लोग धार्मिक सोच से जुड़े थे। वे ईश्वर को सर्वोच्च शक्ति मानते थे। वे सोचते थे कि सभी जीवित और निर्जीव प्राणियों को ईश्वर ने बनाया है और पर्यावरण ईश्वर का प्रतिनिधि है। उन्होंने मानवीय पर्यावरण के संबंध को ईश्वर के साथ संबंध माना था। उन्होंने जल को ''बरुणदेव'' वायु को ''वायुदेव'' अग्नि को ''अग्निदेव'' पृथ्वी को ''पृथ्वीमाता'' वन को ''ईश्वर का घर'' इत्यादि माना। वे हर चीज को धार्मिक दृष्टिकोण से देखते थे। उन्होंने वनों की कटाई को हतोत्साहित

किया ताकि ईश्वर के घर को नष्ट न किया जा सके। वे अपने कल्याण के लिए ईश्वर के नाम पर सब कुछ करते थे। शुक्लयजुर्वेद (36:17) का ''शांति मंत्र'' अंतरिक्ष, सूर्य, पृथ्वी, जल, जड़ी बूटी, वनस्पतियों जैसी प्राकृतिक संस्थाओं को शांत, शांतिपूर्ण और मधुर होने और आनंदमय मानव जीवन के लिए उल्लंघन न करने की प्रार्थना करता है (लुइटल, 2066 ए)।

उस काल की मानवीय गतिविधियाँ नियतिवादी दृष्टिकोण से संचालित होती थीं। उस चरण के लोग प्राकृतिक घटनाओं को बदलना और उनका उल्लंघन करना महापाप मानते थे। उनके लिए कृषि प्रमुख और महत्वपूर्ण व्यवसाय था। वे कृषि को उत्तम, व्यापार को मध्यम और नौकरी को अधम मानते थे। उस समय जौ और पेडी प्रमुख फसलें थीं। वैदिक सभ्यता के दौरान पशुपालन एक और प्रसिद्ध मानवीय गतिविधि थी। गाय और घोड़ा प्रमुख पालतू पशु हैं। गाय को "गौमाता'' के रूप में पूजा जाता था और दूध के लिए पाला जाता था जो मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण है और घोड़े का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर सीधे परिवहन और रथ खींचने के लिए किया जाता था।

इस काल में अलग-अलग राज्यों के रूप में प्रादेशिकता का भी विकास हुआ। राजा को राज्य का शक्तिशाली व्यक्ति माना जाता था और राजा राज्य की दुश्मनों से रक्षा करता था।

विभिन्न राज्यों पर अलग-अलग राजाओं का शासन था, जैसे मथुरा पर 'कंस', अयोध्या पर 'राम', लंका पर 'रावण', मगध पर 'जरासंध' आदि।

स्थान से लगाव वैदिक सभ्यता की एक और प्रमुख विशेषता और सांस्कृतिक प्रथा है। वे अपने स्थानों के प्रति बहुत सचेत थे। जैसा कि हम वैदिक प्रथा की नामकरण प्रणाली को देखते हैं, हम पाते हैं कि नवजात शिशु को नाम जन्म तिथि, समय और स्थान, तथा जन्म के समय सितारों और ग्रहों की स्थिति की गणना करके दिया जाता है। इसका अर्थ है ''अभकहादचक्र'' से नवजात शिशु को दिया गया नाम स्थान की विभिन्न चीजों का प्रतिनिधित्व करता है।

माप प्रणाली

वैदिक काल में मापन प्रणाली बहुत व्यवस्थित और तार्किक थी। वैदिक काल में लोग मापन के लिए लाठी, रस्सी आदि जैसे रोजमर्रा के जीवन में इस्तेमाल होने वाली सामग्री का इस्तेमाल करते थे। मापन का उद्देश्य उस दुनिया के बारे में ज्ञान और समझ बढ़ाना था जिसमें वे रहते हैं। मापन विज्ञान आधुनिक विज्ञान और आधुनिक सभ्यता का आधार है। रोजमर्रा की जिंदगी के हर क्षेत्र में सबसे जरूरी माप लंबाई है।

मानव शरीर के अंगों की लंबाई लंबाई मापने का आधार थी। लंबाई मापने के लिए लोकप्रिय विकल्प उंगलियों, हाथों, हाथ के फैलाव, अंगूठे, हाथ और शरीर के फैलाव की लंबाई और चौड़ाई थी। लेकिन अलग-अलग लोगों के शरीर के अंगों की लंबाई और चौड़ाई में काफी भिन्नता होने के कारण लकड़ी की छड़ी, रस्सी और अन्य सामग्रियों का इस्तेमाल लंबाई की इकाई के रूप में किया जाता था, जो लंबाई मापने के लिए बेहतरीन विचारों में से एक था।

वैदिक सभ्यता में लंबाई की इकाई में 'धनुष' 'क्रोष' और 'योजन' शामिल थे। स्कंद पुराण के सदाचार खंड में बताया गया है कि शौचालय मानव बस्ती से सौ धनुष दूर होना चाहिए। इसी तरह महापुराण श्रीमद्भागवत के पांचवें अध्याय में भारतवर्ष का क्षेत्रफल एक लाख योजन बताया गया है। एक योजन चार क्रोष के बराबर होता है। लंबाई और दूरी मापने के लिए चाणक्य ने दो प्रकार के धनुष बताए हैं, साधारण धनुष जिसमें 96 अंगुल (उंगलियाँ) होते हैं और गार्हप्त्य धनुष 108 अंगुलियों (उंगलियों) से मिलकर बना (श्रीवास्तव, 2017)। इस तरह के माप उपकरणों का उपयोग सड़क की दूरी और व्यक्तिगत भूमि जोत को मापने के लिए किया जाता था (लुइटेल, 2066ब)।

तालिकाः 4ः लंबाई की माप इकाइयां

एस.एन.	वैदिक इकाई	वर्तमान इकाई
1	8 प्रमाणु	1 राजाकानाः रथ के पहिये से निकलने वाला धूल कण
2	8 राजाकाना	लिक्षाः जूँ के अंडे का आकार
3	8 लिक्षा	1 युकामध्य
4	8 युकामध्य	1 यवमध्य
5	8 यवमध्य	1 'अंगुला' : लगभग उंगली की चौड़ाई (2 सेमी)
6	4 अंगुला	1 धनुग्रह (8 सेमी)
7	2 धनुग्रह	1 'धनुषमुष्टि (16 सेमी)
8	3 धनुग्रह	1 विट्टा (24 सेमी)
9	2 विट्टा	1 हस्ता (48 सेमी)
10	4 हस्ता	1 धनुष या दंड (192 सेमी)
11	10 डंडा	1 राजू (19.2 मीटर)

स्रोतः श्रीवास्तव, 2017

पौराणिक साहित्य में योजन इकाई का प्रयोग अलग-अलग मामलों में अलग-अलग तरीके से किया गया है। योजन का उपयोग लंबाई और क्षेत्रफल मापने के लिए किया जाता था।

समय माप

वैदिक समय मापन प्रणाली सबसे पुरानी और वैज्ञानिक समय मापन प्रणाली है। वैदिक शास्त्र हमें समय मापन के लिए वैदिक सभ्यता में इस्तेमाल की जाने वाली विभिन्न विधियों और तकनीकों के बारे में जानकारी देते हैं। यह मापन प्रणाली न केवल पूर्ण है बल्कि बहुत सटीक भी है। वैदिक सभ्यता में समय मापन प्रणाली बहुत उत्कृष्ट है और जिसमें माइक्रो सेकंड से लेकर खरबों वर्षों तक ब्रह्मांड के चक्र शामिल है। समय माप की सभी प्रणालियाँ चंद्रमा और सूर्य सहित विभिन्न खगोलीय पिंडों की परिक्रमा या घूर्णन के समय पर आधारित थी। आर्यों से पहले के लोगों को सौर और चंद्र ग्रहण और चंद्र महीने आदि की भविष्यवाणी करने के लिए आकाशीय पिंडों की गति जानने में गहरी दिलचस्पी थी। पृथ्वी के चारों ओर चंद्रमा की परिक्रमा के अनुसार 12 महीने होते हैं जिनमें से प्रत्येक में दो पक्ष (14 दिन) होते हैं। एक महीने में दिनों की वास्तविक संख्या चंद्रमा और सूर्य की स्थिति के अनुसार एक दिन से भिन्न हो सकती है।

तालिका 5ः समय की मापन इकाइयाँ

एस.एन.	वैदिक इकाइयाँ	वर्तमान इकाइयाँ
1	1 प्रमाणु	26.3 μs (माइक्रो सेकंड)
2	2 प्रमाणु	1 अनु = 52.67 μs
3	3 साल	1 त्रिसरेणु =158 μs
4	3 त्रिसरेणु	1 ट्रुटी = 474 μs
5	100 सत्य	1 बेध = 47.4 μs

6	3 बेध	1 प्यार = 0.1 μs
7	3 प्यार	1 निमेश = 0.43 μs
8	3 निमेश	5 क्षण = 1 काष्ठा 6.4 μs
9	15 काष्ठा	1 लघु = 1 नदी = 1 घड़ी = 24 मिनट = 60 मिनट
10	2 नादिका	1 मुहूर्त = 48 मिनट
11	30 मुहूर्त	1 दिन और 1 रात (24 घंटे)
12	7 दिन और 7 रात	1 सप्ताह (1 सप्ताह)
13	2 सप्ताह	1 पक्ष (चौथी रात)
14	2 पक्ष	1 महीना
15	2 माह	1 सीजन
16	3 सीजन	1 अयान
17	2 अयान	1 वर्ष (365 दिन)
18	100 वर्ष	1 शताब्दी
19	10 शताब्दी	१ सहस्त्राब्दी
20	432 सहस्रब्दी	1 कलियुग (432000 मानव वर्ष)
21	2 कलियुग	1 द्वापरयुग (864000 मानव वर्ष)
22	3 कलियुग	1 त्रेतायुग (1296000 मानव वर्ष)
23	4 कलियुग	1 सत्ययुग (1728000 मानव वर्ष)
24	10 कलियुग	1 महायुग (4320000 मानव वर्ष)
25	1000 महायुग	1 कल्प (4320000000 मानव वर्ष) ब्रह्मा का एक दिन

स्रोतः श्रीवास्तव, 2017

वैदिक और पौराणिक ग्रंथों में समय मापने की एक प्रणाली का वर्णन है जो पलक झपकने से लेकर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की आयु तक सौर वर्ष पर आधारित है। वैदिक काल के दौरान, भारतीयों के पास बहुत छोटे समय अंतराल के लिए अलग-अलग नाम थे। सबसे छोटे समय अंतराल और उसके गुणकों के लिए शब्द तालिका 5 में दिखाए गए हैं।

निष्कर्ष

यह शोधपत्र वैदिक और पौराणिक साहित्य में भौगोलिक व्याख्या से निपटने का प्रयास करता है। जाहिर है, वैदिक साहित्य में बहुत सारे भौगोलिक तत्वों की चर्चा की गई है। इस शोधपत्र में भूगोल के भौतिक और मानवीय आयाम को शामिल करने का प्रयास किया गया है। वैदिक सभ्यता के लोग जाने-अनजाने में भूगोल का अभ्यास कर रहे थे। वैदिक सभ्यता में भौगोलिक समझ, मानवीय पर्यावरण को धार्मिक दृष्टिकोण से देखा जाता था। महाद्वीप और स्थलाकृतिक इकाइयाँ बहुत महत्वपूर्ण था। वैदिक साहित्य में जलवायु परिवर्तन और मौसम के बारे में बहुत कुछ बताया गया है। वेदों में जलवायु परिवर्तन और मौसम के बारे में बहुत कुछ बताया गया है।

संदर्भ

- अवारी, बी. (2007), भारतः प्राचीन अतीत, लंदनः रूटलेज, पृ.77.
- फ्लड, जी. (एड.) (2003), द ब्लैकवेल कम्पेनियन टू हिंदूइज्म, माल्डेन, एमएः ब्लैकवेल, पृ.5. फ्लड, जी. (1996). हिंदूइज्म का परिचय. लंदनः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ.36.
- भार्गव, एम.एल. (1964)। ऋग्वेदिक भारत का भूगोल। लखनऊः अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस। चटर्जी, एम., मिश्रा, एच.एम, और दत्ता ए.के. (संपादक) (2008)। अनुप्रयुक्त भूगोल में अन्वेषण। दिल्लीः प्रेंटिस-हॉल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, भारत में साहित्यिक और मानवतावादी भूगोल
- समीक्षा और रुझान, पृ. 75.
- मुइर, जे. (1861), भारत के धर्म और संस्थाओं की उत्पत्ति और प्रगति पर मूल संस्कृत ग्रंथ। एडिनबर्गः विलियम्स और नर्गेट।
- मित्तल, एस., और थर्सबी, जी.आर. (सं.) (2006)। दक्षिण एशिया के धर्मः एक परिचय। न्यूयॉर्कः रूटलेज। पृ. 37.
- ओल्डेनबर्ग, एच. (1988). वेदों का धर्म. दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड. पृ.1,8.
- अमन, एएए (एड.)। (2010)। ऋग्वेद संहिता (खंड 1), कोलकाताः हरफ प्रकाशानी। अमन, एएए (एड.)। (2010)। ऋग्वेद संहिता (खंड 2), किल्कताः हरफ प्रकाशनि।
- अल्टरकर, ए.एस. (1959). हिंदू सभ्यता में महिलाओं की स्थिति. दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, प्रकाशक प्रा. लि.
- भट्टाचार्जी, एस. (1994). प्राचीन भारत में महिलाएँ और समाज. कलकत्ताः बसुमती कॉर्पोरेशन लिमिटेड. गोस्वामी, बी. (एड.). (2000). अथर्ववेद संहिता. कोलकाताः हरफ प्रकाशनी.
- गोस्वामी, बी. (एड.). (2000)। यजुर्वेद संहिता. कोलकाताः हरफ प्रकाशनी.
- हबीब, आई., और ठाकुर, बी.के. (2005). वैदिक युग और लौह युग का आगमन.1500-700 ई.पू. कोलकाताः नेशनल बुक एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड.
- कोसंबी, डी.डी. (1992). प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता। दिल्लीः विकास पुलिशिंग हाउस। थापर, आर. (1999)। पाठ्य सामग्री, पठन सामग्री, इतिहास। दिल्लीः महिलाओं के लिए काली।
- तेजस पाल (2012). वैदिक काल में भौतिक भूगोल, आई जे ए आर पी ई डी, शोद्य पत्रिका 1-1,216-232
- गीता प्रेस (2000) श्रीवेदव्यासप्रणिता श्रीमद्भगवतमहापुराण। गोरखपुरः गीता प्रेस
- गीता प्रेस (2000) स्कंद पुराण. गोरखपुरः गीता प्रेस
- लुइटेल टीपी (एड.) (2066ए) यजुर्वेद। काठमांडूः विद्यार्थी पुस्तक भंडार लुइटेल टीपी (सं.) (2066बी) ऋग्वेद। काठमांडूः विद्यार्थी पुस्तक भंडार
- लुइटेल टीपी (एड.) (2066सी) कौटल्य अर्थशास्त्र। काठमांडूः विद्यार्थी पुस्तक भंडार
- पाल टी. (2012) वैदिक सभ्यता के दौरान भौतिक भूगोलः एक साहित्य सर्वेक्षण। प्रगतिशील शिक्षा और विकास में अकादमिक अनुसंधान के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, खंड 1 (1) 15-30
- रोलर डीडब्ल्यू (2010) एराटोस्थनीज का भूगोल। ऑक्सफोर्डः प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस श्रीवास्तव एसके (2017)। भारत में लंबाई, द्रव्यमान और समय की माप की इकाइयाँ
- युगों से। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ फिजिकल एंड सोशल साइंस। खंड 7 (5) 39-43।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

ENVIRONMENTAL POLLUTION

Dr. Monika Rathore
Assistant Professor in Chemistry
Government Girls College Hanumangarh Rajasthan

Abstract : The relationship between modern man and his environment is a major social problem and the very survival of man depends upon intelligent human action with respect to this problem. Nowadays, citizens have a huge concern about the quality of life in their cities, especially regarding the level of pollution. Environmental pollution is affecting cities and people living in it. Now it is big challenge for city planners to control all types of pollution such as air, water, noise so that people living in cities can survive freely. Adverse condition like flood, snowfall, typhoons will also require a special attention by the planners to prevent inhabitants of cities. This Paper focuses on air pollution and steps taken by government to monitor and control it.

Key Words : Pollution, CPCB, Air, NAAQM. Environment

Introduction :

The Government of India has established the Central Pollution Control Board (CPCB) with a view to monitoring and controlling pollution as a statutory organization constituted in September 1974 under the Water (Prevention and Control of Pollution) Act 1974. The main function of CPCB is to control and preserve water, Air and environment from pollution and support ministry of environment and forest by providry its services to both departments. Some other duties of the board are

1) To promote cleanliness of river, streams and well in different states.
2) To perform air quality monitoring. National ambient Air Quality Monitoring has been established its main function is to determine air quality in different cities and find out the remedies for air pollution.
3) It also provides background air quality data needed to setup industries in big cities. It helps in city and town planning.

Air (Prevention and Control of Pollution) Act 1981

- The government of india enacted the air (prevention and control of pollution act. 1981 to prevent the air quality. This act. Describes various functions of CPCB at Central and state level.
- To advise the Central Government on any matter concerning the improvement of the quality

of the air and the prevention, control and abatement of air pollution.

- To plan and cause to be executed a nation-wide programme for the prevention, control and abatement of air pollution.
- To provide technical assistance and guidance to the State Pollution Control Boards.
- To carry out and sponsor investigations and research related to prevention, control and abatement of air pollution.
- To collect, compile and publish technical and statistical data related to air pollution:and
- To lay down and annul standards for the quality of air.

The main functions of the State pollution Control Boards are as follows:

- To plan a comprehensive programme for prevention, control and abatement of air pollution and to secure the execution thereof;

1) It advices central government in the matter related to improvement in the quality of air and its pollution.
2) The state pollution control board plan programs for prevention and control of air pollution and advises state government on the matter of air quality, air pollution and also collects the data related to air pollution for furtherer research.
3) The board also compile and publish statistical data related to air pollution.

Monitoring Network

Frequency and parameters Monitored Under N. A. M. P., four air pollutants viz., Sulphur Dioxide (SO2), Oxides of Nitrogen as NO2, Suspended Particulate Matter (SPM) and Respirable Suspended Particulate Matter (RSPM/PM10), have been identified for regular monitoring. Besides this, additional parameters such as Respirable Lead and other toxic trace metals, Hydrogen Sulphide (H2S), Ammonia (NH3) and Polycyclic Aromatic Hydrocarbons (PAHs) are also being monitored in 7 metro-cities of the country. The monitoring of meteorological parameters such as wind speed and direction, relative humidity and temperature was also integrated with the monitoring of air quality. The monitoring of pollutants is carried out for 24 hours (4-hourly sampling for gaseous pollutants and 8-hourly sampling for particulate matter) with a frequency of twice a week to have 104 observations in a year.

Number of Monitoring Stations The number of monitoring stations under N. A. M. P. has increased, steadily, to 295 by 2000-01 covering 99 cities/towns in 28 States and 4 Union Territories of the country.

Monitoring AgenciesN. A. M. P., being a nationwide network, involves several agencies which are: Central Pollution Control Board:in Delhi; State Pollution Control Boards: in the respective States; Pollution Control Committees in the respective Union Territories; National Environmental Engineering Research Institute (NEERI), Nagpur: in 7 metro-cities of the country; Visvesvaraya National Institute of Technology (Formerly VRCE); Nagpur: in the city of nagpur, University of Pune, : in the city of Pune; KTHM College, Nashik: in the city of Nashik; Walchand Institute of

Technology, Sholapur: in the city of Sholapur; and the Thane Municipal Corporation in the city of Thane.

CPCB work with many other agencies and give than financial and technical support for monitoring process, large number of equipments and man power is needed for sampling chemical analyses, data reporting etc. the data obtained after this process can not be taken as fully valid, it is an absolute data because there is probability of personal variation. Various measurs have been taken to ensure quality of data.

Findings

The Levels of sulphur dioxide are within the National Ambient Air Quality Standards at most of the monitored places in the country. A decreasing trend has been observed in many cities which may be due to various measures taken such as reduction of sulphur in diesel etc.

Levels of Nitrogen dioxide are also within National Ambient Air Quality Standards in most of the monitored cities. Levels of Respirable Suspended Particulate Matter and Suspended Particulate Matter exceed National Ambient Air Quality Standards in many monitored cities. Non-attainment cities have been identified where ambient air quality standards are violated. Action Plans for controlling pollution of air have been formulated for the cities.

List of Non-Attainment Cities

CPCB has identified list of polluted cities in India based on ambient air quality data obtained under National Air Quality Monitoring Programme (NAMP) for the period 2011 to 2016. Polluted cities have been identified by calculating an Exceedence Factor. In forty cities National Ambient Air Quality Standards (NAAQs) are violated.

Air pollution is a very Serious problem. If we live in an industrial city with many mills, we know what air pollution is. For many centuries, smoke from burning coal was the most harmful source of air pollution. Studies have shown that, in general, automobiles are the major contributors to air pollution,accounting for 60 p.c. of total tons emitted. Industry takes the next largest share of the responsibility with a contribution of 18 p.c. Electric power generating plants contribute 13 p.c. Space heating and garbage disposal contribute 6 and 3 p.c. respectively. Among the numerous substances that find their way into air, some 40 compounds are suspected of causing cancer such as asbestos, benzene, mercury etc. In addition to all those pollutants-more than million metric tons of lead are mixed into air every year. Some of this is directly due to industry but most of it is emitted by automobiles. Lead in high concentrations is poisonous to the body, damaging the kindness and the brain.

Seventy per cent of the available water in India is polluted. Waters are found to contain dissolved impurities and absence of oxygen which has completely destroyed water's ecological balance making it as dangerous as slow poison.

In a developing country like India, the pollution is mainly due to poverty arising from lack of resources to ensure a decent standard of living for the majority of people. The excessive growth and mad rush of people from village to urban areas resulting in overcrowding of cities, rapid industrialization andurbanization have led to an increase in environment pollutant load that poses a serious public

health problem. We are going too fast towards total industrialization without taking proper precautions and safety measures.

Industrialization is the direct cause of the pollution of air and water in human environment. Cities like Delhi, Mumbai, Calcutta, Ahmedabad, Jamshedpur, Kanpur etc. have already entered the danger zone of pollution.

Solutions to Environmental Pollution :

- We should plant more and more trees to decrease air pollution.
- We should avoid burning plastic.
- Only certified factories should be set up.
- We should use CNG in vehicles instead of petrol.
- The disposal of Plastic and other toxic waste should be done properly.
- Use of plastic should be minimized.
- There should be well maintained drainage system. It should not be blocked and should be cleaned every week.
- There is a need to switch over alternative fuels for our energy requirements such as solar, hydro and wind energy instead of fossil fuels.
- Only treated and certified factory waste water should be release into the river.

References

- Dr. Priya Ranjan Trivedi, State of India's Pollution; Jnanada Prakshan: 2010
- www.livescience.com
- www.conserve-energy-future.com
- Ghosh Viswanath, 'Contemporary Social Problems of India; Himalaya Publishing House; 2006

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

मीरांबाई की स्त्री-चेतना : एक दृष्टि

डॉ. माया गोला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय,
अल्मोड़ा (उत्तराखंड) - 263601
मोबाइल नंबर - 9627 94 8354
ईमेल-drmayagola@gmail.com

शोध सारांश : हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की कवयित्री मीरांबाई, जिन पर हिंदी साहित्य में कम बात हुई है और जो बात हुई भी है उसमें उन्हें कहीं पर विद्रोही कवयित्री और कहीं पर भक्त कवयित्री के रूप में स्थापित कर दिया गया है। जबकि एक मनुष्य के रूप में और एक स्त्री के रूप में उनकी स्त्री - चेतना को देखे जाने की पर्याप्त संभावना अभी बची हुई है। प्रस्तुत शोधलेख में मीरांबाई के व्यक्तित्व के स्त्री-चेतना संबंधी विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

बीज शब्द : स्त्री- चेतना, भक्ति, प्रेम, मनुष्य, पितृसत्ता, समाज, विद्रोह, विचार, काव्य सृजन।

मुख्य आलेख : मीरांबाई का संबंध हिंदी साहित्य के भक्तिकाल से है। उनका जन्म 1516 ई. और मृत्यु 1546 ई. में हुई। उनका जन्मस्थान कुड़की एवं मृत्युस्थान रणछोड़ मंदिर है। उनके पिता का नाम रत्न सिंह और पति का नाम भोजराज है। उनके गुरु के रूप में रैदास का नाम लिया जाता है। मीरांबाई की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है। उनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं—गीत गोविंद की टीका, नरसीजी का मायरा, राग सोरठा, राग गोविंद, मलार राग, सत्यभामा नु रूसण, मीरां की गरबी, रुक्मणी मंगल इत्यादि।

मीरांबाई एक मजबूत और विद्रोही व्यक्तित्व की स्वामिनी हैं। "हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रमुखता से स्त्री स्वर जो मीरांबाई का था, मध्यकाल में उठा और आधुनिक काल में महादेवी वर्मा का।" [1] लेकिन मीरांबाई की स्त्री चेतना को रहस्यवाद से ढकने के प्रयास हुए हैं और यह अभी भी जारी है। "जबकि कविता अपने समय के काव्य मुहावरों में ही घटित होती है। भक्तिकाल में धर्म का वही महत्व था जो आज राजनीति का है। मीरां की कविता अपनी अभिव्यक्ति के लिए उस आश्रय का सहारा लेती जरूर है पर वह उस विकट काल में स्त्री की चेतना की पुकार है, जिसे सुना जाना चाहिए।"[2] उन कारणों की भी पड़ताल होनी चाहिए जिनके कारण मीरांबाई की स्त्री - चेतना विकसित हुई। वरिष्ठ आलोचक सुधा सिंह कहती हैं कि "ध्यान दें तो पुरानी वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत स्त्री के जीवन में बड़ा परिवर्तन लाने वाली घटना उसका विवाह हुआ करती थी।"[3]

गौरतलब है कि मीरांबाई के व्यक्तित्व में जो विद्रोह के अंकुर फूटे वह विवाह के उपरांत ही फूटे। इस दृष्टिकोण से भी मीरांबाई की स्त्री - चेतना को देखने की जरूरत है। विवाह के उपरांत महादेवी वर्मा का व्यक्तित्व मुखर हो उठा। सुधा सिंह के शब्दों में ,"विवाह और विवाह के अंतर्गत बने सामाजिक संबंधों को उसमें शामिल लोग अपना सुविधाजनक हक समझने लगते हैं यानी विवाह के अंदर जिस चीज का लोप सबसे पहले होता है , वह है व्यक्तित्व! स्त्री के लिए विवाह को जीवन

निर्वाह के एकमात्र पथ के रूप में सुनिश्चित कर उसे नाना प्रकार के सामाजिक संबंधों में इच्छित-अनिश्चित भाव से बांध दिया जाता है।"[4]

इसलिए जब मीरां की स्त्री - चेतना के संदर्भ में चर्चा की जाए तो हमें यह भी देखना होगा कि उनकी इस चेतना का निर्माण किस वजह से हुआ है? किस वजह से वह एक समर्थ और सशक्त स्त्री के रूप में उभरी हैं। सुजाता जी कहती हैं, "एक सशक्त स्त्री वह है जिसके पास अपने सपने हैं। अपने विचार हैं। देश और समाज को लेकर जिसके पास अपना एक विजन है। सशक्त स्त्री वह है जो तब भी सच बोलती है जब उसके अपने उसके साथ खड़े होने से कतराते हैं। वह आज्ञाकारी नहीं बनी रहती, ललकार से नहीं डरती, चुनौतियों से नहीं घबराती। सशक्त स्त्री वह है जो किसी निर्णय प्रक्रिया में शामिल होती है तो उसके पास अपनी स्वतंत्र राय होती है भले ही वह स्थापित मान्यताओं और विश्वासों के खिलाफ हो। वह जानती है कि उसका मत महत्त्वपूर्ण है और वह आपसे बार-बार मांग करेगी कि उसे सुना जाए।"5 मीरांबाई का व्यक्तित्व भी कुछ इसी तरह का है। उनका विरोध निश्चित रूप से परिवार और समाज की निर्मिती से रहा होगा और यह विरोध अपनी पुख्ता जमीन पर भी खड़ा होगा इसीलिए मीरांबाई ने विद्रोह करते हुए हदों के बारे में नहीं सोचा। लेकिन, "विडंबना यह है कि स्त्री से नैतिक जिम्मेदारी की मांग करने वाला समाज उसे आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक मुद्दों पर निर्णय के अधिकार से वंचित रखना चाहता है। जिसे अधिकार ही नहीं मिला उससे जिम्मेदारी की मांग क्यों की जा रही है? जो खुद गौण, दोयम और अधीनस्थ है वह कैसे दूसरों के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाएगा?''[6] यहां पर भक्तिकाल में समाज की सामाजिक स्थिति की ऐतिहासिक पड़ताल करनी भी आवश्यक हो जाती है। क्योंकि भारतीय समाज अपनी बुनावट में पितृसत्तात्मक समाज रहा है और इस पितृसत्तात्मक समाज में अघोषित रूप से स्त्री दोयम दर्जे पर खड़ी है।

मीरांबाई ने विवाह के उपरांत अपनी स्थिति को गंभीरता से देखा होगा और उसका आंकलन भी किया होगा। आज आधुनिक समय में भी जब स्त्री की राह बहुत आसान नहीं है तब उस समय मीरांबाई के विद्रोह के मायने बड़े हैं। "संस्कृत की पुस्तकें, उपनिषद और स्मृति को पढ़ें। इन पुस्तकों में स्त्री को एक ऐसे प्राणी के रूप में दिखाया गया है जो रीढ़हीन, विनम्रतापूर्ण सात्विक गुणों से भरपूर है। जिसकी एकमात्र इच्छा अपने पति का प्यार पाने की है और पति से प्रेम न मिलने पर उसका जीवन विफल है। उसका सारा मानस ही आत्मघृणा, आत्महिंसा के नकारात्मक तत्वों से युक्त है। पितृतंत्र एक बड़ी पुरानी परंपरा है और धर्म भी इससे ऊपर नहीं या फिर धर्म को परिभाषित और विनियोजित करने वाला पुरुष वर्ग का मानस स्त्री विद्वेष से अछूता नहीं। स्त्री के चारों ओर पितृसत्ता द्वारा की जाने वाली शारीरिक धार्मिक और बौद्धिक हिंसा दिखाई देती है जिसे धर्माचार्यों एवं शंकराचार्यों की परंपरा ने पूरी स्वीकृति दी है। जो हिंदू मानस अपनी उदारता और महानता को बघारने से नहीं थकता उसी हिंदू ने अतीत में या फिर आज भी अधिकतर स्त्रियों की जिंदगी को नर्क बना रखा है।"[7] और ऐसा आज भी है। "पितृसत्ता के स्थापित होने से लेकर उसे मजबूती प्रदान करने तक विवाह की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। एक लंबे समय तक और कई मायनों में आज भी स्त्री पर होने वाले अत्याचारों को निजी मामले की श्रेणी में डालकर हमारा समाज और राजनीति भी इससे किनारा करती रही है। पितृसत्ता स्त्री की यौनिकता पर नियंत्रण कर समस्त शक्ति प्रतिष्ठानों पर कब्जा जमा लेती है, जिसके परिणाम स्वरुप स्त्री जीवन पर पुरुष की पहरेदारी को सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया जाता है। यही बात विवाह को नैतिकता का आवरण पहनाकर स्त्री को नियंत्रित करने का अधिकार प्रदान करती है।"[8]

भारतीय समाज में स्त्री के कोमल रूप को ही महत्व प्राप्त है। लेकिन इतिहास गवाह है कि उसमें भी पुरुष की तरह शक्ति और सामर्थ्य मौजूद है। "भारतीय परंपरा में नारी शक्ति, सौंदर्य, करुणा, दया की तेजोमय मूर्ति है। परंतु प्राचीन काल से आज तक नारी ने सशक्त रूप से हर क्षेत्र में अपनी ओजस्विता का परिचय दिया है।"[9] इसी तरह का मिला जुला रूप मीरांबाई के व्यक्तित्व में नजर आता है। वह साथ-साथ सहृदय और विद्रोही नजर आती हैं। मीरांबाई अपना स्त्री होना पुरजोर ढंग से साबित कराती हैं। जबकि, "इस जगत में भी मानव से पुरुष मानव का ही अर्थ ग्रहण किया जाता है। मानव मुक्ति का दावा करने वाले हिंदू धर्म ने जब भी 'धर्म - अर्थ- काम- मोक्ष' की चर्चा की तो वहां भी स्त्री महज़ एक साध्य थी। मुक्ति का सारा आयोजन पुरुष के लिए था।"[10]

तब मीरां अपने लिए जीती हुई स्त्री नजर आती है, इस तथ्य की पड़ताल करने के बजाय मीरां को एक सांचे में फिट कर दिया गया। "मीरां का प्रचारित जीवन उसके असल जीवन से अलग और बाहर गढ़ा हुआ है। गढ़ने का यह काम शताब्दियों तक निरंतर कई लोगों ने कई तरह से किया है और यह आज भी जारी है। मीरां के अपने जीवनकाल में ही यह काम शुरू हो गया था। उसके साहस और स्वेच्छाचार के इर्द-गिर्द लोक ने कई कहानियां गढ़ डाली थीं। बाद में धार्मिक आख्यानकारों ने अपने ढंग से इन कहानियों को नया रूप देकर लिपिबद्ध कर दिया। इन आरंभिक कहानियों में यथार्थ और सच्चाई के संकेत भी थे लेकिन समय बीतने के साथ धीरे-धीरे इनकी चमक धुंधली पड़ती गई। साहित्यिक इतिहासकारों और आलोचकों एवं बाद में नए प्रचार माध्यमों ने मीरां के स्त्री जीवन की कथा को पूरी तरह प्रेम, रोमांस ,भक्ति और रहस्य के आख्यान में बदल दिया।"[11]

निःसंदेह मीरां की स्त्री - चेतना बहुत प्रखर रही होगी लेकिन "मीरां की मौजूदगी हिंदी की आलोचना की परंपरा में बहुत सीमित है। हिंदी आलोचना का ध्यान ही मीरां की तरफ बहुत कम गया है जो थोड़ा - बहुत ध्यान गया वह मीरां से संबंधित प्रचारित आरंभिक जानकारी तक सीमित रहा।"[12] स्त्री - चेतना से संपन्न एक विद्रोही कवयित्री को, एक विद्रोही स्त्री को हिंदी साहित्य ने फुटकर खाते में रखकर एक रहस्यवादी भक्त कवि के रूप में सीमित कर दिया है जबकि "मीरां की कोई पहचान बनाने के लिए रूढ़ि और रूपक से परहेज बहुत जरूरी है। वह अलग-अलग रूपकों में ढली हुई सीमित और कंटी छंटी केवल भक्त या केवल विद्रोही या केवल प्रेमी या केवल पवित्रात्मा या केवल सामंत मीरां नहीं है। वह एक साथ सामंत, विद्रोही, भक्त, प्रेमी, पवित्रात्मा, कवयित्री आदि सब है। उसमें, एक मनुष्य अस्तित्व में जो होता है, कमोबेश सभी कुछ है। मीरां का यह मनुष्य रूप रूढ़ि और रूपक में सोचने समझने के संस्कारी और अभ्यासी लोगों को अच्छा नहीं लगेगा। कुछ लोग उसे विद्रोह की रूढ़ि में ही देखना चाहते हैं जबकि कुछ अन्य की अपेक्षा है कि वह पितृसत्तात्मक अन्याय और उत्पीड़न के रूपक में हो।"[13] एक मनुष्य के रूप में मीरां को और एक स्त्री के रूप में उसकी स्त्री- चेतना को दरकिनार कर दिया गया है।

दृष्टिगोचर होता है कि मीरां के भीतर एक जागरूक स्त्री अवश्य रही होगी जिसने अपने समाज की रूढ़ियों को तो पहचाना ही होगा, उनका विरोध करने का साहस भी दिखाया होगा। "मीरा को जानने - समझने के लिए दाख़लि खारिज़ से परहेज भी बहुत जरूरी है। हिंदी में दाख़लि खारिज़ की कुप्रथा की जड़ें बहुत गहरी हैं। मीरा की असल पहचान और समझ नहीं बनने देने में इस कुप्रथा की निर्णायक भूमिका है। विचार और विमर्श पर निर्भरता ने हमारे सोचने समझने के ढंग में कई अंतर्बाधाएं खड़ी कर रखी हैं। अक्सर जिसे हम दाखिल करते हैं उसका सब आंख मूंद दाखिल कर लेते हैं और जिसे ख़ारिज करते हैं ,उसे आंख मूंद कर ख़ारिज कर देते हैं। दाखिल में से कुछ को ख़ारिज और ख़ारिज में से कुछ को दाखिल करने का रिवाज़ हमारे यहां अभी बना ही नहीं है। जिसे आप दाखिल कर रहे हैं, उसमें कुछ तो ख़ारिज काबिल भी होगा और जिसे आप ख़ारिज कर रहे हैं उसमें कुछ भी दाख़लि काबिल नहीं है, ऐसा तो हो ही नहीं सकता।"[14]

मीरां के संदर्भ में भी यह बात सौ फीसदी लागू होती है क्योंकि व्यक्ति और समाज गतिशील इकाइयां हैं। इन्हें एक रूढ़ ढांचे में रखकर देखना एक सार्थक निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा सकता। मीरां जिस समाज से आती हैं, "उस समाज का परिप्रेक्ष्य बहुत व्यापक है और इसमें कोई राय अपवादों के आधार पर नहीं बनाई जा सकती। कोई समाज कभी पूरी तरह आदर्श समाज नहीं होता उसमें अच्छा बुरा हमेशा एक साथ चलता रहता है। कोई समाज कभी पूरी तरह केवल अच्छा और केवल खराब भी नहीं होता इसलिए उसकी पहचान उसी तरह होनी चाहिए। मीरां के समाज के बारे में सामान्यीकरण अधिक हुआ है और उसके वैविध्य की अवहेलना हुई है। किसी समाज के संबंध में निष्कर्ष उसके विस्तृत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में निकाले जाने चाहिए।"[15]

चूंकि भारतीय समाज की निर्मिति पुरुष सत्तात्मक है इसलिए स्त्री की सोच, विचार और उसके व्यवहार का विरोध स्वतः ही समझ में आ जाता है। मीरां के साहस और स्वेच्छाचार का भी प्रतिरोध स्वाभाविक था। समाज की संस्कृति में स्त्री और पुरुष दो भिन्न प्राकृतिक इकाइयां नहीं बल्कि दो भिन्न सामाजिक इकाइयां हैं। इसीलिए समाज की इस संस्कृति में आज

भी स्त्री को वह स्थान हासिल नहीं है जिस स्थान की वह अधिकारिणी है। जबकि, "संस्कृति से ऊपर है मनुष्यता, जो स्त्री को अब तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। यदि होती तो दुनिया में इतना आतंक नहीं फैलता। स्त्री तो मनुष्य बनने की प्रक्रिया में है, उस ओर अग्रसर है।"[16]

वस्तुतरू मीरां की कविता को जिस भी तरीके से देखा जाए - भक्ति के रूप में, प्रेम के रूप में, विरह के रूप में लेकिन मीरां के जीवन में विद्रोह और विरोध का स्वर एक महत्वपूर्ण और रेखांकित किए जाने योग्य संदर्भ है। जिस समाज में रहकर एक स्त्री विद्रोह करने की स्थिति तक पहुंचती है उसी समाज में रहने वाला एक पुरुष ऐसी स्थिति से अमूमन दो - चार नहीं होता। "पितृसत्ता एक सामाजिक घटना है, हजारों साल से चली आई ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्त्री की अधीनस्थता सर्वविदित है। पितृसत्ता ने स्त्री को अपने ज्ञान की वस्तु बनाया। उसे साधन के रूप में प्रयुक्त किया - उसके नाम, रूप, जाति, गोत्र सब अपने संदर्भ में परिभाषित किये। स्त्री का यह अमानवीकरण दलित पुरुष के अमानवीकरण से कहीं ज्यादा सूक्ष्म है। दलित पुरुष अपने दमन से परिचित है। मगर स्त्री चाहे वह किसी भी जाति या वर्ण की हो, अपने उत्पीड़न से परिचित ही नहीं है।"[17] इसलिए मीरां की कविता पर चर्चा करते हुए उसके जीवन के विविध पहलुओं को भी समझना आवश्यक होगा।

हालांकि, "मीरां का बाल्यकालीन और वैवाहिक जीवन सुखी था। अपनी कविता में मीरां ने सास और ननद की निंदा की है लेकिन अपने ससुर और पति की सराहना की है। यह सही है कि मीरां के साथ अन्याय हुआ और उसको यंत्रणा भी दी गई लेकिन यह केवल उसके देवर रत्न सिंह और विक्रमादित्य के अल्पकालीन शासनकाल में हुआ। रत्न सिंह अपनी माता धनाबाई के साथ सत्ता हथियाने में षड्यंत्रकारी था जबकि विक्रमादित्य पारंपरिक इतिहास रूपों और लोक में एक मूर्ख, छिछोरे और घमंडी शासक के रूप में कुख्यात है।"[18]

यहां पर अगर मीरां के विद्रोह को परिस्थितिजन्य माना जाए तो भी उन परिस्थितियों की जड़ें तो पितृसत्ता में ही निहित हैं। पितृसत्ता ऐसी सामाजिक व्यवस्था, जिसमें अक्सर स्त्रियां भी स्त्रियों के विरोध में खड़ी हो जाती हैं। इसलिए मीरां की कविता की ज़मीन में जो विद्रोह और विरोध की फसल लहलहाती है, उसकी गंध को पहचानना होगा। स्त्री, "व्यवस्था से मुक्ति की चाहना को अपने लेखन में जितनी शिद्दत से महसूस करती है या जितनी गहराई से तन्मय होकर अपने उत्पीड़न और शोषण को अभिव्यक्त कर पाती है ,उतना पुरुष लेखन द्वारा संभव नहीं। पितृसत्तात्मक दमन जितना करीब से स्त्री ने देखा और झेला है उतना अन्य किसी ने नहीं।"[19] इसलिए जब मीरांबाई कहती हैं कि, "कोई निंदो कोई बिंदो, मैं तो चलूंगी चाल अपूठी'' अर्थात चाहे कोई निंदा करे या सराहना मैं 'अपूठी' चलूंगी। 'अपूठी' का मतलब है—उल्टा या विमुख। मीरां की इस काव्य पंक्ति में गहरा विमर्श छुपा हुआ है। "अपने इस निश्चय के कारण मीरां का जीवन और कविता रूढ़ि से अलग और रूपक से बाहर है। कुछ मायनों में मीरां की कविता ही ऐसी है कि वह दायरों से बाहर आकर अपना पता- ठिकाना खुद ही बता देती है, लेकिन यह तब संभव है जब हम अपने सांचों - खांचों को अलग रखकर उसके पास जाएं।"[20]

यह भी गौरतलब है कि मीरां एक प्रतिष्ठित सामंती समाज से आती हैं, उस समाज के भीतर मीरां के व्यक्तित्व का बनना और उसकी कविता का पनपना एक पड़ताल की मांग करता है। हिंदी की वरिष्ठ लेखिका प्रभा खेतान कहती हैं, "स्त्री समझ चुकी है कि जिसे वह अपना यथार्थ समझती रही वह महज़ एक पितृसत्तात्मक सामाजिक निर्मिति है। वह केवल घर का सामान नहीं, भोग की चीज नहीं, भेड़-बकरियों से उसकी तुलना करना भी उचित नहीं।"[21] इसलिए मीरांबाई की स्त्री-चेतना उस समय के हिसाब से जितनी क्रांतिकारी है, उतनी ही वर्तमान समय में प्रासंगिक भी है।

संदर्भ

1. http://samalochan.com
2. वही
3. सुधा सिंह, स्त्री संदर्भ में महादेवी, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2017,

पृष्ठ 51
4. वही
5. सुजाता, विकल विद्रोहिणी : पंडिता रमाबाई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2023, पृष्ठ 5
6. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आठवां संस्करण 2021, पृष्ठ 15
7. वही
8. कामिनी, आलोचना (त्रैमासिक पत्रिका) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, अंक 73, प्रकाशन वर्ष - अप्रैल - जून 2023, पृष्ठ 107
9. अनीता उपाध्याय, बहुवचन (त्रैमासिक पत्रिका), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र), अंक 72- 73, प्रकाशन वर्ष - जनवरी -जून 2022, पृष्ठ 134
10. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आठवां संस्करण 2021, पृष्ठ 130
11. http://samalochan.com
12. वही
13. वही
14. वही
15. वही
16. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आठवां संस्करण 2021, पृष्ठ 17
17. वही
18. http://samalochan.com
19. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आठवां संस्करण 2021, पृष्ठ 50
20. http://samalochan.com
21. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आठवां संस्करण 2021, पृष्ठ 53

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

समकालीन हिन्दी उपन्यास और आदिवासी जीवन के विविध परिप्रेक्ष्य

रिया श्रीवास्तव
शोधार्थी, विद्यासागर विश्वविद्यालय,
मेदिनीपुर -721102 पश्चिम बंगाल
मोबाईल संख्या-9647708437
ईमेल-riyasriwastav99@gmail.com

शोध सार : समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने आदिवासी समुदाय के जीवन से संबंधित कई समस्याओं को सामने रखा है। वर्तमान समय में आदिवासी समुदाय की पहचान संकट में है, उन्हें अपने जड़ से कटना पड़ रहा है, विकास के नाम पर उन्हें अपनी ही जमीन से खदेड़ा जा रहा है। प्रस्तुत शोधपत्र के लिए जिन उपन्यासों का चयन किया गया है उनमें आदिवासियों के जीवन से संबंधित विविध संदर्भों को दर्शाया गया है। इन उपन्यासों में प्रतिरोध का स्वर परिलक्षित होता है, जल, जंगल, जमीन और जीवन की रक्षा के लिए आदिवासियों के आत्मनिर्णय की मांग को दिखाया गया है।

बीज शब्द : आदिवासी, विमर्श, उदारवाद, बाज़ारवाद, भूमंडलीकरण, जनजाति, संस्कृति, परंपरा, समाज।

मूल आलेख : आदिवासियों का इतिहास काफी पुराना है। हमारे मिथकों में, रामायण और महाभारत में कई ऐसे प्रसंग मिलते हैं जहां अनार्य आदिवासियों का संघर्ष देखा जा सकता है। आर्यों के भारत आगमन के पश्चात आर्य-अनार्यों के मध्य दीर्घकालीन संघर्ष चला। जिसके कारण अनार्यों को जंगलों का आश्रय लेना पड़ा। अंग्रेजों के भारत आगमन का एकमात्र उद्देश्य व्यापार करना था, ऐसा व्यापार जिससे उन्हें अधिकाधिक लाभ हो सके। भारत की 90% कोएला खानें, 72% वन और अन्य प्राकृतिक संसाधन, 80% अन्य खनिज पदार्थ आदिवासी भूमि पर पाए जाते हैं। इसी कारण अंग्रेजों ने इनकी भूमि पर कब्जा करना प्रारंभ किया, आदिवासियों से उनके मूलभूत अधिकार छिने जाने लगे। इसके परिणामस्वरूप आदिवासियों के जीवन में एक बड़ा परिवर्तन आया। हिन्दी उपन्यासकारों ने आदिवासियों के प्रति हो रहे इसी अत्याचार को अपने उपन्यासों में दिखाया है।

आदिवासी-जीवन को केंद्र में रख कर लिखे गए उपन्यासों का प्रकाशन काल आजादी के बाद का है। किन्तु उनमें जिन समस्याओं को उठाया गया है वो मूलतः आजादी के पहले की है। हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श कि शुरुआत 1980 के आस पास होती है। यद्यपि प्रेमचंद के उपन्यास गोदान और कहानी सद्गति मे कहीं-कहीं आदिवासियों का जिक्र हुआ है। रेणु के उपन्यास मैला आँचल में भी आदिवासी आयें हैं। आगे चलकर आदिवासी उपन्यास परंपरा रूप में लिखे जाने लगे। वर्तमान समय में आदिवासी विमर्श नवीन विधा है।

समकालीन आदिवासी लेखन कि शुरुवात हमें उदारवाद, बाज़ारवाद और भूमंडलीकरण से माननी चाहिए। भारत सरकार कि आर्थिक नीतियों ने जैसे-जैसे आदिवासियों के शोषण-उत्पीड़न की प्रक्रिया तेज की, वैसे-वैसे इसका प्रतिरोध भी मुखर हुआ। शोषण और उसके प्रतिरोध का स्वरूप राष्ट्रीय था, इसलिए प्रतिरोध से निकली रचनात्मक ऊर्जा का स्वरूप भी राष्ट्रीय था।

हिन्दी साहित्य में आदिवासियों के जीवन को केंद्र में रखकर काफी उपन्यास समय समय पर लिखे जाते रहें हैं। इस

क्रम में समकालीन हिन्दी कथासाहित्य में संजीव ने अपनी अलग पहचान बनाई है। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज के पिछड़े, उपेक्षित, वर्जित क्षेत्र की दर्दनाक व्यथा को वाणी दी है। उनका 'धार' उपन्यास आदिवासी जनजीवन को उजागर करनेवाला महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास में आदिवासी का जीवन संघर्ष और शोषण उभरकर सामने आता है। इस उपन्यास में लेखक ने संथाल आदिवासियों को केंद्र में रखा है। इस उपन्यास में आदिवासियों का जीवन संघर्ष, अवैध कोयला खनन, निर्मम पूंजीपति व्यवस्था की विसंगतियाँ एवं कुटिल षड़यंत्र द्वारा खदान मजदूरों का शोषण, माफ़ियों का आतंक, उपन्यास कि नायिका मैना का आदिवासियों के प्रति आस्था और उनके शोषण मुक्ति के लिए संघर्ष, भ्रष्ट पुलिस प्रशासन की काली करतूतें और राष्ट्रीयकरण के नाम पर होने वाली राष्ट्रीय संपत्ति की लूट आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। लेखक ने कोयला खदानों की भयानक स्थिति को दिखाने के लिए मिथक और बिंबों का प्रयोग किया है। डॉ. संतोष रघुनाथ रायबोले इस उपन्यास के शीर्षक के संबंध में लिखते हैं– "पंत की कविता से रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास का नाम लिया है, उसी तरह अरुण कमल की कविता की पंक्ति 'सारा लोहा उन लोगों का, अपनी केवल 'धार' को उपन्यास के शीर्षक के रूप में संजीव ने चुना है।"(1)

उपन्यास की नायिका मैना गाँव में लगने वाली तेजाब फैक्ट्री का विरोध करती है। गाँव में तेजाब फैक्ट्री लगने के कारण जल, जंगल, जमीन, हवा बूरी तरह प्रभावित होने लगते हैं और पर्यावरण प्रदूषित होने लगता है। पीने का पानी न मिलने पर मैना कहती है—"क्या करें? कहाँ से आए पानी? कुएँ, तालाब सबमें तो तेजाब है। स्टेशन पर सिपाही पानी लेने देते नहीं है।"(2) एक बड़ी संख्या के लोगों को पीने का स्वच्छ पानी तक न मिल पाना काफी सोचनीय है। इस तरह के कई मुद्दों को इस उपन्यास में उठाया गया है।

महिला आदिवासी लेखिकाओं में एक सशक्त नाम मैत्रेयी पुष्पा का आता है। अपने उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में इन्होंने आदिवासी जनजातियों के जीवन का वास्तविक चित्रण पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। जन्म से आदिवासी और उसमें भी स्त्री की स्थिति क्या होगी उसका जीवंत चित्र यह उपन्यास है, नारी मन की संवेदना को जानकर लेखिका ने आदिवासी महिलाओं की रोजमर्रा की जिंदगी में कितनी विचित्रता और नग्नता है इसका जीता जागता चित्र उपस्थित किया है। आदिवासी महिलाओं को स्त्री होने की यातना तो झेलनी पड़ती है पर साथ ही साथ आदिवासी होने के कारण उनकी यातना दुगुनी हो जाती है। आदिवासी समाज में शिक्षा की कमी है। इसका मूल कारण यह है कि जब भी कोई आदिवासी शिक्षित होकर आगे बढ़ना चाहता है तो उच्च वर्ग के लोग उन्हें आगे नहीं बढ़ने देना चाहते हैं , इसके पीछे उनकी अपनी कुछ मानसिकताएं हैं। यदि आदिवासी समाज पढ़- लिखकर आगे बढ़ेगा तो उनका शोषण करना मुश्किल हो जाएगा एवं वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हो उठेंगे। अल्मा कबूतरी उपन्यास में जब राम सिंह अपनी बेटी अल्मा को पढ़ना चाहता है तब कदमबाई को यह अच्छा नहीं लगता और वह अपने बेटे राणा का अल्मा से जल्द से जल्द विवाह कर देना चाहती है वह रामसिंह से कहती है—"कैसा आदमी है! माना कि नई जमाने की बात करता है पर ब्याह नहीं करना था तो लड़की को घेर कर डालने का क्या मतलब?''(3)

नक्सलबाड़ी आंदोलन और क्रांतिकारियों के जीवन को चित्रित करती हुई मधु कांकरिया की एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है 'खुले गगन के लाल सितारे'। यह उपन्यास युवाओं के जीवन पर केंद्रित है। इस उपन्यास में आदिवासी समाज के लिए अत्यंत गहरी संवेदना को व्यक्त किया गया है। लेखिका नक्सलबाड़ी आंदोलन के शोषकों के खिलाफ उठी हुई आवाज के रूप में ग्रहण करती है—"तो मैडम जी नक्सलबाड़ी में हुए जमीदारों के विरुद्ध भूमि स्थल के आंदोलन ने जैसे हमें विश्वास का नया आकाश दिया और हम सभी कुछ कर गुजरने का हौसला संजोने वाले नवयुवको पर नक्सल भाव छा गया.... मक्का मदीना बन गई..... नक्सलबाड़ी हमारे लिए.... आमार बाड़ी नक्सलबाड़ी.... तोमार बाड़ी नक्सलबाड़ी सकलेर बाड़ी नक्सलबाड़ी क्योंकि नक्सलबाड़ी गांव में ही पहली बार विद्रोह के स्वर फूट थे और जमीन दखल की लड़ाई शुरू हुई थी।"(4) इस उपन्यास में लेखिका स्वयं आदिवासी संवेदनाओं को महसूस करने लगी थी। उपन्यास पढ़ने से प्रतीत होता है कि यह लेखिका का शोधपरक उपन्यास है।

आजादी मिलने के बाद आदिवासियों के कल्याण के लिए सैकड़ों नीतियां बनी, उनके क्रियान्वयन का क्या हुआ? यह एक बड़ा प्रश्न है। कई योजनाएं तो फाइलों की कब्र में दफन होकर रह गई। आदिवासी समाज से संबंधित ऐसे ही

त्रासदियों का जीवंत दस्तावेज है राकेश कुमार सिंह द्वारा रचित उपन्यास 'पठार पर कोहरा'। लेखक ने आजादी के बाद भी आदिवासियों के जीवन से संबंधित समस्याओं के न हटने की बात उपन्यास में की है। उपन्यास में साहू, बाबू और बंदूकधारी संस्कृति की पोल खोल दी गई है जो अंग्रेजों के झारखंड छोड़ने पर शोषण का काम कर रहे हैं। उपन्यास का आरंभ भी इस प्रकार है—"जंगल यहां से शुरू होता है/बहुत जहरीला होता है कौमनिष्ठ दिकू...! दिकू...यानी वह व्यक्ति जो जन्मना जंगल का वासी न हो। जो जंगल के बाहर का हो। दिकू यानी वह जो दिक्कत का कारण बने। दिक्कतें पैदा करें।"[5]

आदिवासियों के प्रति सरकार की नीतियां कभी भी संतोषजनक नहीं रही है। विकास के नाम पर आदिवासियों को हमेशा उनकी जमीनों और संसाधनों से बेदखल किया जाता रहा है। जब भी मिल, फैक्ट्री, कारखाना खोले जाते हैं तो उसके लिए आदिवासियों के जमीन पर ही अधिकार जमाया जाता है। परिणामस्वरूप उन्हें अपने स्थान से विस्थापित होना पड़ता है। महुआ माजी द्वारा रचित उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास एक ऐसे ही समस्या का जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में यूरेनियम खदान खोले जाने पर कई आदिवासियों को अपनी जमीन से विस्थापित होना पड़ता है, और जो आदिवासी रह जातें हैं आस-पास के इलाकों में, उन्हें एक बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। यूरेनियम खदान गांव से ठीक सामने होने के कारण गांव में इसका दुष्प्रभाव पड़ता है जिससे तरह-तरह की बीमारियां फैलती है जिसके कारण का अंदाजा उन्हें नहीं हो पाता। इस उपन्यास में आदित्यश्री के माध्यम से सारे मुद्दों को वैश्विक स्तर पर ले जाने का प्रयास दिखाया गया है। लेखिका ने यूरेनियम खदान से निकलने वाली रेडियोधर्मी तत्वों के दुष्प्रभावों का चित्रण उपन्यास में किया है—"भोले-भाले आदिवासियों को कौन समझाए कि उनकी भयंकर बीमारी का कारण भूत-प्रेत या डायन नहीं बल्कि स्थानीय क्षेत्र के पास मरंग गोड़ा में हो रहे यूरेनियम खनन के विकिरण है, जिसके कारण टी. बी., कैंसर जैसी जानलेवा बीमारी हो रही है। विकिरण का प्रभाव न केवल बूढ़े-जवान पर हो रही है बल्कि बच्चे से लेकर नवजात तक प्रभावित है। किसी का शरीर सिर की तुलना में काफी बड़ा, किसी का शरीर सिर की तुलना में काफी छोटा।"[6] जब एक बड़ी जनसंख्या इस तरह का दंश पीढ़ी दर पीढ़ी झेलती आ रही, तब इस तबके के लिए चिंताजनक स्थिति पैदा होती है, इसका बुरा प्रभाव हमारे प्रकृति पर भी पड़ रहा है, और आदिवासी समाज तो मूल रूप से प्रकृति पर ही निर्भर हैं।

निष्कर्ष : आदिवासी समाज मूल समाज का ही एक ऐसा हिस्सा है जिसे जानबूझ के अलग कर दिया गया है। उनके अधिकार उनसे छिने गए हैं और लंबे समय से उनका शोषण किया गया है। केवल भारत में ही नहीं बल्कि विश्व भर में उनकी यही स्थिति है। इस समाज को सामने लाया जाना आवश्यक था। बहुत समय तक तो साहित्य में इनपर उस रूप में ध्यान नहीं दिया गया। परंतु समकालीन साहित्यकारों ने इस कमी को पूरा किया है और आदिवासियों को केंद्र में रख कर बड़ी मात्रा में लेखन किया है। जिसमें इन्होंने उनके जीवन से संबंधित सभी पहलुओं को बड़ी गंभीरता से उठाया है। हिन्दी उपन्यासों के आदिवासी सापेक्ष इन पक्षों के सहारे आदिवासी अस्मिता को न्याय दिलाने और उनके हक की बात हम कर पा रहें हैं। लेकिन हिन्दी साहित्य में आदिवासियों पर लिखे जाने कि परंपरा अभी भी उतनी अधिक समृद्ध नहीं हो पाई है, परंतु इसके शुरुवाती दौर को देख कर इसके भावी भविष्य का अनुमान हम लगा सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. डॉ. संतोष रघुनाथराव रायबोले, संजीव के कथा-साहित्य में सर्वहारा समाज, सारस्वत प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2016, पृ. सं-75
2. संजीव, धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण-2018, पृ. सं-56
3. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, आठवाँ संस्करण-2023, पृ.सं-72
4. मधु कांकरिया, खुले गगन के लाल सितारे, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण-2017, पृ.सं.-68
5. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, वाणी प्रकाशन, पहला संस्करण-2005, पृ.सं.-79
6. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, तीसरा सं.-2023, पृ. सं-112

'बकरी' नाटक में भ्रष्ट राजनीति का यथार्थ मूल्यांकन

राजु पासवान
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार
rajupaswan88136@gmail.com

शोध सार - नाटककार ने बकरी को गांधीवादी सिद्धातों के प्रतीक एवं भारतीय जनचेतना के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। जो समकालीन राजनैतिक सत्य का वास्तविकता का गतिशील दृश्यों, घटनाओं तथा अनेकानेक प्रसंगों के माध्यम से यह संदेश देती है कि आधुनिक नेता अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए महापुरूषों का सहारा लेकर आम जनता को कैसे लुटती है। यह आलेख वर्तमान भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था महापुरूषों के नाम पर आमजनता को कैसे लुटती है, यह उजागर करने का एक प्रयास किया है।

बीज शब्द- गांधी की बकरी, मशक, राजनैतिक शोषण, आम आदमी की विडंबित स्थिति, चुनाव।

शोध प्रविधि- आलेख के लिए नाटककार सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कृति बकरी नाटक को ही प्राथमिक स्त्रोत के रूप में उपयोग में लिया गया है।

शोध उद्देश्य- यह आलेख वर्तमान भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था महापुरूषों के नाम पर आमजनता को कैसे लुटती है, यह पाठक व जनता के समक्ष रखना है।

हिंदी साहित्य में अनेक साहित्यकार हुए हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से समाज की विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उजागर करने का महत्ती कार्य अपने साहित्य के माध्यम से किया है। इन साहित्यकारों में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आधुनिक हिंदी साहित्य जगत के दैदिप्यमान नक्षत्र है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना सप्तक कवियों में से एक कवि तो है ही, साथ ही आप उत्कृष्ट नाटककार, कहानीकार एवं उपन्यासकार के रूप में भी आपने हिंदी साहित्य जगत को साहित्य के विविध रंगों से रंगा है। जिसमें मानवीय प्रेम का पावन स्वर, प्रकृति की मनोरम छटाओं के साथ ही आम आदमी के जीवन की स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता पश्चात देश की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों एवं घटनाओं के यथार्थ दर्शन हमें होते है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना नें भारतीय समाज में चारों ओर व्याप्त विसंगतियों, सत्ता पक्ष की निरकुंश प्रवृत्ति, देशवासियों की सामाजिक-राजनैतिक परिवेश के प्रति उदासीनता एवं खोखले होते लोकतंत्र की त्रासदी को व्यंगात्मक शैली में आपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। भारत की दीन-हीन, पीडित एवं परंपरा में जकड़ी नारियों और असहाय विवश मानव के कल्याणार्थ, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का मन सदैव करूणा से भरा रहा। जिसकी पुष्टि आपके साहित्य के विविध रूपों में हमें स्पष्ट रूप में यत्र-तत्र सर्वत्र दिखाई देती है। जिसकी पुष्टि 'डूबता हुआ चाँद' कथा में स्पष्ट हो जाती है। जिसमें लेखक स्वयं कहते है कि "अमीर-गरीब, छोटा-बडा फर्क बिल्कुल नहीं है। जनसेवा ही उनके जीवन का उद्देश्य रहा है।"[1]

नाटक के क्षेत्र में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का योगदान सन् 1948 से प्रारंभ होता है। बकरी नाटक सर्वेश्वर दयाल सक्सेना द्वारा 1974 में, गांधी के नाम पर राजनीति करनेवालों लोगो पर व्यंग्य नाटक की रचना की। यह अपने रूपबंध में नया सार्थक समकालीन परिस्थिति का यथार्थ धरातल पर आधारित लोकनाट्य शैली का नाटक है, जिसे लेखक ने इब्राहीम अल् काज़ी

के कहने पर लिखा था। बकरी नाटक के लेखन संबंधी अपने विचार स्पष्ट करते हुए नाटककार सर्वेश्वरदयाल सक्सेना लिखते है कि—" 1) यदि हिंदी में कोई ऐसा नाटक होता जिसमें जनचेतना को लोकभाषा और लोकरूपों के माध्यम से सामाजिक अन्याय के साथ जोड़ने का एक नया व्याकरण देखने को मिलता। 2) यदि हिंदी के तथाकथित श्रेष्ठ नाटक बडे प्रेक्षागृहों, भारी तामझाम और विद्वत प्रेक्षक समाज के मुहताज न होते। 3) यदि हिंदी के नाटककार यशरू प्रार्थी न होकर आम आदमी की पीड़ा, आम आदमी की जबान में आम आदमी के बीच ले जाना हिंदी रंगमंच के लिए आज अनिवार्य मानते।"[2] नाटककार सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक प्रयोगधमी नाटककार है। नाटक के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग कर आपने अपनी एक विशिष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। लेखक के मन में सामाजिक, राजनीतिक, विसंगतियों के प्रति घृणा थी। सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए, लोकतंत्र और राजतंत्र की भ्रष्ट व्यवस्था पर भी चोट करते है। मानवीय अस्मिता अन्याय और शोषण का शिकार हुई है। लेखक नई दिशाओं के तलाश की संकल्प लेते हुए लिखते है—

"लीक पर वे चले जिनके चरण दुर्बल और हरि है।
हमे तो हमारी यात्रा से बने ऐसे अर्मित पथ प्यारे है।"[3]

देश को स्वतंत्रता के बाद मोह भंग के कटु यथार्थ को झेलते हुए, लेखक ने विकृत सभ्यता का मुखौटा उतारने का बकरी नाटक में यशस्वी प्रयास किया है। इस संदर्भ में डॉ. नरनारायण राय लिखते है—"बकरी की कहानी दरअसल भारत की सत्तर प्रतिशत उस अशिक्षित, अल्पबुद्धि, धर्मभीरू आम आदमी की कहानी है, जिसे लुटने की साजिश वे रचते है जो खुद को जनता का सेवक कहते है। समकालीन व्यवस्था, छद्मवेशी जन-नेताओं के जन-विरोधी आचरण, आम जनता की धर्मांधता और इस धर्मांधता के चलते उनका होनेवाला शोषण इन सभी बातों के प्रति विद्रोह का भाव वस्तुतरू इस नाटक की मूल चेतना है।"[4] जिसकी पुष्टि नट के शब्दों में यों साकार होती दिखाई देती हैं—

"सेवा यहाँ पर स्वार्थ है, औ स्वार्थ ही परमार्थ है।
कोई किसी से है न कम, है देश के फूटे करण।"[5]

वास्तव में बकरी व्यक्ति का नाटक न होकर हमारे पूरे सामाजिक परिवेश का, बदलते राजनीतिक ढंग का प्रभावशाली यर्थाथवादी नाटक है, जिसमें समसामायिकता पर तीखा व्यंग्य है। बकरी नाटक मात्र दो अंकों का नाटक है। प्रत्येक अंक में तीन-तीन दृश्य है। नट और नटी नाटक के सूत्रधार है। इन सूत्र संचालकों के साथ ही सिपाही, दुर्जनसिंह, कर्मवीर और सत्यवीर जैसे समाज के भ्रष्टाचारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र है तो दूसरी ओर विपती, काका-काकी, चाचा राम, एक ग्रामीण तथा दूसरा ग्रामीण आदि पात्र शोषित वर्ग प्रतिनिधियों के साथ ही अन्याय का विरोध करने की क्षमता रखनेवाले, प्रगतिवादी विचारों का युवक है। इन सब पात्रों को बकरी नाम से संबोधित किया गया है। इसी बकरी के इर्द-गिर्द नाटक की कथावस्तु घुमती है। प्रत्येक दृश्य में नट गायन की योजना है, जिसके माध्यम से आसन्नास्थिति का विश्लेषण किया गया है। देश की गरीब एवं ग्रामीण जनता की दयनीय स्थिति और उनकी मजबूरी का राजनेता किस प्रकार दुरूपयोग करते है यही कथा बकरी नाटक का केंद्र बिंदु है। नटी व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते हुए नाटक द्वारा लोगों का मनोरंजन करना चाहती है तो वही नट लोगों सत्य परिस्थिति से अवगत कराना चाहता है। नाटकारंभ के मंगलाचरण में ही न पाँच दलों की ढोंग की रेस से समकालीन राजनीतिक भ्रष्टाचार को संकेतित करता हुआ, नट मंगलाचरण यों प्रस्तुत करता है—

"पाँच देव पाँच दल, लगी ढोंग की रेस, जिनके कारण हो गया देश आज परदेश।"[6]

नट अपना ही रूपांतर या पैरोडी गाने लगता है। नाटक के तीनों दृश्यों के प्रारंभ होने से पहले नट ही दृश्य की घटना या कार्य के पूर्व संकेत देता हुआ कार्य दिशा को नियंत्रित करता है। नट के गीतों में नाटक का मूल व्यंग्य बडे पैनेपन के साथ निखरा है। साथ ही सामान्य जनता की पीड़ा-विवशता, आक्रोश और विद्रोह का स्वर नट के संवादों और गीतों में यों अभिव्यक्त होती हुई दिखाई देती है—

"लोकतंत्र की लेके परुरिया
भाग गयी जटनी

या पेट ही बस पेट निकला आ हा है देश का।

या

सौ खून माफ करती है यह गांधी की बकरी

हर राह साफ करती है यह गांधी की बकरी।"[7]

बकरी नाटक समकालीन राजनीतिक सत्य की वास्तविकता का गतिशील दृश्यों, घटनाओं तथा अनेक प्रसंगों के साथ यह स्पष्ट करता है कि आधुनिक नेता अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए महापुरूषों के चरित्र एवं सिद्धांतों को आधार बनाने में भी नहीं हिचकतते है। बकरी नाटक के आरंभ में ही लेखक ने गांधीजी की जीती-जागती बकरी सामने आती है, इसके बाद ही हाथ में बकरी के खाल की मशक लेकर भिश्ती का प्रवेश प्रतीक रूप में यह दर्शाता है कि जो पहले जीती-जागती बकरी थी, आज वह मशक बन गई है, जो गांधीवादी सिद्धांतों की प्रतीक थी।

इस प्रकार प्रतीक रूप में बकरी की बनी हुई मशक वास्तव में गांधीजी के सिद्धांतों की प्रभावहीनता एवं परिवर्तित अर्थ का सूचक है। बकरी नाटक में नेताओं और पुलिस प्रशासन ने किस प्रकार ग्रामीण जनता को बेवकूफ बनाया, वह मात्र नाटक का कथ्य ही न होकर घटनाओं की एक छोटी सी आवृत्ति ही न होकर, हमारे समाज के नेताओं की भ्रष्ट व्यवस्था और कानून के रक्षकों के नैतिक पतन को भी दर्शाता है। इस संदर्भ में सुषमा बेदी लिखती है—"बकरी स्वतंत्रता के बाद अपने ही नेताओं द्वारा छल गई भोली, अशिक्षित जनता का नाटक है।... बकरी वस्तुतरू एक प्रतीक है जिसके माध्यम से नाटककार आज की छिछली राजनीति और भ्रष्ट सत्ताधारीयों पर व्यंग्य की तीखी मार करता है। मुख्यतः यहाँ बकरी राजनीतिज्ञों के उन नारों का प्रतीक है जिन्हें अपनाकर वे जनता को बेवकूफ बनाते है, लुटते है। कभी नारा गांधीजी के सिद्धातों का पालन होकर गांधीजी की बकरी बन जाती है।"[8] जैसे- नाटक में बकरी संस्थान, बकरी स्मारक निधि, बकरी सेवा संघ, बकरी शांति प्रतिष्ठान जैसी संस्थाएं आम आदमी के साथ व्यभिचार को दर्शाते है। लेखक ने यहाँ बकरी को दो प्रतीकार्थ में पाठक के सामने रखा है प्रथम गांधीवादी सिद्धांतों के प्रतीक अथवा भारतीय जनचेतना एवं जनशक्ति के प्रतीक के रूप में बकरी का अर्थोत्कर्ष होता है अर्थात बकरी गांधीवादी सत्य और अहिंसा का प्रतीक है। दूसरा अर्थ उन ग्रामीणों के तथाकथित स्वभाव, विश्वास, श्रद्धा एवं निरीहता के प्रतीकार्थ से संबंधित है, जिसका गुण एवं आंतरिक रूप बकरी के स्वभाव से समानता रखता है। जनता बकरी की तरह भोली, निरीह एवं दयनीय है, इसलिए अनपढ़ एवं चोर-उचक्कों, डाकु जैसे व्यक्ति भी समाज-कल्याण के नाम पर उन्हें निरंतर ठगते है। बकरी नाटक में नाटककार सर्वेश्वरदयाल सक्सेना भारतीय जनता का अर्थात बकरी का वर्णन भिश्ती के माध्यम से यों करते हैं- "बकरी को क्या पता था मशक बन के रहेगी, जन्नत वो बख्श करके भी खुद नर्क रहेगी। चुटकी से दूसरों के उसका आब रहेगा, कल खून बहाया था आज पानी बहेगा।"[9] तभी दुर्जनसिंह कहता है-"मिल गई मिल गई"[10]

गाने पर जब सिपाही भ्रमित होकर दुर्जनसिंह से पूछता है—"अरे कोई नया डाका डाला तब दुर्जनसिंह बेशरमी से उत्तर देता है—"होश में बातें करो दीवानजी, अब हम डाकू नहीं, शरीफ आदमी बन गए है।"[11]

भिश्ती के पास के मशक को देखते ही दुर्जनसिंह के मन में एक अनोखी, अजीब कल्पना मंडराने लगती है और वह कहता हैं—"कुर्सी भी मिल गई सेवा भी मिल गई माधव भी मिल गए मेवा भी मिल गई मिल गई मिल गई.... मिल गई रे।"[12] जब सिपाही दुर्जनिंह से पूछता है क्या मिल गई तब वह समझाते हुए कहता है "अब हम सब लोगों के मजे होंगे।"[13] यह बात सिपाही के समझ में नहीं आती और सिपाही जब बार-बार पूछता है कि साफ-साफ बताओं दुर्जनसिंह मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा, तब दुर्जनसिंह कहता है—

"ये समझने की न बातें है न समझाने की,

उट्टो आवाज सुनो बकरी के मिमियाने की।"[14]

उसकी आवाज के जादू को जरा पहचानो।"[15] दुर्जनसिंह मालामाल होने की तरकीब बताता है और एक बकरी पकड़कर लाने के लिए कहता है। सिपाही के बकरी लाने पर दुर्जनसिंह जाहिर करता है कि "यह गाँव के हरिजन की बकरी न होकर वह गांधीजी की बकरी है। महात्मा गांधी की, मोहनदास करमचंद गांधी"[16] साथियों यह बकरी क्या देगी? पूछने पर वह बताता

है—"यह दूध नहीं, कुर्सी, धन और प्रतिष्ठा देगी तथा घास के बदले बुद्धि, बहादुरी और विवेक खाएगी।"[17] और सिपाही को आदेश देता हैं—"दीवानव जी, एलान कर दो कि हमें गांधी जी की बकरी मिल गई है, हम मानेंगे तो सब मानेंगे।"[18] बकरी उनके लिए राजनीति चमकाने का साधन हो जाता है। इसीलिए बकरी के नाम पर विविध संस्थाओं की स्थापना की जाती है। हमारे लोकतांत्रिक देश के रक्षक इन संस्थाओं की आड़ में जनता को किस प्रकार लूट रहे है, यहाँ नाटककार इन संस्थाओं के नामों के माध्यम से यहाँ नाटककार इन नामों के माध्यम से यहाण व्यंजित हो जाता है।

नाटक में विपती एक गरीब हरिजन महिला है। उसकी बकरी गुम हो गई है। वह बकरी की लताश में है। बकरी को देखकर वह कही है- "अरे मिल गई! हुजूर ई बकरी हमार है। इहाण कौन बाँध लावा? इसे पाला-पोसा है। इसे मैंने बड़ा कर दिया है।"[19] विपती को सिपाही धकेलते हुए कहता है- "भारत सुरक्षा कानून के अंदर तू हवालात की हवा खाएगी। यह गांधी महात्मा की बकरी है। इस बकरी की जो हालत तूने कर रखी है वह कितना बड़ा जुर्म है, जानती है तू।"[20] कर्मवीर जज की विग लगाकर सिपाही को आदेश देता है। "इस औरत को सार्वजनिक संपत्ति हडपने के आरोप में दफा एक्स क्यू जीरो के अधीन दो साल सख्त कैद की सजा दी जाती है। साथ ही पाँच सौ रूपया जुर्माना न देने पर छ महीने की कैद बामशक्कत। सिपाही औरत को हथकड़ी लगाकर ले जाता है। विपती ई अनियाय है, जुलुम है, बकरी हमार है, तुम सबै हमार दुश्मन हो।"[21] चिल्लाता रहती है। उसकी आवाज गांधी की जयजयकार में डूब जाती है। आगे तीनों डाकू नेताओं की पोशक पहने, टोपी लगाए जनता की आखों में धूल झोंकने का जनता को लुटने का, उन्हें नई नई योजनाओं के माध्यम से फसाने का ढोंग करते हुए, तीनों लोग जनता के सामने भाषण देते है तब दुर्जनससिंह अपने कुटिल विचार प्रस्तुत करते हुए कहता है—" भाईयों, यह हमारा सौभान्य है कि हमें गांधीजी की बकरी मिल गई। कुछ मिलना कुछ खोना भी होता है। हम जितना खोने को तैयार रहते है उससे पता चलता है कि हम कितना पाना चाहते है। इस बकरी ने हमेशा दिया है। आपको आजादी दी, एकता दी, प्रेम दिया। आज भी बहुत कुछ देने को मुंतजिर है। पर आप लेना भूल गए है। क्योंकि आप देना भूल गए है।"[22] ग्रामीणों की हर समस्या का उपाय बकरी को बताता है और कहता हैं—"गांधीजी देवता थे। उनकी बकरी किसी देवी से कम नहीं।"[23] तीनों बकरी के आगे व्यंग्य से सिर झुकाते हुए एक साथ गाते हैं—

"महल दुमहले बना दे बकरी मैया।
देश विदेश घुमा दे बकरी मैया।
बड़े बड़े पद ला दे बकरी मैया।
बैंक पर बैंक खुलवा दे बकरी मैया।"[24]

दुर्जनसिंह कर्मवीर को बकरी के थन चुनाव चिंह पर चुनाव लड़ने लगाता है। बकरी के थन चुनाव चिंह पर लोग भावूक हो जाते है लोगों को विश्वास हो जाता है कि बकरी माता अपने थन से निश्चित ही उनके घरों में दुध से संपन्नता भर देगी। भूख की समस्या समाप्त हो जायेगी। कर्मवीर वोट मांगते हुए कहता है- "भाईयों हमें आपकी कृपा चाहिए। यदि आपकी मजी न हो तो हम चुनाव में न खड़े हों। हम जन्म के ठाकुर है। कर्म से ब्राह्मण और सेवक हरिजनों के है। हमें सबका वोट मिलना चाहिए।"[25] वही दूसरी ओर सिपाही जनता को डंडेशाही का धाक दिखाते हुए कहता हैं—

"डंडा ऊंचा रहे हमारा
सबसे प्यारा सबसे न्यारा
डंडा ऊँचा रहे हमारा।
सुख सुविधा सरसाने वाला
शक्ति सुधा बरसाने वाला
प्रभुता सत्ता का रखवाला
डंडा ऊंचा रहे हमारा।"[26]

यहाँ सिपाही डंडे का सहारा लेकर जनता को समझाता है कि हमें कर्मवीर को ही वोट देना चाहिए यह बकरी मैया

का आदेश है। बकरी मैया देवी है। देवी का आदेश ठुकरा नहीं सकते। तभी अचानक नट लोकतंत्र की विडंबनात्मक महिमा का गुणगाण करते हुए गीत गाता है–

"लोकतंत्र जिंदाबाद जिंदाबाद,
तुम से जातपात है आबाद
फिरकापरस्ती है तुमसे शाद,
धर्म और संप्रदाय भाषा क्षेत्रवाद आय
कुचलकर खड़े है इत्तहाद
लोकतंत्र जिंदाबाद जिंदाबाद।"[27]

हमारे भ्रष्ट नेताओं ने जनतंत्र, धर्म, संप्रदाय, भाषा, क्षेत्रवाद को पैसे व सत्ता प्राप्ति का साधन बना लिया है। भारत एक जनतांत्रिक देश होने के बावजूद यहाँ जनतंत्र के कोई निशान दिखाई नहीं देते है। कर्मवीर जैसे नेता चुनाव में जीतकर आने पर जुलूस, नारों के साथ आनंद व उत्सव का आयोजन किया जाता है। लेकिन जिन लोगों के वोट से नेता चुनाव जीत करआते है फिर उन्हीं का शोषण करते है। आज विश्व के सबसे बडे लोकतांत्रिक देश की यही स्थिति है। कर्मवीर के जीत की खुशी में भोज का आयोजन किया जाता है। जिसमें नेतागण, मंत्री, अधिकारियों को आमंत्रित किया जाता है। दुर्जनसिंह लोगों को संबोधित करते हुए चुनावी जीत का सहारा भिश्ती जो सामान्यजनों का प्रतीक है के सर बांधता है। विडंबना की बात तो यह कि अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिए, चुनाव के लिए जिस बकरी का उपयोग कर विजय प्राप्त की जाती है। उसी बकरी का उपयोग भोज किया जाता है। फिर भी उस दावत को शाकाहारी कहा जाता है क्योंकि काटी हुई बकरी गांधीजी की है। तभी नट गीत गाता है–

"जिसकी लेते है शरण उसको ही खा जाते है लोग,
जिसकी थामा हाथ, उसका ही लगा जाते है भोग,
मुँह से निकला नाम, जैसे पेट से निकली डकार,
वह भी मजबुरी हो जैसे, वह भी ज्यूँ बेअख्तियार,
जिसकी झंड़ा हाथ में है वह समाया पेट में,
पेट ही बस पेट निकल आ रहा है देश का,
कोई बतलाए भी आकर क्या करूँ इस क्लेश का।"[28]

निष्कर्ष : अतः कहा जा सकता है कि बकरी नाटक समकालीन राजनीतिक-सामाजिक धरातल पर लिखा गया नाटक है, जो सत्ता के शोषण और आम आदमी की विडंबित स्थिति पर करारा व्यंग्य है। देश को स्वतंत्रता प्राप्त होने को बाद दुर्जनसिंह, कर्मवीर व सत्यवीर जैसे स्वार्थी और भ्रष्ट लोग नेता बनकर आम जनता का शोषण कैसे करते है। बकरी नाटक इस पैमाने पर पूरी तरह से खरा उतरनेवाला नाटक है। इस नाटक में नाटककार ने न केवल अपने समय की भ्रष्ट राजनीति के यथार्थ को चुटिले अंदाज में अभिव्यक्त किया है बल्कि कर, भारतीय राजनीति के भविष्य की दिशा में छद्मवेशी जननेताओं के जनविरोधी आचरण, आम जनता की धर्मांधता और इस धर्मांधता के चलते, सामान्य जनता पर होनेवाले शोषण के प्रति सचेत रहने की पूरजोर अपील भी की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1-28. 'बकरी' नाटक (छठा संस्करण 2021), सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।